भगवान श्री रजनीश

भक्ति-सूत्र

दूसरा भाग

भगवान श्री रजनीश

उनका परिचय नहीं दिया जा सकता; फिर भी भाव होता है कि कुछ कहा जाए उनके विषय में।

कहा भी क्या जाए, गीत फूटते हैं उनके लिए, ऐसे हैं वे।

असमर्थ हैं हम कुछ भी कहने में, लेकिन बिना कहे भी कैसे रहा जा सकता है! उनमें प्रतिपल ऐसा कुछ घट रहा है, जो आंदोलित करता है, स्पंदित करता है। पाते हैं कि हम कुछ कह रहे हैं—नृत्य से, पुलक से, थिरक से, कह रहे हैं; निमंत्रण दे रहे हैं कि आओ, इस महोत्सव में सम्मिलित हो जाओ।

वे इस पृथ्वी पर हम मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं—आकार-आकृति में! फिर भी उनमें किसी ऐसी परा सत्ता के दर्शन होते हैं, जिससे हमारी आंखें चुंधिया जाती हैं। उनके रोएं-रोएं से कोई संगीत फूटता है कि उसको केवल संगीत कह देने से ही अभिव्यक्ति पूरी नहीं हो जाती।

वे बोलते हैं। उनके शब्द, शब्द ही हैं; फिर भी जल्दी ही यह बोध होता है कि शब्द नहीं, कुछ और ही प्रवाहित हो रहा है—जो न मौन है न मुखरता है—बस कुछ है। कुछ है जो अपने में डुबा लेता है और एक अज्ञात स्वाद से भर देता है।

शेषांश दूसरे कव्हर-पृष्ठ पर

भगवान श्री रजनीश

उनका परिचय नहीं दिया जा सकता; फिर भी भाव होता है कि कुछ कहा जाए उनके विषय में।

कहा भी क्या जाए, गीत फूटते हैं उनके लिए, ऐसे हैं वे।

असमर्थ हैं हम कुछ भी कहने में, लेकिन बिना कहे भी कैसे रहा जा सकता है! उनमें प्रतिपल ऐसा कुछ घट रहा है, जो आंदोलित करता है, स्पंदित करता है। पाते हैं कि हम कुछ कह रहे हैं—नृत्य से, पुलक से, थिरक से, कह रहे हैं; निमंत्रण दे रहे हैं कि आओ, इस महोत्सव में सम्मिलित हो जाओ।

वे इस पृथ्वी पर हम मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं—आकार-आकृति में! फिर भी उनमें किसी ऐसी परा सत्ता के दर्शन होते हैं, जिससे हमारी आंखें चुंधिया जाती हैं। उनके रोएं-रोएं से कोई संगीत फूटता है कि उसको केवल संगीत कह देने से ही अभिव्यक्ति पूरी नहीं हो जाती।

वे बोलते हैं। उनके शब्द, शब्द ही हैं; फिर भी जल्दी ही यह बोध होता है कि शब्द नहीं, कुछ और ही प्रवाहित हो रहा है—जो न मौन है न मुखरता है—बस कुछ है। कुछ है जो अपने में डुबा लेता है और एक अज्ञात स्वाद से भर देता है।

शेषांश दूसरे कव्हर-पृष्ठ पर

भक्ति-सूत्र

नारद-वाणी; दूसरा भाग; भक्ति-सूत्र के शेष ४२ सूत्रों पर
भगवान श्री रजनीश के दस प्रवचन;
प्रश्नोत्तर प्रति दूसरे दिन;
दिनांक ११ मार्च से २२ मार्च, १९७६;
दिनांक १९ और २० मार्च को
भगवान श्री प्रवचन के लिए
उपस्थित नहीं हुए थे।

नया हिन्दी साहित्य

एस धम्मो सनंतनो
भजगोविंदम्
मेरा मुझमें कुछ नहीं
भक्ति-सूत्र : पहला भाग
भक्ति-सूत्र : दूसरा भाग
साधना-सूत्र
पिव पिव लागी प्यास
एक ओंकार सतनाम
अकथ कहानी प्रेम की
बिन घन परत फुहार
सहज समाधि भली
गीता-दर्शन : अध्याय १८ वां

भक्ति-सूत्र
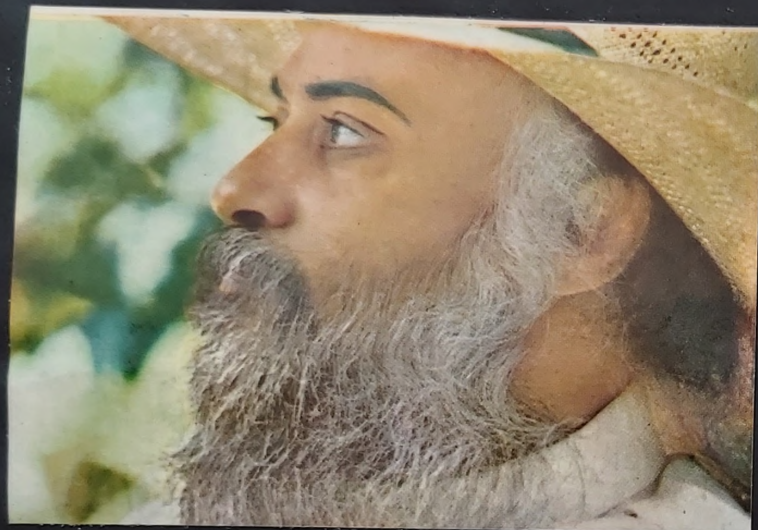
दूसरा भाग

भगवान श्री रजनीश

संकलन-संपादन

स्वामी चैतन्य कीर्ति

कला-सज्जा

स्वामी आनंद अर्हत

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन

प्रकाशक
मां योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउंडेशन,
१७ कोरेगाँव पार्क,
पूना ४११००१ (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण : गुरुपूर्णिमा, १९७६
प्रतियाँ : ३०००

मूल्य : ३० रुपये

मुद्रक
सैयद इस्हाक
संगम प्रेस लिमिटेड
१७ ब, कोथरूड
पूना ४११०२९

भक्ति-सूत्र : एक झरोखा

'भक्ति यानी प्रेम – ऊर्ध्वमुखी प्रेम ।

भक्ति यानी दो व्यक्तियों के बीच का प्रेम नहीं, व्यक्ति और समष्टि के बीच का प्रेम ।

भक्ति यानी सर्व के साथ प्रेम में गिर जाना ।

भक्ति यानी सर्व को आलिंगन करने की चेष्टा ।

और, भक्ति यानी सर्व को आमंत्रण, कि मुझे आलिंगन कर ले !

'भक्ति कोई शास्त्र नहीं है – यात्रा है ।

भक्ति कोई सिद्धांत नहीं है – जीवन-रस है ।

भक्ति को समझ के कोई समझ पाया नहीं ।

भक्ति में डूब कर ही कोई भक्ति के राज को समझ पाता है ।

'नाच कहीं ज्यादा करीब है विचार से ।

गीत कहीं ज्यादा करीब है गद्य से ।

हृदय करीब है मस्तिष्क से ।

'भक्ति-शास्त्र शास्त्रों में नहीं लिखा है – भक्तों के हृदय में लिखा है ।

भक्ति-शास्त्र शब्द नहीं, सिद्धांत नहीं – एक जीवंत सत्य है ।

जहाँ तुम भक्त को पा लो, वहीं उसे पढ़ लेना; और कहीं पढ़ने का उपाय नहीं है ।

'भक्ति बड़ी सुगम है

– लेकिन जिनकी आँखों में आँसू हों, बस उनके लिए ।

देवर्षि नारद

...' नारद का व्यक्तित्व अगर ठीक से समझा जा सके तो दुनिया में एक नये धर्म का आविर्भाव हो सकता है

—एक ऐसे धर्म का जो संसार और परमात्मा को शत्रु न समझे, मित्र समझे

—एक ऐसे धर्म का, जो जीवन-विरोधी न हो, जीवन-निषेधक न हो, जो जीवन को अहोभाव, आनंद से स्वीकार कर सके

—एक ऐसे धर्म का, जिसका मंदिर जीवन के विपरीत न हो, जीवन की गहनता में हो !

कहा जाता है कि नारद ढाई घड़ी से अधिक एक जगह नहीं टिकते ।

'क्या टिकता है ?
ढाई घड़ी बहुत ज्यादा समय है । कुछ भी टिकता नहीं है ।
डबरे टिकते हैं, नदियाँ तो बही चली जाती हैं ।
नारद धारा की तरह हैं ।
बहाव है उनमें ।
प्रवाह है, प्रक्रिया है, गति है, गत्यात्मकता है ।'

भगवान श्री रजनीश

अनुक्रमणिका

दिनांक ११ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः ॥ ४३ ॥

कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाश-
कारणत्वात् ॥ ४४ ॥

तरंगायिता अपीमे संगात्समुद्रायन्ति ॥ ४५ ॥

कस्तरति कस्तरति मायाम ? यः संगास्त्य-
जति यो महानुभावं सेवते निर्ममो भवति
॥ ४६ ॥

यो विविक्तस्थानं सेवते, यो लोकबन्धमुन्मूल-
यति, निस्त्रैगुण्यो भवति, योगक्षेमं त्यजति
॥ ४७ ॥

यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यस्यति
ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥ ४८ ॥

वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं
लभते ॥ ४९ ॥

स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ॥ ५० ॥

शून्य की झील : प्रेम के कमल

जो नहीं है, उसे निर्बल मत जानना। जो नहीं है, उसमें भी बड़ा बल है। अन्यथा, मरु-मरीचिकाएँ मनुष्य को आकर्षित न करतीं और स्वप्नों पर भरोसा न आता, क्षितिज आमंत्रण न देता, स्वप्न सत्य मालूम न होते।

जो नहीं है, वह भी बड़ा प्रबल है, और मन के लिए 'जो है' उससे भी ज्यादा प्रबल है। मन उसे देख ही नहीं पाता, 'जो है'। मन सदा उसका ही चिंतन करता है जो नहीं है, जिसका अभाव है। जो हाथ में नहीं है, मन उसका विचार करता है। जो हाथ में है, उसे तो मन भूल ही जाता है।

मन के इस सूत्र को ठीक से समझ लेना ज़रूरी है, तो ही भक्ति-सूत्र समझ में आ सकेंगे। क्योंकि मन के विपरीत जो गया, वही भक्ति को उपलब्ध हुआ। मन के साथ जो चला, वह कभी भगवान तक न पहुँच सकेगा।

भगवान यानी 'जो है'। भक्ति यानी 'जो है', उसे देखने की कला।

लेकिन 'जो है', वह हमें दिखायी क्यों नहीं पड़ता? जो है वह तो हमें सहज ही दिखायी पड़ना चाहिए। 'जो है' उसे खोजने की ज़रूरत ही क्यों हो? 'जो है' उसे हम भूले ही क्यों, उसे हम भूले ही कैसे? 'जो है' उसे हमने खोया कैसे? 'जो है' उसे खोया कैसे जा सकता है?

इसलिए पहली बात समझ लेनी ज़रूरी है : मन का नियम। मन उसी को जानता है जो नहीं है। तुम्हारे पास अगर दस हज़ार रुपये हैं तो उन दस हज़ार रुपयों को मन भूल जाता है; मन उन दस लाख रुपयों का चिंतन करता है जो होने चाहिए, पर हैं नहीं। मन अभाव का चिंतन करता है। जो पत्नी तुम्हें उपलब्ध है मन उसे भूल जाता है। जो पत्नी उपलब्ध नहीं है, जो स्त्री उपलब्ध नहीं है, मन उसकी कल्पनाएँ करता है, योजनाएँ बनाता है। तुम्हें जो मिला है, मन उसे देखता ही नहीं; मन उसी पर नज़र रखता है, जो मिला नहीं है। हाथ की असलियत मन को नहीं भाती, स्वप्न के आभास भाते हैं। मन स्वप्न के भोजन पर जीता है। मन जीता ही स्वप्न के सहारे है।

जब भी तुम आँख बंद करोगे, भीतर सपनों का जाल पाओगे — चलते ही रहते

हैं, रुकते ही नहीं। तुम आँख खोले काम में भी लगे हो, तब भी भीतर उनका सिलसिला जारी रहता है; तब भी पर्त-दर-पर्त सपने भीतर घने होते रहते हैं। तुम देखो या न देखो, लेकिन मन सपने बुनता रहता है। मन का सपनों का ताना-बाना क्षणभर को रुकता नहीं। उसी सपने के जाल का नाम माया है। उसी सपने के जाल में उलझे तुम परेशान और पीड़ित हो।

जो नहीं है उसने तुम्हें अटकाया है। जो नहीं है उसने तुम्हें भरमाया है। जो नहीं है उसने तुम्हारी आँखें बंद कर दी हैं; और जो है उसे देखना मुश्किल हो गया है।

रात तुम स्वप्न देखते हो, कितनी बार देखे हैं; हर बार सुबह जाग कर पाया, झूठे थे! लेकिन फिर जब रात आज देखोगे स्वप्न तो देखते समय सच मानोगे। झूठ को सच मानने की तुम्हारी कितनी प्रगाढ़ धारणा है! कितनी बार जाग कर भी, कितनी बार देख कर भी कि सपने सुबह झूठ सिद्ध हो जाते हैं, फिर भी जब तुम रात स्वप्न देखोगे आज, तो सच मालूम होगा, शक भी न आएगा।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'हमारे मन में श्रद्धा नहीं है। हम बड़े सन्देहशील हैं। हमारा निस्तार कैसे होगा?' मैं उन कहता हूँ, 'मैंने अभी तक सन्देहशील व्यक्ति देखा नहीं। तुम सपनों तक पे श्रद्धा करते हो, सत्य की तो बात ही छोड़ो। तुम सपनों तक पे भरोसा करते हो, उन तक पे तुम्हें अभी सन्देह नहीं आया, तो तुम और किस पर सन्देह करोगे? जो नहीं है, उस पर भी सन्देह नहीं हो पाता, तो जो है उस पर तुम कैसे सन्देह करोगे?'

सन्देहशील व्यक्ति मैंने अभी देखा नहीं; क्योंकि जो सन्देहशील हो वह पहले तो सपनों को तोड़ेगा। जिसने सपने तोड़े उसके भीतर श्रद्धा का जन्म हुआ। जिसने सपने तोड़े, उसने तब सत्य को जानने का मार्ग साफ कर लिया। आज फिर रात जब तुम सपना देखोगे तब फिर खो जाओगे सपने में। ऐसा कितनी बार हुआ है, कितने जन्मों-जन्मों हुआ है! रात की छोड़ो, क्योंकि रात तुम कहोगे कि हम बेहोश हैं, चलो दिन का ही विचार करें। दिन में भी कितनी बार क्रोध किया है, और कितनी बार तय किया है और पछताये हो कि अब नहीं, अब नहीं, बहुत हो गया। फिर जब क्रोध पकड़ लेता है और क्रोध का धुआँ जब तुम्हें घेर लेता है, तब तुम फिर भूल जाते हो; सारे पछतावे, सारे पश्चाताप, सारे निर्णय, संकल्प व्यर्थ हो जाते हैं। क्रोध का ज़रा-सा धुआँ और तुम्हारे पैर उखड़ जाते हैं, जड़ें टूट जाती हैं, तुम फिर बेहोश हो जाते हो, तुम फिर बेसुध हो जाते हो। कितनी बार नहीं देखा कि कामवासना व्यर्थ ही भरमाती है; भटकाती है, पहुँचाती कहीं नहीं; दूर से दिखाती है मरूद्यान, पास आने पर मरुस्थल ही पाये जाते हैं। कितनी बार नहीं जाना है इसे! लेकिन फिर तुम भटकोगे, फिर तुम खोओगे। फिर कामवासना पकड़ेगी और तब फिर तुम सपने सजाने लगोगे — और मन कहेगा, 'हो सकता है,

इतनी बार झूठ सिद्ध हुई हो, अब की बार न हो ! अपवाद हो सकते हैं । जो अब तक नहीं हुआ, शायद अब हो जाए ।'

मन 'शायद' पर जीता है । मन आशा पर जीता है ।

उमरखय्याम की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं कि मैंने ज्ञानियों से पूछा कि आदमी अब तक थका नहीं, किस सहारे जीता है ? आदमी अब तक विषाद को उपलब्ध नहीं हुआ, किस सहारे जीता है ? ज्ञानी उत्तर न दे पाये । फकीरों से पूछा । फकीर भी उलझे हुए मालूम पड़े ।

तब कोई राह न देख कर, उमरखय्याम कहता है कि एक रात मैंने आकाश से पूछा कि तूने तो सभी को चलते देखा, सदियों-सदियों, युगों-युगों से, कितने लोग उठे, आशाओं और सपनों से भरे, कितने लोग धूल में गिरे–तूने तो सबको देखा, सब के अरमान मिट्टी में मिलते देखे, तुझे तो पता चल गया होगा अब तक, आदमी किसके सहारे चलता है ! अब तक थकता नहीं, रुकता नहीं !

तो आकाश ने कहा, 'आशा के सहारे ।'

तुम्हारा असली आकाश आशा है–जो नहीं हुआ शायद, हो जाए ! जो किसी को नहीं हुआ शायद तुम्हें हो जाए ! जो कभी किसी को नहीं हुआ, शायद . . . ।

भविष्य को किसने जाना है ? सिकंदर हार जाते हैं, लेकिन तुम चले जाते हो, चलते चले जाते हो । दिन में भी तुम सपने देखते हो, रात में ही नहीं । राह पर चलते हो तब भी सपने देखते हो । दुकान पर बैठते हो, बाज़ार में उठते हो, बैठते हो तब भी सपने देखते हो । सपने तुम्हारे भीतर एक सतत क्रम हैं । और इन्हीं सपनों के कारण वह नहीं दिखायी पड़ता, जो है । सपनों की धूल तुम्हारी आँख को दबाये है ।

सत्य को जानने के लिए कुछ भी नहीं करना है–सिर्फ असत्य से मुक्त हो जाना है । सत्य को जानने के लिए कुछ भी नहीं करना है – सिर्फ जो नहीं है, उसे देख लेना है कि नहीं है । द्वार साफ है । परदा उठा हुआ है । परदा कभी था ही नहीं ।

कल मैं एक गीत पढ़ता था ।

> हंस मानसर भूला
> सनी पंक में चंचु
> हो गये उजले पर मटमैले
> कंकर चुनने लगा वही जो
> मुक्ता चुगता पहले
> क्षर में क्या ऐसा सम्मोहन
> जो तू अक्षर भूला ?
> कमल नाम से बिछुड़

> काँस के सूखे तिनके जोरे
> अवगुंठित कलियों के धोखे
> कुंठित शूल बटोरे
> पर में क्या ऐसा आकर्षण
> जो परमेश्वर भूला ?
> नीर-क्षीर की दिव्य दृष्टि में
> अंध वासना जागी
> गति का परम प्रतीक बन गया
> जड़ता का अनुरागी
> क्षण को अर्पित हुआ
> साधना का मन्वंतर भूला
> हंस मानसर भूला
> सनी पंक में चंचु
> हो गये उजले पर मटमैले
> कंकर चुनने लगा वही जो
> मुक्ता चुगता पहले
> क्षर में क्या ऐसा सम्मोहन
> जो तू अक्षर भूला ?

क्षण में ऐसा क्या आकर्षण हो सकता है जो शाश्वत भूल जाए ? असार में ऐसा क्या बल हो सकता है जो सार विस्मृत हो जाए । दूसरे में ऐसी क्या पुकार हो सकती है जो अपना स्वभाव भूल जाए । पर है ।

इसलिए पहली बात तुमसे कहता हूँ : व्यर्थ के, असार के, जो नहीं है उसके बल को मत भूलना; उसके बल को स्वीकार करना । जो नहीं है उसमें भी शक्ति है । क्योंकि मन का स्वभाव यही है कि वह जी ही सकता है जो नहीं है उसी के सहारे । जो तुम्हारे पास है अगर तुम उसी को देखो तो मन की जरूरत क्या ? जो वर्तमान में है अगर तुम उसी में जियो तो मन को फैलने का उपाय कहाँ, अवकाश कहाँ ?

अभी तुम यहाँ बैठे हो । अगर तुम यहीं हो सिर्फ–मैं हूँ, तुम हो और यह क्षण है, तो मन मिट गया, तो मन यहाँ उठ न सकेगा । हाँ, तुम सोचने लगो कि दुकान जाना है, दस बजे आफिस पहुंच जाना है–मन प्रविष्ट हुआ । मन के लिए भविष्य चाहिए । तुम अगर एक क्षण बाद की सोचने लगो तो मन जीवंत हुआ । तुम एक क्षण पहले की सोचने लगो, तो मन जीवंत हुआ । तुम अगर अभी हो, यहीं हो, तो मन नहीं हो गया ।

वर्तमान मन की मृत्यु है । भविष्य और अतीत मन का जीवन है । न तो अतीत है–जा चुका; न भविष्य है–अभी आया भी नहीं । मन जीता ही, 'नहीं' में है । मन

का स्वभाव नकार है—अनस्तित्व, अभाव । मन नास्तिक है । इसलिए मन से कोई कभी आस्तिक नहीं हो पाता । मन के आस्तिक तुम्हें दिखायी पड़ेंगे—मंदिरों-मस्जिदों में बैठे हैं, पूजा-पाठ करते हैं, लेकिन पूजा-पाठ वे कर नहीं रहे हैं; उनका मन कहीं और भी आगे गया है । कोई स्वर्ग को माँगता होगा, कोई पुण्य के फल माँगता होगा । कोई परलोक के सुख माँगता होगा, कोई इसी लोक के सुख माँगता होगा; लेकिन मन कहीं और जा चुका है ।

मन न हो, तो पूजा । मौन पूजा होगी । मन न हो, तो पूजा होगी, तो प्रार्थना होगी, तो ध्यान होगा । जहाँ मन नहीं वहीं मंदिर शुरू होता है – मन की मौत पर ।

इसे थोड़ा खयाल से समझ लो ।

तुम अगर यहीं हो जाओ, इसी क्षण में, फिर कुछ पाने को नहीं है—पाया ही हुआ है । परमात्मा मिला ही हुआ है । तुमने उसे खोया कभी नहीं । खोने की भी भ्रांति है । एक सपने में तुम लीन हो गये हो । एक सपना तुम्हें अपने से दूर ले गया है । विचारों के ऊहापोह में तुम उलझ गये हो । जो तुम्हारे पैर के नीचे है, वही मंजिल दिखायी पड़नी बंद हो गयी है । जो तुम्हारे हृदय के भीतर है, इस क्षण भी गुनगुना रहा है, उसी का गीत सुनायी पड़ना बंद हो गया है । तुम अपने से दूर हो गये हो ।

भक्ति-सूत्र तुम्हें समझ में आ सकेंगे, अगर तुम मन की इस अवस्था को ठीक से समझ लो और इसके बाहर होने शुरू हो जाओ । स्वप्न से जागो । परमात्मा को पाने की कोई भी ज़रूरत नहीं है—उसे कभी खोया नहीं है । स्वप्न से जागते ही तुम हँसोगे । जैसे आज रात तुम यहाँ सो जाओ और सपने में देखो कि कलकत्ते में हो या लंदन में हो या दिल्ली में हो—और सुबह आँख खुले और तुम पाओ कि पूना में हो; न कलकत्ता थे, न लंदन थे, न दिल्ली थे—सब सपना था । लेकिन सपने में जब तुम दिल्ली में थे तब तुम सोच भी न सकते थे कि तुम हो पूना में । ठीक ऐसा ही हुआ है । तुम हो तो परमात्मा में, लेकिन तुम्हारा सपना तुम्हें कहीं और बतलाता है ।

पहला सूत्र : 'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए ।'

दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः ।

क्या है दुःसंग ?

पहला तो मन का संग, दुःसंग है ।

तुमने भक्ति-सूत्र की व्याख्याएँ पढ़ी होंगी, तो उनमें दुःसंग कहा है उन लोगों को जो बुरे हैं । उनसे क्या लेना-देना ? बुरा आदमी तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगा, अपना ही बिगाड़ रहा है । इसलिए जिन्होंने भक्ति-सूत्र की व्याख्या में लिखा है, 'बुरे लोगों का साथ छोड़ दो, वे समझे नहीं ।

दुःसंग का अर्थ है : मन का साथ छोड़ दो । यही एकमात्र दुःसंग है । तुम बुरे लोगों का साथ छोड़ दो और मन का साथ बनाये रखो तो कोई दुःसंग छूटने वाला नहीं ।

तुम जहाँ रहोगे, तुम जैसे रहोगे, वहीं मन दुःसंग खड़ा कर लेगा । मन बड़ा उत्पादक है, बड़ा सृजनात्मक है । परमात्मा के बाद अगर कहीं कोई स्रष्टा है तो मन है । कितना सृजन करता है—ना-कुछ से । शून्य में आकृतियाँ बना लेता है । शून्य में रंग भर देता है । शून्य में इन्द्रधनुष उग आते हैं, फूल खिल जाते हैं । और अपने ही बनाये खेल में खुद अनुरक्त हो जाता है । अपने ही हाथ से बनायी छायाओं के पीछे दौड़ने लगता है ।

इसलिए मेरी व्याख्या है : मन का साथ छोड़ दो ।

'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए ।'

मैं तुमसे नहीं कहता, चोर का साथ छोड़ो । मैं तुमसे नहीं कहता, क्रोधी का साथ छोड़ो । मैं तुमसे कहता हूँ, मन का साथ छोड़ो; क्योंकि मन ही चोर है, मन ही क्रोधी है । यह सवाल दूसरे का नहीं है, अन्यथा धार्मिक लोग बड़े कुशल हो गये हैं—'दुःसंग का त्याग करना चाहिए'—तत्क्षण उनको समझ में आ जाता है, किन-किन का साथ छोड़ना है । असली बात चूक जाती है । यह अपना साथ, यह 'मैं-भाव' यह तो बच रहता है, और भी सँभल के बच जाता है । यह 'मैं' कहने लगता है, 'मैं साधु हो गया, क्योंकि अब मैं चोरों के साथ उठता-बैठता नहीं । अब मैं बुरे लोगों के साथ नहीं उठता-बैठता ।'

लेकिन साधु तो वही है जिसे दूसरों में बुरा दिखायी न पड़े । साधु तो वही है जिसे सभी जगह साधु का दर्शन होने लगे । साधु तो वही है जिसकी आँखें जहाँ पड़ें वहीं साधुता का आविर्भाव हो । तो यह साधु की व्याख्या तो नहीं हो सकती कि चोर का साथ छोड़ दो । कहीं कुछ भूल हो गयी । हाँ, यह बात सच है कि अगर तुमने अपने मन के चोर का साथ छोड़ा तो चोरों से तुम्हारा साथ अपने-आप छूट जाएगा ।

आखिर चोर से तुम्हारा साथ क्या है ?—क्योंकि तुम भी चोर हो । और क्या साथ हो सकता है ? दुष्ट से तुम्हारी संगति क्या है ?—क्योंकि तुम्हारे भीतर भी दुष्टता है, उसी से सेतु बनता है । बुरे आदमी से तुम्हारा साथ क्यों हो गया है ?—तुमने किया है । तुमने निमंत्रण दिया है । बुरा ऐसे ही नहीं आ गया है; तुमने बुलाया है । चाहे तुम खुद भूल भी गये होओगे कि कब बुलावा भेजा था, कब निमंत्रण-पत्र लिखा था, लेकिन आया तुम्हारे ही बुलावे पर है ।

इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है । इस जगत में जो कुछ भी है, व्यवस्था-बद्ध है । यह जगत एक परिपूर्ण व्यवस्था है । अगर तुम्हारा चोर से साथ है तो किन्हीं-न-किन्हीं रास्तों से तुमने चोर को बुलाया होगा । बीज बोए होंगे, तभी तो फसल काटोगे । चोर से साथ होने का एक ही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर कहीं चोर है । समान समान से मिलना चाहता है । शराबी से दोस्ती हो गयी है, क्योंकि तुम्हारे भीतर शराबी है । हत्यारे से नाता बन गया है, क्योंकि तुम्हारे भीतर हत्या करने की भावना और कामना छिपी है । हिंसा भीतर हो तो हिंसक से दोस्ती बन

जाएगी। अहिंसा भीतर हो तो हिंसक से दोस्ती बन ही न पाएगी, तालमेल न बैठेगा –छोड़ना न पड़ेगा, बनना ही मुश्किल हो जाएगा।

तो मेरी व्याख्या को ठीक से समझ लेना : अगर मन का साथ छूट जाए, तो और व्याख्याकारों ने जो कहा है, वह तो अपने से घटित हो जाता है, उसकी चिंता भी नहीं करनी पड़ती। इधर भीतर मन गया–क्रोध गया, लोभ गया, मोह गया, काम गया। वे सब मन के ही फैलाव हैं, वे सब मन की ही सेनाएँ हैं; मन का सम्राट उन्हीं सेनाओं के सहारे जीता है–इधर मन मरा कि सेनाएँ बिखरीं। इधर सम्राट गया कि साम्राज्य गया। तुम अचानक पाओगे : बुरे से सम्बन्ध नहीं बनता, तुम बनाना भी चाहो तो नहीं बनता। वस्तुतः तुम अगर बुरे के पीछे भी जाओगे तो बुरा तुमसे बचेगा, बुरा तुमसे डरने लगेगा। क्योंकि शुभ इतनी बड़ी शक्ति है, प्रकाश इतनी बड़ी शक्ति है कि अंधेरा छिप जाता है। जहाँ प्रकाश आया, अँधेरा भागा। अँधेरा ढूंढने लगता है कोई स्थान, छुप जाए, बचा ले।

साधु अगर असाधु की दोस्ती करे, तो असाधु या तो भागेगा या मिटेगा। यही स्वभाविक भी मालूम होता है। लेकिन यह दुनिया बड़ी उलटी है। यहाँ साधु असाधु से डर रहा है। ज़रूर साधु झूठा है, असाधु मजबूत है। साधु असाधु से डर रहा है। यह दुनिया तो ऐसी हुई कि दवाएँ बीमारियों से डर रही हैं। प्रकाश अँधेरे से भागा हुआ है, डरा हुआ है कि छिप जाऊँ, कहीं अँधेरा आ के मुझे मिटा न दे। तब तो फिर 'सत्यमेव जयते' कभी भी न हो सकेगा, सत्य की विजय फिर कभी न होगी। सत्य तो असत्य से डरा हुआ है।

नहीं, व्याख्या की भूल है। तुम जिसे साधु कहते हो, अगर वह असाधु से डरा है तो सिर्फ इसका सबूत देता है कि साधु नहीं है; भीतर असाधु है और डरता है कि असाधु के संग-साथ रहा तो भीतर का असाधु प्रगट होने लगेगा, बाहर आ जाएगा। यही भय है। असाधु नहीं डरता साधु के साथ होने से, कोई भय नहीं है। लेकिन जब सच्चा साधु होगा तो असाधु डरेगा, या तो बचेगा, या भागेगा।

मैंने सुना है, महावीर के समय में एक बहुत बड़ा डाकू हुआ। वह महावीर से बहुत डरता था। वह बूढ़ा हो गया था। उसने अपने बेटे को शिक्षा दी कि देख, और सब करना, इस एक आदमी के आसपास मत जाना। यह खतरनाक है, यह अपने धंधे का बिलकुल दुश्मन है। इसके पास गये कि मिटे। तो अगर कभी भूल-चूक से भी तू गुज़रता हो और महावीर बोलता हो, तो अपने कानों में अंगुलियाँ डाल लेना। इसी तरह बामुश्किल मैंने अपने को बचाया है।

निश्चित ही इस डाकू के भीतर साधु छिपा रहा होगा, अन्यथा कौन महावीर से बचता है! इसको डर क्या है? यह जानता है कि महावीर ठीक है। लेकिन भूल-चूक हो गयी। बेटा आखिर बेटा ही था; बाप तो बहुत कुशल पुराना डाकू था, वह बचाता रहा अपने को। बेटा एक दिन जा रहा था रास्ते से। चूंकि बाप ने मना किया

था, इसलिए मन में और आकर्षण भी हो गया कि एकाध शब्द सुन लेने में क्या हर्ज है; ऐसा थोड़ी कि कुछ एकाध शब्द सुन लोगे और सब बदल जाएगा।

तो महावीर बोलते थे, द्वार पर कहीं दूर खड़े हो के एक वाक्य सुना, लेकिन फिर बाप की याद आयी, अंगुलियाँ कान में डाल लीं, भाग खड़ा हुआ। पर एक वाक्य कान में पड़ गया। महावीर से किसी ने पूछा था, कोई प्रश्न, और वे जवाब देते थे। पूछा था प्रेत-योनि के सम्बंध में, कि प्रेत होते हैं तो कैसे होते हैं, देव होते हैं तो कैसे होते हैं।

फिर वर्षों बीत गये, यह डाकू पकड़ा गया। सम्राट के घर डाका डाला था। सम्राट इसके बाप से परेशान था; बाप मर गया, उसके बेटे से परेशान। और कभी कोई बात पकड़ी न जा सकी थी, उनके खिलाफ जुर्म हाथ में न था, रंगे हाथ वे कभी पकड़े न गये थे। सम्राट ने अपने मनोवैज्ञानिकों से सलाह ली कि इससे सारी बातें निकलवा लेनी हैं; अब हाथ में पड़ गया है तो छोड़ नहीं देना है। कैसे निकलवाएँ इससे सारी बातें?

मनोवैज्ञानिकों ने एक उपाय सोचा। उन्होंने इसे खूब शराब पिलाई। शराब पिला के महल की जो सुन्दरतम स्त्रियाँ थी, उनको इसके चारों तरफ नृत्य करने को कहा। यह आदमी बीच में बैठा है नशे में सरोबोर, वे स्त्रियाँ नाचने लगीं। ऐसा सुन्दर महल इसने कभी देखा भी न था। वे स्त्रियाँ इसे अप्सराएँ मालूम होने लगीं। नशा! इसे शक होने लगा कि मैं इस लोक में हूँ या परलोक में पहुँच गया हूँ। इसने किसी को पूछा। तो मनोवैज्ञानिकों ने यही तो उपाय किया था। उन्होंने कहा कि तुम मर गये हो, स्वर्ग में आ गये हो। और अब तुम अपने जीवन भर में तुमने जो भी पाप किये हैं, उन सब का ब्यौरा दे दो, ताकि परमात्मा उन्हें माफ कर दे। उसकी कृपा अनंत है, भयभीत मत हो। तुम अपना एक-एक पाप बोल दो। जो पाप तुम छिपाओगे वही बच रहेगा; जो तुम बता दो उससे तुम्हारा छुटकारा हो जाएगा।

तब ज़रा डाकू चौंका : 'सब पाप बता दे।' तब उसे याद आया, उस दिन का महावीर का वचन कि देवलोक में देवता होते हैं तो उनकी छाया नहीं पड़ती। तो उसने गौर से देखा कि अगर यह देवलोक है...। स्त्रियों की छाया पड़ रही थी, वह सम्हल गया। उसे लगा कि यह सब धोखा है, नशे में हूँ। उसने एक भी पाप के सम्बंध में कुछ भी न कहा। अपने पुण्य की बातें बताईं जो उसने कभी भी न किये थे। उसने कहा, 'पाप तो कभी किये ही नहीं, मैं करूँ भी क्या? परमात्मा क्षमा कर सकता है, लेकिन मैंने किये नहीं। पुण्य ही पुण्य किये हैं।'

सम्राट को उसे छोड़ देना पड़ा। वह जाल काम न आया। वह जैसे ही वहाँ से छूटा, सीधा महावीर के पास पहुँचा, उनके पैरों में गिर गया, और कहने लगा, 'तुम्हारे एक वचन ने मेरे प्राण बचाये। अब मैं तुम्हें पूरा-पूरा ही सुन लेना चाहता हूँ। इतना ही सुना था, वह भी कुछ बड़ी काम की बात न थी, लेकिन काम पड़ गयी।

सत्संग काम आ गया । वह भी ऐसा चोरी-चोरी द्वार पर खड़े हो कर, एक वाक्य सुना था कि देवताओं की छाया नहीं पड़ती । तब तो सोचा भी न था कि इसकी कोई सार्थकता हो सकेगी, लेकिन काम पड़ गया, मेरे प्राण बचे । तुमने मुझे बचाया । भयंकर नशे में मुझे डुबाया था और सारा इंतजाम किया था और मैं फँस ही गया था और मैं तैयार ही था बोलने को, ताकि क्षमा कर दिया जाऊँ । अब तुम मुझे पूरा ही बचा लो । इस सम्राट से तुमने बचाया, अब तुम मुझे मृत्यु से भी बचा लो । इस मौत से तुमने मुझे बचाया, अब तुम मुझे सारी मौतों से बचा लो । अब मैं तुम्हारी शरण हूँ ।'

साधु का एक वचन भी सुन लिया जाए तो असाधु के जीवन में रूपान्तरण शुरू हो जाता है–बीज पड़ गया । साधु क्या डरेगा असाधु से ? डरे तो असाधु डरे ।

मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम बुरे लोगों का साथ छोड़ देना । मैं तो तुमसे यह कहूँगा कि तुम उन्हें बुरे देखोगे तो तुम बुरे रह जाओगे । तुम अगर उन्हें बुरे मानोगे तो तुम्हारी बुराई कभी मिट न सकेगी । तुम तो एक साथ छोड़ दो–भीतर के अपने मन का–और तत्क्षण तुम पाओगे : संसार में कोई बुरा न रहा । चोर में भी तब तुम्हें परमात्मा ही छिपा हुआ दिखायी पड़ेगा । हत्यारे में भी तब तुम्हें उसकी ही ज्योति झिलमिलाई दिखायी पड़ेगी । और तुमसे भयभीत होने लगेगा असाधु, क्योंकि तुम असाधुता की मौत सिद्ध होने लगोगे । तुम्हारी छाया जहाँ पड़ेगी, वहाँ से अंधकार हटेगा । निश्चित ही तुम्हारा असाधु से साथ छूट जाएगा । मैं छोड़ने को नहीं कहता हूँ – छूट जाएगा । तुम्हें छोड़ना न पड़ेगा–असाधु भाग खड़ा होगा, या असाधु रूपान्तरित हो जाएगा ।

यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है : 'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए ।' पर दुःसंग है : मन का संग ।

'क्योंकि वह (दुःसंग) काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है ।

इतना साफ है सूत्र, पर व्याख्याकारों से ज्यादा अंधे लोग खोजना मुश्किल है ।

'क्योंकि वह काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है ।'

कौन तुम्हारा सर्वनाश कर सकेगा ? – तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं । तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है और तुमसे बड़ा न तुम्हारा कोई मित्र है । मन से साथ बना रहे तो तुम अपना ही आत्मघात करते रहोगे । मन से साथ छूट जाए तो तुम्हारे जीवन में नवजीवन का संचार हो जाएगा, पुनर्जन्म हो जाएगा ।

काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश, सर्वनाश – इन शब्दों को समझो ।

काम का अर्थ है : सदा इस आशा से जगत को देखना कि उससे कुछ सुख पाना है । काम का अर्थ है : सुख पाने की आकांक्षा से ही चीज़ों को, व्यक्तियों को, घटनाओं को देखना; आकांक्षा से भरे हो कर देखना । जब तुम आकांक्षा से भर के किसी चीज़

को देखते हो, तब तुम्हें चीज़ का सत्स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता, क्योंकि तुम्हारी आकाँक्षा परदा डाल देती है । तुम जिस चीज़ को भी वासना से भर के देखते हो, तुम्हें वही दिखायी पड़ता है जो तुम देखना चाहते हो ।

मैं एक मित्र के साथ गंगा के तट पर बैठा था । वे थोड़े बेचैन हो आए । फिर मुझसे कहने लगे, 'क्षमा करें । आपसे झूठ न कहूँगा, लेकिन मुझे एक थोड़े समय के लिए छुट्टी दें, मैं उस तट तक जाना चाहता हूँ ।' वे गये । मैंने देखा कि वे क्यों जाना चाहते हैं । सुन्दर स्त्री दिखायी पड़ गयी है, वह स्नान कर रही है । वे गये बड़ी आतुरता से, फिर लौटे बड़े उदास । मैंने पूछा, 'क्या हुआ ?' उन्होंने कहा, 'बड़ी भ्रांति हुई । वह स्त्री नहीं है, कोई साधु है । लम्बे बाल..... । पीठ की तरफ से दिखायी पड़ा था । जब पास से जा के देखा तो वह साधु है, स्त्री नहीं है ।'

मैंने उनसे पूछा कि थोड़ा गौर करो, स्त्री तुम्हें दिखायी पड़ी, इसमें तुम इतना ही मत सोचो कि साधु के बालों ने धोखा दे दिया । तुम स्त्री देखना चाहते थे । तुमने आरोपण किया । तुम मुझसे पूछे होते । उतनी दूर जाने की ज़रूरत न थी ।

हम वही देख लेते हैं जो हम कामना करते हैं । तुम अपने चारों तरफ अपनी ही कामना का संसार रच लेते हो ।

दो साधु एक रास्ते से गुज़रते थे । एक साधु दूसरे से कुछ बोल रहा था । उस दूसरे ने कहा कि यहाँ सुनायी भी नहीं पड़ेगा मुझे कुछ । यह बाज़ार, इतना शोरगुल ! यह ज्ञान की बात यहाँ मत करो–एकांत में चल के करेंगे ।

वह साधु वहीं खड़ा हो गया । उसने अपनी जेब से एक रुपया निकाला और आहिस्ता से रास्ते पे गिरा दिया । खननखन की आवाज़ हुई, भीड़ इकट्ठी हो गयी । पहले साधु ने पूछा कि मैं समझा नहीं, यह तुमने क्या किया । उसने रुपया उठाया, जेब में रखा और चल पड़ा । उसने कहा, 'इतना भरा बाज़ार है, इतना शोरगुल मच रहा है; लेकिन रुपये की ज़रा-सी खननखन की आवाज़ –इतने लोग आ गये । ये रुपये के प्रेमी हैं । नरक में भी भयंकर उत्पात मचा हो और अगर रुपया गिर जाए तो ये सुन लेंगे ।'

हम वही सुन लेते हैं जो हम सुनना चाहते हैं । उस साधु ने कहा, 'अगर तुम परमात्मा के प्रेमी हो तो यहाँ भी, बाज़ार में भी परमात्मा के सम्बंध में मैं कुछ कहूँगा तो तुम सुन लोगे ।'

कोई दूसरा बाधा नहीं डाल रहा है । हम वही सुनते हैं जो हम सुनना चाहते हैं । हम वही देखते हैं जो हम देखना चाहते हैं । हमें उसी से मिलन हो जाता है जिससे हम मिलना चाहते हैं । इस जीवन की व्यवस्था को ठीक से जो समझ लेता है वह फिर किसी दूसरे को दोष नहीं देता ।

ध्यान रखना : कामना तुम्हें कभी सत्य को न देखने देगी । सत्य को देखना हो तो कामना-शून्य चित्त चाहिए ।

इस बगीचे में कोई चित्रकार आए तो कुछ और देखेगा। कोई लकड़हारा आ जाए तो कुछ और देखेगा। कोई फूलों को बेचने वाला माली आ जाए तो कुछ और देखेगा। तीनों एक ही जगह आएँगे, लेकिन तीनों के दर्शन अलग-अलग होंगे।

कहते हैं, जब संगीत की परम ऊँचाई उपलब्ध होती है तो वीणा शांत भी रखी हो तो संगीतज्ञ को वे स्वर सुनायी पड़ने शुरू हो जाते हैं, जो उस वीणा से प्रगट हो सकते हैं, जो अभी छुपे हैं, अभी जन्मे भी नहीं। लेकिन कान की उत्कंठा उन्हें भी सुन लेती है जो अभी प्रगट नहीं हुए। अनभिव्यक्त भी अभिव्यक्त हो जाता है। आँख हो देखने वाली तो बीज में भी फूल दिखायी पड़ने लगते हैं।

कहते हैं, चमार रास्तों पर लोगों को देखते हैं तो जूतों को ही देख के आदमी का सब कुछ समझ जाते हैं। जूते की हालत बहुत कुछ बताती है : तुम्हारी आर्थिक दशा; ठीक चल रही है जिंदगी कि ऐसे ही जा रही है; सफलता पा रहे हो कि असफल हो रहे हो; घर से क्रोध में चले आये हो, झगड़ के चले आये हो कि शांति में विदा पायी है—सब तुम्हारे जूते की हालत बता देती है। जूते की शिकन-शिकन में तुम्हारी कथा लिखी है, आत्मकथा है। चमार जूतों को देखता है और सब समझ जाता है। चमार तुम्हारे चेहरे की तरफ देखता ही नहीं। जूतों को देखते-देखते पारंगत हो जाता है। वही उसकी समझ है। वहीं से जानता है।

हज़ारों लोग तुम रास्तों पर चलते हुए देखोगे, लेकिन सभी लोग एक ही रास्ते पर नहीं चल रहे हैं—एक ही रास्ते पर चल रहे हैं यूं तो, लेकिन सबकी नज़र अलग-अलग चीज़ों पर लगी है। भूखा रेस्तराँ, होटल को देखता हुआ चलेगा। जिसने उपवास किया है वही जानता है। फिर कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता संसार में, सिवाय भोजन के। कहते हैं, उपवासे आदमी को चाँद भी तैरती हुई रोटी की तरह मालूम होता है।

संसार तुम्हारा चुनाव है। तुम्हारी वासना चुनती है। जिस चीज़ में तुम उत्सुक नहीं हो वह दिखायी नहीं पड़ती। मेरे पास बहुत-से संन्यासियों ने आ के यह कहा है कि संन्यास लेने के पहले कपड़े की दुकानें दिखायी पड़ती थीं, अब नहीं दिखायी पड़तीं। अब दिखायी पड़ने का सार भी नहीं। एक ही कपड़ा बचा— गेरुआ। अब कपड़े की दुकानें हैं भी कि मिट गयीं—संन्यासी को क्या लेना-देना। बात ही खत्म हो गयी।

जिस बात से हमारा सम्बन्ध टूट जाता है, वह विदा हो जाती है संसार से। जिससे हमारा सम्बन्ध बना रहता है, उसी को हम देखते चलते हैं। ध्यान रखना, तुम्हारा निर्णय तुम्हीं को नहीं बदलता, सारे संसार को बदल देता है— तुम्हारे संसार को बदल देता है। क्योंकि तुम्हारा संसार तुम्हारा निर्णय है।

काम सत्य को न जानने देगा। क्रोध सत्य को न जानने देगा। क्योंकि क्रोध में तो तुम वैसी अवस्था में पहुँच जाते हो जैसे कोई शराबी। कहीं पड़ते हैं पैर, कहीं तुम

रखना चाहते थे। कुछ कह जाते हो, कुछ तुम कहना चाहते थे। पीछे पछताओगे, पहले भी पछताए थे। क्रोध तुमसे ऐसे कृत्य करवा लेता है जो तुम कर ही नहीं सकते थे; जो अपने होश में तुमने कभी न किये होते।

क्रोध यानी बेहोशी।

मोह : किसी को तुम अपना मानते हो, तो देखने के ढंग बदल जाते हैं। जिसे तुम अपना नहीं मानते, देखने के ढंग बदल जाते हैं। वही कृत्य अगर अपना करे तो तुम्हारा निर्णय कुछ और होता है; वही कृत्य कोई दूसरा करे तो निर्णय और हो जाता है। तुम्हारा न्याय तुम्हारे मोह से मर जाता है; सत्य को देखने की क्षमता धूमिल हो जाती है। दूसरा कुछ करे तो पाप; अपना कुछ करे तो ज्यादा-से-ज्यादा भूल। तुम अगर वही काम करो तो मजबूरी; और दूसरा करे तो अपराध!

तुमने कभी खयाल किया?—तुम अगर रिश्वत ले लेते हो, तो मजबूरी, क्या करें, तनखाह से काम नहीं चलता। लेना तुम चाहते नहीं, लेकिन मजबूरी है, बाल-बच्चे हैं, घर-द्वार है—चलाना है। जानते हो, गलत है—मगर इतना भी तुम जानते हो कि अपराध तुमने नहीं किया; तुम क्या करो, समाज ने मजबूर कर दिया है। दूसरा जब रिश्वत लेता है तब अपराध है। तब तुम बड़ा शोरगुल मचाते हो। वस्तुतः तुम्हारा शोरगुल उतना ही बड़ा होता है जितनी तुमने भी रिश्वत ली होती। अपनी भूल को छोटा करने के लिए तुम दूसरे की भूल को बड़ा-बड़ा करके दिखाते हो। तुम संसार में सबकी निंदा करते रहते हो। वही तुम भी करते हो; अन्यथा तुम भी नहीं कर रहे हो।

दूसरे का बेटा असफल हो जाता है, तुम समझते हो, बुद्धिहीन; तुम्हारा बेटा असफल हो जाता है तो शिक्षक की शरारत!

मेरे पास माँ-बाप आ जाते हैं, वे कहते हैं, हमारा बेटा फेल कर दिया, जरूर कोई साजिश है। जो भी फेल होता है, वह कहता है साजिश है; लेकिन दूसरे जो फेल हुए हैं, उनकी बुद्धि ही नहीं तो क्या करेंगे!

तुम कभी गौर करना, मोह तुम्हारी आँख से न्याय को छीन लेता है।

काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश.....। स्मृतिभ्रंश बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है। बुद्ध ने जिसे सम्यक् स्मृति कहा है, यह उसकी विपरीत अवस्था है—स्मृतिभ्रंश। जिसे कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं, होश कहते हैं, स्मृतिभ्रंश उसकी विपरीत अवस्था है। जिसको गुरजियेफ ने सैल्फ-रिमेम्बरिंग कहा है, आत्म-स्मरण, स्मृतिभ्रंश उसकी विपरीत अवस्था है। जिसको नानक ने, कबीर ने सुरति कहा है, स्मृतिभ्रंश उसकी उलटी अवस्था है।

सुरति स्मृति का ही रूप है। सुरतियोग का अर्थ है : स्मृतियोग—ऐसे जीना कि होश रहे; प्रत्येक कृत्य होशपूर्ण हो; उठो तो जानते हुए, बैठो तो जानते हुए।

एक छोटा-सा प्रयोग करो। आज जब तुम्हें फुर्सत मिले घंटे भर की, तो अपने

कमरे में बैठ जाना द्वार बंद करके और एक क्षण को सारे शरीर को झकझोर के होश को जगाने की कोशिश करना – बस एक क्षण को–कि तुम बिलकुल परिपूर्ण होश से भरे हो; बैठे हो, आसपास आवाज चल रही है; सड़क पर लोग चल रहे हैं, हृदय धड़क रहा है; साँस ली जा रही है–तुम सिर्फ होश मात्र हो–एक क्षण के लिए। सारी स्थिति के प्रति होश से भर जाना; फिर उसे भूल जाना; फिर अपने काम में लग जाना। फिर घंटे भर बाद दुबारा कमरे में जा के, फिर द्वार बंद करके, फिर एक क्षण को अपने होश को जगाना–तब तुम्हें एक बात हैरान करेगी कि बीच का जो घंटा था, वह तुमने बेहोशी में बिताया; तब तुम्हें अपनी बेहोशी का पता चलेगा कि तुम कितने बेहोश हो। पहले एक क्षण को होश को जगा के देखना, झकझोर देना अपने को; जैसे तूफान आए और झाड़-झकझोर जाए, ऐसे अपने को झकझोर डालना, हिला डालना। एक क्षण को अपनी सारी शक्ति को उठा के देखना– क्या हूँ, कौन हूँ, कहाँ हूँ ! ज्यादा देर की बात नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि एक क्षण से ज्यादा तुम न कर पाओगे। इसलिए एक क्षण काफी होगा। बस एक क्षण करके बाहर चले जाना, अपने काम में लग जाना–दुकान है, बाज़ार है, घर है–भूल जाना। जैसे तुम साधारण जीते हो, घंटे भर जी लेना। फिर घंटे भर बाद कमरे में जा के फिर झकझोर के अपने को देखना। तब तुम्हें तुलनात्मक रूप से पता चलेगा कि ये दो क्षण अगर होश के थे, तो बीच का घंटा क्या था ! तब तुम तुलना कर पाओगे। मेरे कहने से तुम न समझोगे; क्योंकि होश को मैं समझा सकता हूँ शब्दों में, लेकिन होश तो एक स्वाद है। मीठा, मीठा, मीठा कहने से कुछ न होगा। वह तो तुम्हें मिठाई का पता है, इसलिए मैं मीठा कहता हूँ तो तुम्हें अर्थ पता हो गया। मैं कहूँ स्मृति, सुरति–उससे कुछ न होगा; उसका तुम्हें पता ही नहीं है। तो तुम यह भी न समझ सकोगे कि स्मृतिभ्रंश क्या है। होश को जगाना क्षण भर को, फिर घंटे भर बेहोश; फिर क्षण भर को होश को जगा के देखना–तुम्हारे सामने तुलना आ जाएगी; तुम खारे और मीठे को पहचान लोगे। वह जो घंटा बीच में बीता, स्मृतिभ्रंश है। वह तुमने बेहोशी में बिताया–जैसे तुम थे ही नहीं; जैसे तुम चले एक यंत्र की भाँति; जैसे तुम नशे में थे–और तब तुम्हें अपनी पूरी जिंदगी बेहोश मालूम पड़ेगी।

मन बेहोशी है, स्मृतिभ्रंश है। और स्वभावतः इन सबका जोड़ सर्वनाश है।

'दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए, क्योंकि, वह दुःसंग काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश है।'

'यह काम-क्रोधादि पहले तरंग की तरह (क्षुद्र आकार में) आते हैं, फिर विशाल समुद्र का आकार ग्रहण कर लेते हैं।'

आता है सब बड़े छोटे-से आकार में, तरंग की भाँति। अगर तुमने तरंग को ही न पहचाना और पकड़ा, तो चूक गये। पहले कदम में ही जागना। जब क्रोध की पहली लहर आती है, इतनी सूक्ष्म होती है कि पता भी नहीं चलता, चुपचाप प्रविष्ट हो जाती

है; इतनी हवा के हलके झकोर की तरह आती है कि पत्ता भी नहीं हिलता, आवाज भी नहीं होती। पर तभी होश रखा, तो ही; नहीं तो बीज प्रविष्ट हो गया।

क्रोध की अवस्थाओं को समझो। पहला : क्रोध आ रहा है, अभी आया नहीं; लहर उठी है, लेकिन अभी प्रवेश नहीं हुआ। फिर लहर प्रविष्ट हो गयी, बीज भीतर पड़ गया; देर-अबेर सागर बनेगा। फिर यह सागर जोर से झंझावात करता है। उठती हैं लहरें और तटों से टकराती हैं। फिर उतर गया सागर। फिर लहर भी चली गयी। किनारा फिरशांत रह गया। ये तीन अवस्थाएँ हुई–क्रोध के पहले, फिर क्रोध की, और क्रोध के बाद।

क्रोध के पहले ही जो लहर को देख लेगा, जो जाग जाएगा, वही बच सकता है। लोग अक्सर जब क्रोध जा चुका होता है तब देखते हैं; लेकिन तब तो क्या करोगे ? मेहमान जा चुका ! जो होना था हो चुका ! अब चिड़िया चुग गयी खेत, अब पछताये होत क्या !

लेकिन हम पछताते तभी हैं जब चिड़िया खेत चुग जाती है। तुम सभी पछताये हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो क्रोध करके न पछताया हो। लेकिन तुम्हारा पश्चात्ताप व्यर्थ है। यह तो तब आता है जब सागर उतर चुका। फिर तो तुम करोगे भी क्या ? फिर तुम पछता सकते हो और भविष्य के लिए निर्णय ले सकते हो कि अब क्रोध न करूँगा। लेकिन ये निर्णय भी काम न आएँगे। क्योंकि तुमने एक छोटी-सी बात भी न सीखी, जिंदगी भर हो गयी क्रोध करते, कि जब क्रोध आता है तब तुम्हारा होश नहीं रह जाता, तो निर्णय काम कैसे आएगा ? जब क्रोध आता है तब होश नहीं रह जाता, तो निर्णय का भी होश नहीं रह जाता। जब क्रोध चला जाता है, तुम बड़े बुद्धिमान हो जाते हो। क्रोध चले जाने पर कौन बुद्धिमान नहीं हो जाता ! कामवासना का ज्वर उतर जाने पर कौन बुद्धिमान नहीं हो जाता ! बुढ़ापे में सभी बुद्धिमान हो जाते हैं। लेकिन उस बुद्धिमत्ता का कोई मूल्य नहीं है।

क्रोध की लहर जब आए...यह सूत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है : ये काम, क्रोधादि-पहले तरंग की तरह (क्षुद्र आकार में) आ कर भी समुद्र का आकार धारण कर लेते हैं।'

बीज से ही सुलझ लेना। बो दिया, फिर तो फसल काटनी ही पड़ेगी। फिर पछताना तो एक तरकीब है। वह तरकीब भी बड़ी चालाक है। अक्सर लोग क्रोध करके पछताते हैं और सोचते हैं कि बड़े भले लोग हैं, कम-से-कम पछताते तो हैं। लेकिन मेरे जाने, हज़ारों लोगों के निर्णयों को देख कर, एक बात तुमसे कहना चाहूँगा : क्रोध करके पछताना पुनः क्रोध करने की तैयारी है। तुम्हारी एक प्रतिमा है तुम्हारे मन में कि तुम बड़े साधुपुरुष, साधुचित्त हो। क्रोध करके तुम्हारी प्रतिमा खंडित हो जाती है, गिर जाती है, सिंहासन से नीचे पड़ जाती है। पछता के तुम उसे वापस सिंहासन पे रखने की कोशिश करते हो कि 'भला क्रोध हो गया, भूल हो गयी, मनुष्य से भूल हो जाती है; ऐसा कोई बहुत बड़ा पाप नहीं हो गया है; किसको क्रोध

नहीं होता !' और फिर तुम समझाते हो कि 'क्रोध ज़रूरी भी था, न करते तो हानि होती; ऐसे अगर क्रोध न करोगे तो हर कोई छाती पे चढ़ बैठेगा। आखिर लोगों को डराना तो पड़ेगा ही। मारो मत, कम-से-कम फुफकारो तो। कोई मारा तो नहीं, किसी की हत्या तो की नहीं–सिर्फ फुफकारे।'

तुम इस तरह के तर्क अपने लिए खोज लोगे। या तुम कहोगे कि बच्चा था, अगर उसको न डाँटते न डपटते, बिगड़ जाता। उसके भविष्य के सुधार के लिए। तुम हज़ार बहाने खोज लोगे यह समझाने के लिए कि क्रोध ज़रूरी था। हालाँकि तुम जानते हो कि कोई भी क्रोध ज़रूरी नहीं है। अगर तुम यह जानते न होते तो तुम यह भी निर्णय करने की चेष्टा क्यों करते कि ज़रूरी था? यह तर्क भी तुम इसलिए खोजते हो कि भीतर चोट खलती है, भीतर तुम जानते हो कि भूल हुई है। अब भूल को लीपा-पोती करते हो। अब भूल को सजाते हो। सिंहासन पर फिर प्रतिमा को बिठा लेते हो। फिर तुम उसी जगह आ जाते हो जहाँ क्रोध करने के पहले थे। इसका अर्थ हुआ : अब तुम फिर पुनः क्रोध करने के लिए उतने ही तत्पर हो जितने पहले थे।

पश्चात्ताप क्रोध की तरकीब है। पश्चात्ताप से धर्म का कोई सम्बंध नहीं। धार्मिक व्यक्ति पछताता नहीं। और धार्मिक व्यक्ति व्यर्थ के निर्णय नहीं लेता, व्रत, कसमें नहीं खाता। धार्मिक व्यक्ति तो जब कोई चीज़ को समझ लेता है तो उसकी समझ ही उसकी कसम है; उसकी समझ ही उसका पश्चाताप है; उसकी समझ ही उसकी क्रांति है। तब फिर वह यह नहीं कहता कि मैं क्रोध न करूँगा–वह इतना ही कहता है कि अब जब क्रोध आएगा तो मैं जागूँगा।

इस फर्क को समझ लो।

क्रोध न करूँगा, यह तो बेहोश आदमी का ही निर्णय है। यह तो तुम बहुत बार कर चुके और बहुत बार झुठला चुके। समझदार आदमी यह कहता है कि एक बात तो मैं समझ गया कि क्रोध जब आता है, मैं बेहोश हो जाता हूँ; इसलिए अब होश रखने की कोशिश करूँगा। क्रोध करूँगा कि नहीं करूँगा, यह मेरे बस में कहाँ; बस में ही होता तो पहले ही कभी का बंद कर दिया होता। मैं अवश हूँ, असहाय हूँ। इसलिए यह तो नहीं कह सकता कि क्रोध न करूँगा–इतना ही कर सकता हूँ कि इस बार जब क्रोध आएगा तो होश से करूँगा।

इस फर्क को बहुत गौर से ले लेना : 'क्रोध तो करूँगा, लेकिन होश से करूँगा।' और क्रोध अगर होश से किया जाए तो होता ही नहीं। क्रोध होश से करना तो ऐसे ही है जैसे जानते हुए पत्थर को कोई रोटी समझ के भोजन करे। क्रोध होश से करना तो ऐसा ही है जैसे जानते हुए कोई दीवाल से निकलने की कोशिश करे, सिर टकराए, लहूलुहान हो जाए। जानते हुए क्रोध करना तो ऐसे ही है जैसे जानते हुए कोई आग में हाथ डाले। 'इसलिए जानते हुए करूँगा, होशपूर्वक करूँगा।'

'होशपूर्वक' का अर्थ है कि लहर आएगी तब जागूँगा। तूफान जब जा चुका

होगा तब पछताने का कोई अर्थ नहीं है। 'पकड़ूँगा प्रारम्भ में, बीज में।' जिसने पहले पकड़ लिया, वह मुक्त हो जाता है। फिर बीज को, लहर को सागर बनने की सुविधा नहीं होती। आते सब छोटी-छोटी तरंगों की तरह हैं, इसलिए तो धोखा दे जाते हैं।

जब क्रोध आता है, तुम सोचते हो : 'किसको पता है? इतना छोटा है, अपने को ही पता नहीं चल रहा।'

ज़रा देखना, क्रोध बड़ा नाज़ुक है; बड़ी हलकी-सी लहर आती है। जाते थे तुम रास्ते से, कोई हँसने लगा; उसने कुछ कहा भी नहीं है; तुम्हारे लिए ही हँसा हो, ऐसा भी ज़रूरी नहीं है; तुम ही अकेले नहीं हो, दुनिया बड़ी है। और क्या मतलब तुम्हारे लिए हँसे? लेकिन एक लहर तुम्हारे भीतर सरक जाएगी : तुम तन गये। कुछ खटक गया। कुछ अटक गया। तुम्हारा प्रवाह वैसा ही न रहा जो क्षण भर पहले था। उसकी हँसी पत्थर की तरह भीतर चली गयी। तुम और हो गये। अपने चेहरे पे गौर करना, चेहरा तन गया, माथे पे सलवटें आ गयीं, ओंठ भिंच गये, दाँत कस गये, हाथों में तनाव आ गया।

इस सारी छोटी-सी लहर को गौर से देखना। सूक्ष्म निरीक्षण करना, और तुम हैरान होओगे : जैसे-जैसे तुम निरीक्षण करोगे वैसे-वैसे तुम पाओगे कि और भी सूक्ष्म तरंगों का पता चलता है। आदमी हँसा भी नहीं, जिस ढंग से उसने तुम्हारी तरफ देखा–और लहर आ गयी। या यह भी हो सकता है कि उसने तुम्हारी तरफ देखा नहीं,और लहर आ गयी, कि वह राह से तुम्हें बिना देखे गुज़र गया कि क्रोध आ गया। तुम्हें और बिना देखे गुज़र जाए! तो जान के तुम्हें अनदेखा किया, उपेक्षा की! अपमान हो गया।

अहंकार घाव की तरह है। ज़रा-ज़रा-सी चीज़ से ठोकरें खाता है। ज़रा-ज़रा चीज़ों से विक्षुब्ध हो जाता है। इस सबको जाँचना, देखना। कुछ करने की उतनी बात नहीं है जितनी जाग के देखने की बात है। तुम्हारे किये कुछ भी न होगा। तुम अभी हो कहाँ? तुम अभी हो ही नहीं। होश ही होगा तब तुम होओगे। बेहोशी में कोई है?

'कौन तरता है? माया से कौन तरता है?–जो सब संगों का परित्याग करता है, जो महानुभावों की सेवा करता है, और जो ममता-रहित है।'

कौन तरता है? माया से कौन तरता है? कौन पार निकल पाता है इस तिलिस्म से, झूठ के तिलिस्म से, इस झूठ के जादू से, मन के इस फैलाव से। कहो उसे माया।

कौन तर पाता है?–जो सब संगों का परित्याग करता है।

तुम जल्दी ही संग हो जाते हो–किसी भी चीज़ के। क्रोध उठा–तुम संग हुए, तुम साथ हुए, तुमने हाथ में हाथ डाल लिया, तुम हमजोली बने। वासना उठी–तुम साथ हुए। संग होना तुम्हारे लिए इतनी तत्परता से होता है कि इधर भाव उठा नहीं कि उधर तुमने गले में फाँसी डाली नहीं। तुम साथ होने को इतने तत्पर हो–हर चीज़ के! यह संग की प्रवृत्ति ही तुम्हें डुबा रही है। ज़रा दूर-दूर चलो। ज़रा सहयोग

सोच-समझ के करो। संग की इतनी जल्दी मत करो। क्रोध आए, आने दो, तुम साथ मत दो; तुम ज़रा दूर-दूर खड़े रहो—अलगाये, अलग-अलग, पृथक। क्रोध को ऐसे देखो जैसे कोई और हो। क्रोध को ऐसे देखो जैसे 'पर' है—'पर' है ही। 'स्व' तो वही है जो देखने वाला है, जो द्रष्टा है; शेष सब तो 'पर' है।

जो सब संगों का परित्याग करता है, इस सूत्र का अर्थ है : जो द्रष्टा बनता है, साक्षी बनता है। फिर व्याख्याकारों ने बड़ी भूलें की हैं। वे कहते हैं : 'कसम खाओ कि क्रोध नहीं करोगे; व्रत लो ब्रह्मचर्य का; धन का त्याग करो; घर-द्वार छोड़ो, इसको वे संग-परित्याग कहते हैं; मैं नहीं कहता। क्योंकि मैंने उन लोगों को देखा है, जिन्होंने धन छोड़ दिया और फिर भी धन उनसे नहीं छूटा। और मैंने उन लोगों को देखा है, जिन्होंने घर छोड़ दिये, और कुछ भी नहीं छूटा; क्योंकि घर भीतर है, बाहर नहीं।

गृहस्थ होना एक दृष्टिकोण है। संन्यस्त होना भी एक दृष्टिकोण है। तुम घर में रह के संन्यस्त हो सकते हो। तुम संन्यासी हो के गृहस्थ रह सकते हो। यह बात ज़रा सूक्ष्म है। यह इतनी स्थूल नहीं है जितनी लोगों ने पकड़ रखी है। लोग तो बिलकुल पदार्थवादी हैं—जिनको तुम संन्यासी कहते हो, वे भी। जिनको तुम मुनि कहते हो, वे भी पदार्थवादी हैं; क्योंकि उनका त्याग भी पदार्थ का त्याग है, दृष्टि का नहीं। कोई घर को छोड़ देता है, तो उसको तुम त्यागी कहते हो; कोई घर को पकड़ता है तो उसको तुम भोगी कहते हो—लेकिन दोनों की नज़र घर पर है। दोनों पदार्थवादी हैं, मेटीरियलिस्ट। अभी अध्यात्म का दोनों में से किसी को भी अनुभव नहीं हुआ।

अध्यात्म का अर्थ है : अब तुम पदार्थ को न पकड़ते हो न छोड़ते हो—तुम दृष्टियों में रूपान्तरण करते हो; तुम दर्शन बदलते हो; तुम अपने देखने का ढंग बदलते हो।

तो मैं तुमसे कहूँगा, जो सब संगों का परित्याग करता है, इसका अर्थ हुआ : क्रोध उठता है तो हाथ में हाथ डाल के चल नहीं पड़ता—क्रोध से कहता है, 'ठीक है मर्जी, तुम उठे; हम भी सोचेंगे, निर्णय करेंगे। साथ देने योग्य लगेगा, देंगे; नहीं देने योग्य लगेगा, नहीं देंगे। साथ की अनिवार्यता नहीं है। तुम उठे, इसलिए हम साथ देंगे ही—इस भूल में मत पड़ो। साथ हमारा निर्णय होगा—होशपूर्वक।' और तब तुम एक क्रांति होते देखोगे तुम्हारे भीतर।

इस होश की आग में, जो व्यर्थ है जल जाता है : कुंदन बचता है, कचरा जल जाता है।

'जो सब संगों का परित्याग करता है, जो महानुभावों की सेवा करता है, और जो ममता-रहित है।'

'महानुभाव' बड़ा प्यारा शब्द है। महानुभाव का अर्थ है : जिसके भीतर परम भाव का अवतरण हुआ है; सदगुरु; कोई ऐसा व्यक्ति, जिसके भीतर परमात्मा अवतरित हुआ है। महानुभाव : जिसके भीतर आत्यंतिक भाव पैदा हुआ है; जो

उस भाव-दशा में है जिसको हम भगवत्ता कहें। ऐसे व्यक्ति के पास होना। कोई बुद्ध मिल जाए, कोई महावीर, कोई कबीर, कोई नानक, कोई जीसस, कोई मुहम्मद, तो महानुभाव की सेवा करना।

सेवा का कुल इतना अर्थ है कि सत्संग करना। ऐसे व्यक्ति की छाया में बैठना। जैसे थका-हारा पथिक, धूप से बचने के लिए वृक्ष की छाया के तले बैठ जाता है और शीतल विश्राम पाता है—ऐसे ही किसी महानुभाव की छाया में बैठना। संसार से थका हुआ, हारा हुआ, विचलित व्यक्तित्व, किसी महानुभाव की छाया में औषधि को उपलब्ध हो जाता है। जो स्वयं एक हो गया है, उसकी निकटता में तुम भी एक होने लगते हो। जो स्वयं एक हो गया है, उसके पास बैठ कर, उसका सत्य संक्रामक होने लगता है।

ध्यान रखना, बीमारी ही नहीं लगती, स्वास्थ्य भी लगता है। ध्यान रखना, बुराई ही नहीं तैरती एक से दूसरे में, सत्य भी संक्रमित होता है। सत्य से ज्यादा संक्रामक कुछ भी नहीं है। अगर तुम सत्य के पास रहे तो तुम उसके रंग में रंग ही जाओगे। अगर तुम बगीचे से गुज़रे तो तुम्हारे वस्त्र फूलों की थोड़ी-न-बहुत गंध ले ही लेंगे।

...'जो महानुभावों की सेवा करता है और जो ममता-रहित है।'

दो तरह के संबंध हो सकते हैं। एक तो ममता का संबंध है : मेरा बेटा, मेरी माँ, मेरी पत्नी...! यहाँ संबंध 'मेरे' का है। तुम गुरु के साथ 'मेरे' का संबंध मत बनाना। अगर तुमने वहाँ भी 'मेरे' का संबंध बनाया, तो तुम चूकोगे। तुम गुरु के हो जाना। तुम भला कहना कि मैं गुरु का; लेकिन 'मेरा गुरु' ऐसा मत कहना।

तुम धर्म के साथ ममता का संबंध मत बनाना। यह मत कहना कि 'मेरा धर्म'—तुम धर्म के हो जाना। लेकिन तुमने 'मेरा धर्म' कहा तो तुमने धर्म को भी इस ज़मीन पर खींच लिया, बहुत नीचे उतार लिया। तुम कीचड़ में घसीट लाए कमल को।

'मेरे' का जहाँ भी तुमने आधार बनाया, वहीं तुम्हारा मोह, मन, सब वापस लौट आता है। गुरु के साथ तो 'मेरे' का संबंध मत बनाना। गुरु के साथ तो आत्मा का संबंध बनाना, मन का नहीं; ममता का नहीं, प्रेम का। और ये बड़ी फर्क की बातें हैं।

प्रेम जानता ही नहीं 'मैं और 'तू'। ममता 'मैं' और 'तू' के बीच चलती है। ममता बड़ी संकीर्ण है। प्रेम विस्तार है—विस्तीर्णता है। अगर तुम ममता से मुक्त हुए और सौभाग्य से तुमने किसी महानुभाव की छाया पा ली, तो तुम्हारी ज़िंदगी कुछ-की-कुछ हो जाएगी।

आँसू तो बहुत से हैं, आँखों में 'जिगर' लेकिन
बिंध जाए सो मोती है, रह जाए सो दाना है।

—तब तुम बिंध जाओगे । प्रेम तुम्हें बींध देगा । तुम मोती हो जाओगे ।

आँसू तो बहुत-से हैं, आँखों में 'जिगर' लेकिन
बिंध जाए सो मोती है, रह जाए सो दाना है ।

इस संसार में वे ही केवल मोती बन जाते हैं जो किसी महा प्रेम से बिंध जाएँ ।

...'जो निर्जन स्थान में निवास करता है, जो लौकिक बंधनों को तोड़ डालता है, जो तीनों गुणों से परे हो जाता है, और जो योगक्षेम का परित्याग कर देता है ।

...'जो निर्जन स्थान में निवास करता है ।' व्याख्याएँ कहती हैं कि जंगल में निवास करता है, मैं नहीं कहता । क्योंकि निर्जन स्थान एक आत्यंतिक दशा का नाम है—ऐसा भीतर कि वहाँ कोई भी न हो, बस एकाकी तुम्हारा चैतन्य रह जाए, केवल चैतन्य रह जाए । यह कोई भौगोलिक बात नहीं है कि तुम हिमालय चले जाओ कि जंगल में चले जाओ । क्योंकि तुम जंगल भी चले जाओगे तो तुम्हारे मन की भीड़ तो तुम्हारे साथ ही होगी । तुम करोगे क्या जंगल में बैठ कर ? तुम कल्पना के जाल रचोगे, सपने देखोगे । तुम जंगल में बैठ कर भी बाज़ार में ही रहोगे । तुमने बहुत बार मंदिर जा के देखा है, करते क्या हो मंदिर में ? बैठते हो प्रतिमा के सामने—होते वहाँ नहीं । बैठते हो मंदिर में, होते कहीं और हो ।

धर्म के जगत में स्थितियाँ स्थान की तरह समझ ली गई हैं और बड़ी भूल हो गयी है । 'निर्जन' स्थिति है, स्थान नहीं; तुम्हारे भीतर की एक अन्तर्दशा है, जहाँ तुम अकेले हो, शुद्ध कुँआरे, जहाँ तुम किसी से बँधे नहीं, जहाँ तुम आँख बंद करते हो तो सारा जगत समाप्त हो जाता है—बस तुम ही रह जाते हो; 'मैं' का भाव भी नहीं रह जाता, क्योंकि वह भी द्वैत होगा । बस 'होना' होता है—निराकार, निर्विकार ।

...'जो निर्जन स्थिति में निवास करता है', स्वभावतः उसके लौकिक बंधन टूट जाते हैं; उसके जीवन में अलौकिक संबंधों का आविर्भाव होता है; वह संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है, मोक्ष के संबंध निर्मित होते हैं । और ध्यान रखना : संसार के संबंध बाँधते हैं, मोक्ष के संबंध मुक्त करते हैं । काम बाँधता है; प्रेम मुक्त करता है । अगर तुम्हारे प्रेम ने तुम्हें बाँधा हो तो समझना कि काम होगा, प्रेम नहीं । प्रेम तो वही जो तुम्हें मुक्त करे । प्रार्थना तो वही जो तुम्हें मुक्त करे ।

अगर तुम हिन्दू हो गये हो तो बँध गये । यह धार्मिक होने का ढंग नहीं । यह धार्मिक होने की बात ही नहीं । चूक गये । अगर तुम मुसलमान हो गये, बँध गये । तुम धार्मिक हो जाओ, बस काफी है । धार्मिक व्यक्ति न तो हिन्दू होता न मुसलमान होता—धार्मिक व्यक्ति तो उस परम प्रेम में बँधा होता है जो सभी बंधनों को काट जाता है ।

इश्क की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं
बस्तियाँ निकलीं जिन्हें वीरानियाँ समझा था मैं ।

—सोचा था कि प्रेम तो बर्बाद कर देता है ।

इश्क की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं ।

—और बर्बाद हो जाना तो व्यर्थ हो जाना है ।

बस्तियाँ निकलीं जिन्हें वीरानियाँ समझा था मैं ।

—लेकिन बात कुछ और ही निकली । जहाँ मैंने समझा था वीरानियाँ होंगी, मरुस्थल होंगे, कुछ भी न बचेगा—वहीं मैंने पाया कि सब कुछ पा लिया ।

तुम्हारे एकांत में ही 'सर्व' का साक्षात्कार होता है । तुम्हारे प्रेम की आत्यंतिक घड़ी में ही, तुम पाते हो सब पा लिया; यद्यपि पहले ऐसा ही लगता है कि सब छोड़ रहे हैं, सब त्याग रहे हैं ।

मैं तुमसे कहता हूँ : त्याग परम भोग का मार्ग है । उपनिषद् कहते हैं : 'त्येन त्यक्तेन भुंजीथाः । उन्होंने ही भोगा जिन्होंने त्यागा । या उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा ।' यह वचन बड़ा अद्‌भुत है । इसके दोनों अर्थ हो सकते हैं, और दोनों सही हैं । क्योंकि भोग तुम्हारे लिए है ही नहीं; तुम सिर्फ भोग की सोचते हो, करते कहाँ हो ! भोग सिर्फ उनके लिए है जो वर्तमान में जीते हैं । जिन्होंने मन को छोड़ा, वासना को छोड़ा, जो अपने भीतर लौटे, जिन्होंने अपने से संबंध जोड़ा—उनके जीवन में परम भोग के स्वर उठते हैं ।

बस्तियाँ निकलीं जिन्हें वीरानियाँ समझा था मैं ।

...'जो कर्मफल का त्याग करता है, कर्मों का भी त्याग करता है, और तब सब कुछ त्याग कर निर्द्वंद्व हो जाता है ।'

...तीनों गुणों को छोड़ता, योगक्षेम को छोड़ता, कर्मफल त्याग करता है, कर्मों का त्याग करता, और सब कुछ त्याग कर निर्द्वन्द्व हो जाता है—यह भक्त की परिभाषा हो रही है । एक-एक चीज़ को खयाल में लें ।

...तीनों गुणों से परे हो जाता है : तमस, रजस, सत्त्व । परम भक्त न तो तामसी होता—हो ही नहीं सकता, क्योंकि तामस तो तुम जितने मन से दबे होते हो उतना ही होता है । तामस तो मन का अंधकार है, विचारों की भीड़ है, वासनाओं का ऊहापोह है ।

भक्ति को उपलब्ध व्यक्ति राजस भी नहीं होता । उसके भीतर करने की कोई उद्दाम वासना नहीं होती । वह किसी त्वरा, ज्वर, दौड़ में नहीं होता । उसे कुछ सिद्ध नहीं करना है । उसे कुछ अहंकार के शिखर उपलब्ध नहीं करने हैं । उसे राजधानियाँ जीतनी नहीं हैं । उसे सिकंदर नहीं होना है । वह तो जो 'होना' है, है ही—इसलिए जाना कहाँ, दौड़ना क्यों ? पहुँचने की उसके लिए कोई मंजिल नहीं है । वह अपनी मंजिल पर है ।

यह तो हम समझ लेते हैं कि भक्त तामसी नहीं होता, राजसी नहीं होता; लेकिन नारद का यह अद्‌भुत सूत्र कहता है कि भक्त सात्त्विक भी नहीं होता । क्योंकि साधुता

भी, असाधुता के विपरीत है। कहना परमात्मा को कि वह साधु है, ठीक न होगा; क्योंकि वह साधु-असाधु दोनों से परे होना चाहिए। यह कहना कि परमात्मा को साधु ही पा सकेंगे, गलत होगा; क्योंकि फिर असाधुओं का क्या होगा? यह कहना कि साधुओं में ही परमात्मा है, नितांत गलत है; क्योंकि असाधुओं में भी तो वही है। परमात्मा का अर्थ हुआ तब : सर्वातीत, ट्रांसेंडेंटल, जो सभी के पार है।

भक्त भगवान है, क्योंकि भक्त भगवान की ओर अग्रसर है। भक्त भगवान है, क्योंकि भक्त भगवान होने की तरफ प्रतिक्षण रूपान्तरित हो रहा है। भक्त भगवान में बदल रहा है। उसकी हर प्रार्थना उसे भगवान बना रही है। उसकी हर पूजा उसे भगवान बना रही है। भक्त और भगवान के बीच का फासला कम होता जा रहा है प्रतिपल; जल्दी ही छलाँग लग जाएगी; जल्दी ही भगवान में भक्त होगा, भक्त में भगवान होंगे; द्वैत गिर जाएगा।

इसलिए सूत्र कहता है : 'तीनों गुणों से परे हो जाता है जो, योगक्षेम का परित्याग कर देता है।' न उसे अब कुछ लाभ है, न कुछ हानि है।

...'जो कर्मफल का त्याग करता है ...' क्योंकि जो अब अनुभव करता है कि फल तो भविष्य में होते हैं, और भविष्य मन के बिना नहीं हो सकता है; फल तो कल होगा, और कल बिना मन के नहीं हो सकता। और जिसने मन से ही संग-साथ छोड़ दिया, वह कर्मफल की क्या चिंता करे? लाभ तो कल होगा, हानि भी कल होगी। अभी तो न लाभ है न हानि है। अभी तो बस वही है, जो है।

जो कर्मफल का त्याग करता, स्वभावतः कर्मों का भी त्याग हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह कर्म नहीं करता। नहीं, वह 'करने वाला' नहीं रह जाता—परमात्मा करता है अब! अब वह बाँसुरी की तरह हो जाता है। गीत गाये परमात्मा तो गीत पैदा होता है, न गाये तो बाँस की पोंगरी। गाये तो बाँसुरी, न गाये तो बाँस की पोंगरी।

बाँस की पोंगरी खुद नहीं गाती—सिर्फ माध्यम है। भक्त जानता है कि मैं सिर्फ माध्यम हूँ, उपकरण हूँ! उसका साधन-मात्र!

'और तब सब कुछ त्याग कर निर्द्वंद्व हो जाता है।' और तब कोई द्वन्द्व नहीं रह जाता। जब कुछ पाने को न रहा, तो कुछ खोने को भी न रहा। जब कहीं जाने को न रहा, तो कुछ करने को भी न रहा। सब छोड़ कर.... यही समर्पण है भक्त का। वह उस परम गहराई को उपलब्ध हो जाता है जहाँ कोई द्वन्द्व नहीं।

एक गीत मैं पढ़ता था—

शंख-सीप तो तट पर, लेकिन
मोती पारावार में
यहाँ-वहाँ का करती रहती
भीड़ निरर्थक शोर रे

साँस रोक कर तल तक पहुँचे
कोई गोताखोर रे
कमठ केंकड़ा यहाँ, सुनहरी
मछली नीर अपार में
जो बंसी लटकाए बैठे
खोते संध्या भोर रे
तरी लिए जो उन तक पहुँचे
वह मछुआ तो और रे
काई कर्दम यहाँ, मनोहर
नील कमल मँझधार में।

गहरे और गहरे...। किनारे पर ही बैठ कर बंसी लटकाए समय को व्यर्थ मत गँवाओ।

शंख-सीप तो तट पर, लेकिन
मोती पारावार में!

...'जो वेदों का भी भलीभाँति परित्याग कर देता है।'

चौंकोगे तुम : 'वेदों का'! कोई आर्यसमाजी मौजूद होगा तो बहुत नाराज हो जाएगा : 'वेदों का'! लेकिन भक्त का लक्षण यही है।

जो वेदों का भी 'भलीभाँति', ऐसा-वैसा नहीं, 'भलीभाँति', बिलकुल, सर्वथा त्याग कर देता है, और जो अखंड असीम भगवत्प्रेम को प्राप्त कर लेता है।

वेद भी खिलौने हैं बुद्धि के। शास्त्र भी समझा लेना है; सांत्वना है, सत्य नहीं। और भक्त तो ज्ञान की तलाश नहीं कर रहा है। भक्त तो प्रेम की तलाश कर रहा है। वेदों से मिल जाए ज्ञान, सूचनाएँ; प्रेम कहाँ मिलेगा? शास्त्रों में कहीं प्रेम है? जल के संबंध में तुम कितना ही समझ लो, उससे कुछ प्यास तो न बुझेगी। सरोवर चाहिए।

भक्त जल के संबंध में शास्त्रों से तृप्त नहीं होता; वह कहता है, 'प्यासा हूँ, सरोवर चाहिए।'

इल्म के जह्ल से बेहतर है कहीं जह्ल का इल्म
मेरे दिल ने ये दिया दर्से-बसीरत मुझको।

—ज्ञान की मूढ़ता की बजाय, मूढ़ता का ज्ञान बेहतर है—यह परम ज्ञान मेरे दिल ने मुझे दिया।

इल्म के जह्ल से बेहतर है कहीं जह्ल का इल्म
—ज्ञान की मूढ़ता की बजाय, मूढ़ता का ज्ञान बेहतर है।
मेरे दिल ने ये दिया दर्से-बसीरत मुझको।
—यह परम ज्ञान मैंने अपने ही भीतर पाया।

वेद या कुरान या बाइबिल, कोई भी शास्त्र—वेद यानी सारे शास्त्र—शब्दजाल हैं। उनसे तृप्त मत हो जाना। उनसे जो तृप्त हुआ, वह मूढ़ है। वह कितना ही ज्ञानी हो जाए, उसकी मूढ़ता नहीं मिटती; उसकी मूढ़ता भीतर रहती है, पांडित्य का बाहर से आवरण हो जाता है।

'वेदों का जो भलीभाँति त्याग कर देता है और जो अखंड असीम भगवत्प्रेम प्राप्त कर लेता है।'

ज़ोर है प्रेम पर, ज्ञान पर नहीं। जान के क्या होगा? जानने में तो दूरी बनी रहती है। भक्त कहता है, भगवान को जानना नहीं है, भगवान होना है। जानने से क्या होगा? भगवान को पीना है। भगवान को उतारना है अपने में। भगवान में उतर जाना है। दूरी मिटानी है। शास्त्र तो बीच में दीवालें बन जाते हैं। जितना ज्यादा तुम जानने लगते हो उतना ही अहंकार प्रगाढ़ होता है। और अहंकार तो बाधा है प्रेम में; उसे तो छोड़ना होगा। धन का अहंकार ही नहीं, ज्ञान का अहंकार भी छोड़ना होगा। जानने वाले को मिटा ही देना है। कोई भीतर 'मैं'-भाव ही न रह जाए। तुम एक शून्य हो जाओ। उसी शून्य में प्रेम के कमल खिलते हैं—शून्य की झील पर प्रेम के कमल! और कोई झील नहीं है जहाँ प्रेम के कमल खिलते हों। तुम मिट जाओ कीचड़ में, तो ही कमल खिलते हैं। तुम्हारी कीचड़ से ही कमल उठते हैं।

...'जो वेदों का भलीभाँति परित्याग कर देता है और जो अखंड असीम भगवत् प्रेम को प्राप्त कर लेता है, वह तरता है, वह तरता है; यही नहीं, वह लोगों को भी तार लेता है।' वह एक नाव बन जाता है। खुद तो तरता ही है, लेकिन इतना ही नहीं कि खुद तरता है, औरों को भी तार देता है, तारणतरण हो जाता है; तारता भी, तरता भी! उसके सहारे न मालूम कितने लोग तर जाते हैं!

जिसके जीवन में प्रेम का फूल खिला, वह न मालूम कितने भौंरों को आकर्षित कर लेता है। जिसके जीवन में प्रेम का गीत उठा, न मालूम कितने कंठों में गुनगुनाहट शुरू हो जाती है।

घटे अगर तो बस एक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो बुसअते कौनेन में समा न सके।

—घटे तो आदमी है क्या?—एक मुट्ठी भर राख!

घटे अगर तो बस एक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो बुसअते कौनेन में समा न सके।

—और अगर बढ़े तो सारे लोक भी छोटे पड़ जाते हैं, समा न सके। दोनों लोक भी छोटे पड़ जाते हैं। आदमी छोटे-से-छोटा भी हो सकता है। मन उसे संकीर्ण-से-संकीर्ण कर देता है। आदमी विराट-से-विराट भी हो सकता है— मन की दीवाल भर टूट जाए, मन का कारागृह न हो

घटे अगर तो बस एक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो बुसअते कौनेन में समा न सके।

मन कारागृह है; ध्यान मुक्ति है। काम कारागृह है; प्रेम मुक्ति है। वेद, शास्त्र कारागृह हैं; भक्ति मुक्ति है।

आज इतना ही।

दिनांक १२ मार्च, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना
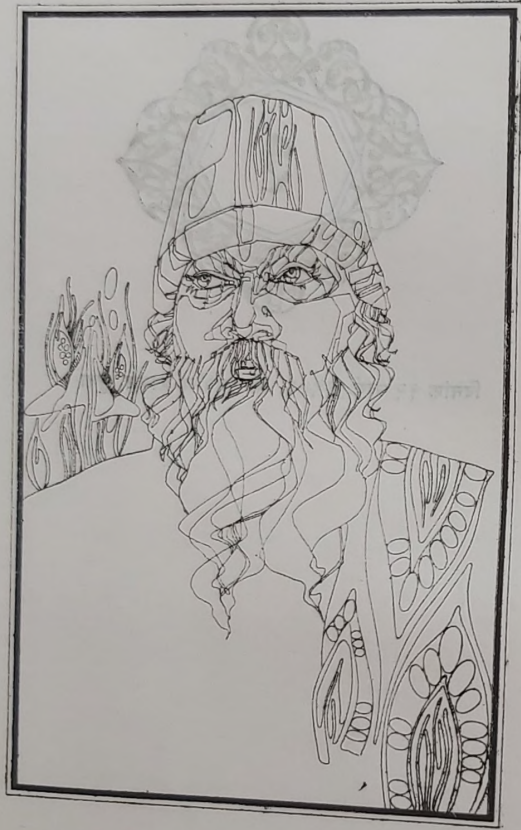
प्रश्न-सार

भगवान, भक्ति और भोग में क्या कुछ आंतरिक तारतम्य है?

क्या कारण है कि कामवासना के उठने पर होश में भी उसकी प्रगाढ़ता बनी रहती है?

जिसे आप स्वप्न कहते हैं, वह हमें सत्य मालूम देता है और आपका सत्य हमारे लिए स्वप्नवत् है। किसकी गंगा उलटी बहती है?

सत्रह-अट्ठारह वर्ष की उम्र में मेरे पिताजी धूनी वाले बाबा के सान्निध्य में कुछ अनुभव पा के विक्षिप्त हो गये, समाज में स्वीकृत न हो सके......! अब जीवन के अंतिम चरण में उनके लिए नये जन्म की क्या कोई संभावना है?

भक्ति अर्थात् अभी और यहीं

पहला प्रश्न : भगवान, भक्ति और भोग में क्या कुछ आंतरिक तारतम्य है ?

भोग को जानता है सिर्फ भक्त ही। भक्त के अतिरिक्त भोग को किसी ने जाना नहीं; क्योंकि भोग तो सिर्फ भगवान का ही हो सकता है। जिसे तुम संसार में भोग कहते हो वह तो भोग की छाया भी नहीं; वह तो भोग की दूर की प्रतिध्वनि भी नहीं; उसे तो भोग का आभास कहना भी गलत होगा—भोग की भ्रांति है।

जिन्होंने परमात्मा को जाना उन्होंने ही भोगा। भोग भक्त और भगवान के बीच का संबंध है। भोग की गंगा बहती है भगवान और भक्त के किनारों के बीच—एक तरफ भगवान, दूसरी तरफ भक्त, बीच में भोग की गंगा का प्रवाह।

भोग बड़ा बहूमूल्य शब्द है—योग से ज्यादा बहूमूल्य। लेकिन मेरे अर्थ को ठीक से समझ लेना। योग तो फिर भी मनुष्य की बुद्धि का जोड़ है, हिसाब-किताब है, विधि-विधान है। भोग बुद्धि का नहीं, हृदय का परमात्मा से जोड़ है; न कोई हिसाब है, न कोई किताब है, न कोई विधि-विधान है—समग्र समर्पण है; समग्र निवेदन है।

भक्त अपने को भगवान के चरणों में रख देता है; उसी क्षण से श्वास-श्वास में भगवान का भोग शुरू हो जाता है।

भोग के अर्थ को जाना तो जा सकता है, कहा नहीं जा सकता; क्योंकि भोग स्वाद की बात है। जिसने लिया हो, वही जानेगा। और जिसने जाना हो, वह भी कह न सकेगा; क्योंकि स्वाद की बात है, गूंगे का गुड़ है। और सारे स्वाद तो इन्द्रियों के हैं। आँख से रूप का स्वाद मिलता है। कान से स्वर का स्वाद मिलता है। हाथ से स्पर्श का स्वाद मिलता है। परमात्मा तुम्हारी समग्रता का स्वाद है। आँख, कान, हाथ, पैर—तुम पूरे के पूरे एक ही लयबद्धता में, एक ही नृत्य में लीन हो जाते हो। आँखें देखती ही नहीं, सुनती भी हैं। कान सुनते ही नहीं, देखते भी हैं। हाथ छूते ही नहीं, गंध भी लेते हैं। तुम्हारी पूरी समग्रता अस्तित्व के साथ आंदोलित होती है। उस घड़ी का नाम स्वाद है।

जिन्हें तुमने संसार में स्वाद जाना है, वे तो केवल इंद्रियों के आभास हैं, धोखे हैं। जिसने परमात्मा का स्वाद जान लिया, संसार के स्वाद अपने से ही छूट जाते हैं। छोड़ना पड़े तो एक बात पक्की है कि तुमने परमात्मा के स्वाद को नहीं जाना।

इसलिए भक्त त्याग की बात ही नहीं करता। यह कोई सौदा नहीं है कि तुम छोड़ोगे तो परमात्मा को पाओगे। तुम परमात्मा को पा लोगे तो तुम पाओगे, अचानक बहुत कुछ छूटने लगा। जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं, ऐसा ही कुछ व्यर्थ हो जाएगा और गिर जाएगा। स्वाभाविक है कि जब परम स्वाद मिले तो क्षुद्र का स्वाद गिर जाए। जब परम भोग सजा हो तो रूखे-सूखे के लिए कौन राजी होगा! जब उसका मंदिर खुले तो कौन क्षुद्र में अपना आवास बनाएगा! इसलिए भक्त के लिए भोग तो बड़ा अनूठा शब्द है।

भक्त अपने को समर्पित करता है। वह कहता है, 'तुम्हीं सम्हालो! अपने को सम्हालता हूँ तो अहंकार निर्मित होता है। अहंकार ही दूरी खड़ी करता है। जितना मैं होता जाता हूँ उतना दूर होता चला जाता हूँ।' तो भक्त कहता है, 'तुम्हीं सम्हालो! मैं अपने को बीच में खड़ा न करूँगा। न तो करूँगा जप, न करूँगा तप, न त्याग, न तपश्चर्या—क्योंकि उस सबसे अहंकार निर्मित होता है। उस सबसे लगता है : मैं कुछ हूँ!'

करने से स्वभावत: 'मैं' निर्मित होता है। इसलिए भक्ति कोई कृत्य नहीं है। भक्ति शुद्ध समर्पण है।

भक्त कहता है, 'मैं सम्हाल नहीं सकता अपने को, छोड़ता हूँ तुम्हारे चरणों में! तुम्हीं जहाँ ले जाओ, चलूँगा; तुम्हीं जो कराओ, करूँगा; तुम्हीं श्वास लो, तो श्वास लूंगा, तुम्हीं रुक जाओ तो रुक जाऊँगा।' ऐसा समग्र न्योछावर, सर्वस्व दान—तत्क्षण भोग की घड़ी आ जाती है। इधर तुमने अपने को छोड़ा उधर परमात्मा तुम्हें मिलना शुरू हुआ।

भगवान, भक्ति और भोग, तीनों बड़े जुड़े हुए शब्द हैं। योग तो कहता है, हम टूट गये हैं, जोड़ना पड़ेगा। योग का अर्थ होता है : जोड़। योग शब्द का ही अर्थ होता है : जोड़। योग कहता है : हम टूट गये हैं परमात्मा से, जोड़ना पड़ेगा। भोग का अर्थ होता है : हम जुड़े ही हैं, भोगना शुरू करो। देर कैसी? व्यर्थ प्रतीक्षा किसकी कर रहे हो? हम जुड़े ही हैं, जोड़ना नहीं है। अगर टूट गये होते तो जोड़ने का फिर कोई उपाय न था। टूटे नहीं हैं, इसलिए जुड़ सकते हैं। जोड़ने की चर्चा ही मत उठाओ। जुड़े हैं!

तुम हो कैसे सकते हो बिना परमात्मा से जुड़े हुए? एक क्षण को भी न हो सकोगे, एक पल को भी न हो सकोगे। वही श्वास लेगा तो श्वास चलेगी। वही सूरज बन के चमकेगा तो शरीर को उत्ताप मिलेगा। वही हवाओं में आएगा तो प्राण मिलेगा। वही वर्षा में आएगा तो प्यास बुझेगी। वही भोजन में आएगा तो शक्ति मिलेगी।

वही हजार-जहार रूपों में आएगा तो ही तुम जी सकोगे । एक क्षण को भी उससे टूटे कि जीना समाप्त हुआ ।

इसलिए भक्त कहता है : टूटना तो हुआ ही नहीं, जोड़ने की बात ही गलत है । भक्त कहता है : जुड़े हैं, अब बस भोगना है । भक्त कहता है : तुम जुड़े हो और भोग नहीं रहे—कैसे पागल हो ! किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हो ? उत्सव की पूरी तैयारी हो चुकी है । सब पूरा-पूरा तैयार है, तुम बैठे कैसे हो उदास ? तुम राह किसकी देखते हो ? जिसकी तुम राह देखते थे वह आ ही चुका है । वह तुम्हारे भीतर ही निनादित है । तुम किसे पुकार रहे हो ? जिसने पुकारा है, वही तो तुम्हारी पुकार है । तुम किसे खोजने चले हो ? जो खोजने निकला है, उसमें ही तो छिपा है ।

भक्त कहता है : भोगो ! एक पल भी खोने जैसा नहीं है; तैयारी करनी होती तो समय लगता । इसलिए भक्ति की दृष्टि बड़ी अनूठी है । योग की दृष्टि में तो समय समाविष्ट है; कुछ करोगे, कल कुछ होगा, फल मिलेगा, बीज बोओगे, फसल उगेगी, काटोगे—हजार उपद्रव हैं—वर्षा होगी-न-होगी; संयोग मिलेंगे, बनेंगे न बनेंगे ! लेकिन भक्त कहता है, कल की तो बात ही नहीं । जिसे तुम भोगना चाहते हो वह इसी क्षण तुम्हारे हाथ में है ।

ऐसा देखते ही, ऐसी सुध आते ही—इसको ही सुरति, इसको ही स्मृति, इसको ही बोध. . .ऐसी सुरति आते ही भक्त नाचने लगता है । इसलिए भक्त नाचे । योगियों ने साधा—भक्त नाचे । योगियों ने बड़े विधि-विधान बनाये—भक्तों ने भोगा । योगियों ने आसन, प्राणायाम, व्यायाम किये— भक्तों ने उठा ली वीणा !

उत्सव तैयार ही है । समारम्भ रचा हीं हुआ है । यहाँ देर है ही नहीं । यह क्षण भर भी खोना अपने ही कारण खोना है, उसके कारण नहीं ।

भोग की दृष्टि यह है, परम भोग की, भक्त के भोग की दृष्टि यह है कि एक क्षण भी तैयारी की जरूरत नहीं है । समय अनिवार्य नहीं है । इसी क्षण आया हुआ है तुम्हारे द्वार पर परमात्मा । इसी क्षण उसने तुम्हें चारों ओर से घेरा है । उसी का स्पर्श तुम्हें हो रहा है हवाओं में । उसी की श्वास तुम्हारे हृदय को गतिमान किये है । वही है तुम्हारा सोच-विचार ! वही है तुम्हारा ध्यान ! इस बात की प्रतीति, प्रत्यभिज्ञा बस काफी है ।

इसलिए भक्त एक छलाँग लगाता है । योगी का सिलसिला है, सीढ़ियाँ-दर-सीढ़ियाँ चढ़ता है । भक्त एक छलाँग लगाता है—बोध की छलाँग । एक क्षण पहले उदास था, हारा-थका था । एक क्षण पहले संतप्त था । एक क्षण पहले नरक में था; एक क्षण बाद स्वर्ग में ।

भक्त चमत्कार है ! एक क्षण पहले राख-ही-राख था, कहीं फूल न दिखायी पड़ते थे । सुधि के आते ही एक क्षण बाद फूल खिल गये । तुम कल्पना ही न कर पाओगे

कि यह कैसे हुआ । भक्त के पास भी उत्तर नहीं है । योगी के पास उत्तर है । योगी कहेगा, 'ऐसा-ऐसा किया, इतना-इतना साधा, ऐसी-ऐसी विधियाँ कीं, ऐसे-ऐसे उपाय किये—यह इसका फल है ।'

योगी का गणित है । भक्त का कोई गणित नहीं—भक्त का प्रेम है । इसलिए मीरा को किसी ने देखा कभी योग साधते ? हाँ, अचानक एक दिन नाचते देखा । अचानक एक दिन बह चली, नाच उठी । इसीलिए तो किसी की समझ में भी न आया, घटना इतनी आकस्मिक थी । कोई भरोसा न कर सका ।

महावीर समझ में आते हैं—बारह वर्ष की लम्बी तपश्चर्या है । जिनके पास बुद्धि नहीं है उनको भी समझ में आ जाते हैं—इतना श्रम किया, अगर आनंद को उपलब्ध हुए, तो बात हिसाब की है । बुद्ध समझ में आते हैं—छह वर्ष का कठिन श्रम, साधना—फिर अगर आनंद को उपलब्ध हुए, ठीक ।

मीरा बेबूझ है ! कल तक घूंघट में छिपी थी, किसी को पता भी न था । कभी किसी ने जाना भी न था कि कुछ साधा है इसने । अचानक, पद घुंघरू बाँध मीरा नाची रे ! घर के लोग भी भरोसा न कर सके—'पागल हो गयी ! मस्तिष्क खराब हो गया ! कहीं ऐसे मिला है परमात्मा ? बड़ी मुश्किल से मिलता है ।'

हमारे अहंकार ने बड़ी मुश्किलें खड़ी कर ली हैं । हमारा अहंकार जो सरलता से मिल जाए, उसके लिए राजी नहीं होता । अहंकार कहता है : पहाड़-पर्वत चढ़ने पड़ेंगे । ऐसा हाथ फैलाने से जो मिल जाए, घर बैठे जो मिल जाए, अहंकार उससे राजी नहीं होता, भरोसा नहीं करता । 'महावीर को मिला होगा, मीरा को कैसे मिला ?'

मीरा का नृत्य आकस्मिक है—लेकिन भक्ति आकस्मिक है ! इस बात को ठीक से समझ लेना । भक्ति की कोई साधना नहीं है; भक्ति सिद्धि है पहले ही क्षण से; सिर्फ बोध की बात है ।

#c · कभी उन मदभरी आँखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं ।

एक बार झलक मिल जाए, बस काफी है । एक बार परमात्मा की प्रतीति आ जाए, एक बार ऐसे समझ उठ खड़ी हो बिजली की कौंध की तरह कि वह उपलब्ध है, मैं रुका किसलिए, प्रतीक्षा किसकी करता हूँ—तो जो नृत्य शुरू होता है, उसका फिर कोई अंत नहीं ।

कभी उन मदभरी आँखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं ।

भक्ति का होश बेहोशी जैसा है । भक्त का ध्यान तल्लीनता जैसा है । भक्त का होना न-होने जैसा है । भक्त अपने को खो कर ही पाता है । भक्त अपने को डुबाता है, जैसे बूंद गिर जाए सागर में । भक्त जुआरी है ।

बूंद जब सागर में गिरती है तो पक्का क्या है कि बचेगी ? पक्का क्या है कि खो ही न जाएगी सदा को ? पक्का हो भी नहीं सकता । गारंटी होगी भी तो कैसी होगी, कौन देगा ? बूंद मिटने को तैयार होती है, मिटते ही सागर हो जाती है ।

लेकिन ध्यान रखना, यह जो भोग है, यह जो परमात्मा और उसके प्रेमी के बीच घटता है, भगवान और भक्त के बीच जो धारा बहती है जीवंत—यह कुछ समझने-समझाने की बात नहीं है । जो मैं तुमसे कह रहा हूँ, वे सिर्फ इशारे हैं; खयाल में आ जाएँ तो कूद पड़ना । तुम्हारी समझ बढ़ जाएगी मेरे कहने से, यह मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ । यह तो तुम्हारा ज्ञान कुछ थोड़ा और बढ़ जाएगा भक्ति के सम्बंध में, इसलिए नहीं कह रहा हूँ । क्योंकि भक्ति का ज्ञान से क्या लेना-देना ?

एक ऐसा राज़ भी दिल के निहांखाने में है
लुत्फ़ जिसका कुछ समझने में न समझाने में है ।

—बहुत गहरे हृदय के आत्यन्तिक तल पर छिपा है रहस्य; न समझ में आता है न समझाने में आता है । भक्ति बेबूझ है । भक्ति एक पहेली है, एक रहस्य है । इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, भक्ति उनके लिए नहीं है । वे अपनी बुद्धि के कारण ही खोते चले जाएँगे । जो अपने को समझदार समझते हैं, भक्ति उनके लिए नहीं है । यह तो नासमझों के लिए है । मगर नासमझी का लुत्फ़ और मज़ा और । समझदारी बड़ी गरीब है । नासमझी की सम्पदा बड़ी है । समझदारी तो बड़ी क्षुद्र है—तुम्हारी है । नासमझी विराट है । समझदारी तो ऐसी है जैसे छोटा-सा दीया जलता हो, टिमटिमाती रोशनी हो । नासमझी ऐसी है जैसे विराट अमावस की रात हो, गहन अंधकार हो, ओर न छोर, कोई सीमा नहीं !

भक्त तो अपनी नासमझी से परमात्मा के पास पहुँचता है । और समझदारी से कोई कभी पहुँचा है, ऐसा सुना नहीं । समझदारी रोक लेती है, पैर की जंजीर हो जाती है । समझदारी नाच नहीं बन पाती । नाच के ही कोई पहुँचता है । समझदारी गंभीर हो जाती है ।

एक मित्र ने पूछा है—पूछा नहीं, समझदार होंगे—सुझाव दिया है । सुझाव दिया है कि 'नारद के सूत्र में कहा गया कि भक्ति से भगवान मिलता है—यह बात ठीक नहीं । भक्ति से शक्ति मिलती है—शक्ति से भगवान मिलता है । सूत्र में सुधार होना चाहिए ।

ऐसी बुद्धिमानी पैर की जंजीर हो जाएगी । ऐसी बुद्धिमानी तुम्हें पहुँचाएगी न, अटका देगी—बुरी तरह अटका देगी । नारद को समझ लो । नारद को समझाने मत चलो । नारद से कुछ मिलता हो, ले लो । नारद को देने मत चलो । तुम्हारे पास अभी है क्या जो तुम दोगे ? अगर तुम्हें यह ही पता हो गया होता तो तुम यहाँ आते

क्यों ? तुम किसकी तलाश कर रहे हो फिर ?

लेकिन बुद्धि हिसाब लगा लेती है उन सब चीज़ों का जिनका उसे कोई पता भी नहीं । बुद्धि उन सब चीज़ों के सम्बंध में भी सिद्धांत बना लेती है जिनका स्वप्न भी उसे नहीं आया । तुम्हें न भगवान का पता है, न तुम्हें भक्ति का पता है । हाँ, तुमने कुछ किताबें पढ़ ली होंगी । किताबों से कुछ तुमने सूचनाएँ इकट्ठी कर ली होंगी । अब तुम कुछ तर्कजाल में पड़ गये होओगे । इस तर्कजाल से कोई कभी पहुँचा नहीं । यही अटकाता है ।'

नासमझी चाहिए । पांडित्य नहीं, बड़ी असहाय भाव की दशा चाहिए । तर्क नहीं, हारा हुआ तर्क चाहिए; मिटा हुआ, टूटा हुआ तर्क चाहिए । तुम्हारा तर्क जब टूट जाएगा और तुम्हारी बुद्धि जब राह न बना पाएगी, तभी तुम्हें राह मिलेगी । जब तक तुम्हें लगता है तुम अपनी राह बना लोगे, तभी तक तुम भटकोगे । तब तक तुम जो राह बनाओगे, वही तुम्हारा भटकाव होगी । जिस दिन तुम असहाय हो जाओगे और पाओगे, 'मेरे किये कुछ भी नहीं होता । बुद्धि से कुछ समझ में आता नहीं । खूब समझ के बैठ गया हूँ, कहीं पहुँच नहीं पाता ।'. . .जिस दिन तुम थके-मांदे, हारे-पराजित, असहाय, रोने लगोगे, आँसू बहने लगेंगे—तर्क नहीं चाहिए, आँसू चाहिए—बुद्धि में विचार न उठेंगे, भाव उठने लगेगा; जिस दिन तुम बैठ के सोच-विचार न करोगे, नाचने लगोगे, बुद्धि में तर्क का शोरगुल नहीं, पैरों में घूंघर बँधे होंगे—उस दिन, उस दिन पहली दफा वर्षा होगी, तुम्हारी भूखी-प्यासी भूमि पर; उस दिन पहली दफा भगवान से तुम्हारा संस्पर्श होगा; भोग का पता चलेगा ।

भक्तों ने कुछ कहा नहीं है; जो कहा है, उससे कुछ साफ नहीं होता । भक्तों ने कोई तर्क नहीं किया है । जो बात भी की है, वह इंगित की है, व्याख्या की नहीं है; प्रमाण नहीं है कोई उसमें, सीधे-सीधे वक्तव्य हैं ।

अगर भक्तों को समझना हो तो शास्त्रों में जाने का कोई सार नहीं है—किसी भक्त की आँखों में जाना ।

क्या हुस्न का अफसाना महदूद हो लफ्ज़ों में
आँखें ही कहें उसको आँखों ने जो देखा है ।

मीरा की आँखों में या चैतन्य की आँखों में. . . ! वहीं है शास्त्र भक्ति का । तो भक्त को समझने का ढंग ही और है । और भक्ति के शास्त्र को समझने के आयाम ही और हैं । अगर सोच-विचार से तुम अभी थक नहीं गये हो, अभी थोड़ी और उमंग बची है तड़फड़ा लेने की, तो तुम भक्ति की बातों में अभी मत पड़ो । तो अभी बहुत है—वेदांत है, वेद हैं, उपनिषद हैं । तो अभी योग है, सांख्य है । अभी बहुत शास्त्र पड़े हैं । अभी थोड़ा वहाँ सिर फोड़ लो । जब तुम बिलकुल ही टूट जाओ और जब तुम्हें ऐसा लगे कि कहीं से कोई द्वार नहीं मिलता; जब तुम रोने-रोने को हो आओ; जब तुम्हारे हृदय से एक आह निकले असहाय अवस्था की—वही प्रार्थना बन जाएगी ।

वहीं से तुम्हारे जीवन में भक्त का अनुभव शुरू होता है। तुम्हारी हार में ही भक्त पैदा होता है—तुम्हारी जीत से नहीं, तुम्हारी पराजय में; तुम जहाँ बिलकुल लहूलुहान पड़ गये हो ज़मीन पर; जहाँ तुम्हारे पंख क्षत-विक्षत हो गये हैं और अपना किया अब कुछ भी नहीं चलता—उसी क्षण, उस गहन पीड़ा से प्रार्थना उठती है। और तब एक अनूठा अनुभव होता है, कि तुम नाहक ही दौड़-धूप कर रहे थे; भगवान दूर न था, तुम्हारे दौड़ने के कारण दूर मालूम पड़ता था। तुम व्यर्थ ही आयोजन कर रहे थे। तुम्हारे आयोजन ऐसे थे कि उनके कारण ही बाधा पड़ती थी, अवरोध आता था। काश, तुम कुछ न करते और सिर्फ खुली आँख से देख लेते, तो भगवान द्वार पर खड़ा था। तुम्हारी व्यवस्था ने ही तुम्हें भटकाया था।

भोग तो स्वाद है—मिलेगा तो मिलेगा। भोग के सम्बंध में मैं कुछ भी कहूँ, उससे हो सकता है भोग का लोभ पैदा हो जाए, लेकिन भोग की कोई समझ न आएगी। इतना ही अगर तुम मेरी बात से समझ लो कि तुम्हारे जीवन में अभी भोग जैसा कुछ भी नहीं है...! तुम्हारे धार्मिक गुरु, तुम्हारे साधु-संत तुम्हें कहते हैं, 'छोड़ो भोग, पाप है।' मैं तुमसे कहता हूँ, 'तुमने भोग किया ही नहीं। छोड़ने योग्य तुम्हारे पास अभी है क्या?'

तुम्हारे साधु-संत तुम्हें समझाते हैं कि संसार के भोगों के कारण ही तुम परमात्मा तक नहीं पहुँच पा रहे हो। मैं तुमसे कहता हूँ कि परमात्मा तक जब तक न पहुँचोगे तब तक तुम्हें पता ही न चलेगा कि जिन्हें तुम भोग कह रहे हो, वे भोग हैं ही नहीं। तुमने काँटों को फूल समझा है। सब तरह से लहूलुहान हो, फिर भी तुम काँटो को फूल समझे चले जाते हो। दुख ही पाते हो जहाँ तुम सुख खोजते हो, फिर भी तुम सुख माने चले जाते हो।

तुम भोगी नहीं हो, विक्षिप्त भला होओ। तुम भोगी कतई नहीं हो, भूले हुए भला होओ। तुमसे भूल भला हो रही हो, पाप नहीं हो रहा है। तुम पर दया आ सकती है, तुम्हारे ऊपर निंदा आने का कोई कारण नहीं है। इसलिए जो तुम्हें पापी कहता हो, जो तुम्हारी निंदा करता हो और जो तुमसे कहता हो, 'तुम कुछ ऐसे भोग में पड़े हो जिसके कारण तुम परमात्मा तक नहीं पहुँच पा रहे हो,' वह तुम्हें मुक्ति की तरफ ले जा न सकेगा। क्योंकि उसके निषेधों के कारण, उसके विरोधों के कारण तुम्हारा भोग में और आकर्षण बढ़ता चला जाता है—जिसे तुम भोग कहते हो, जो भोग नहीं है। उसके निषेध तुम्हें और लोलुप करते हैं।

हजवे मैंने तेरा ऐ शेख ! भरम खोल दिया
तू तो मस्जिद में है, नियत तेरी मैखाने में है।

वह जो मंदिर-मस्जिद में शराब की बुराई कर रहा है, उसकी बुराई भी उसके भीतर के राज़ को खोले दे रही है। बुराई भी हम उसी की करते हैं जिसमें हमारा रस होता है।

हजवे मैंने तेरा ऐ शेख ! भरम खोल दिया—यह जो तूने निंदा की है शराब की, इससे तेरे भीतर का राज़ भी पता चल गया : तू तो मस्जिद में है, नियत तेरी मैखाने में है—तू यहाँ मस्जिद में बैठा होगा, लेकिन मन तेरा अभी भी मैखाने में है।

अगर तुम्हारा धर्मगुरु स्त्रियों की निंदा कर रहा हो तो समझना कि स्त्रियों में रस अभी कायम है। अगर धन को गाली दे रहा हो, धन की निंदा कर रहा हो, तो समझना कि रस अभी धन में है। अगर भोजन का विरोध कर रहा हो, उपवास की शिक्षा दे रहा हो, तो समझना कि रस अभी भोजन में है। और उसके विरोध से तुम्हारा रस मिटेगा नहीं, उसके विरोध से बढ़ेगा। क्योंकि जितना ही तुम्हें कोई चीज़ कही जाए कि बुरी है, निषेध किया जाए, इनकार किया जाए, उतना ही मन को लगता है कि ज़रूर कुछ होगा, तभी तो इतने सारे धर्मगुरु, इतने मंदिर-मस्जिद इसके विरोध में खड़े हैं।

जिस दरवाजे पे लिखा हो, 'भीतर झाँकना मना है', वहाँ झाँकने का मन हो जाता है। तो जिन-जिन चीज़ों को लोगों ने पाप कहा है, उन-उनको करने की आकांक्षा प्रबल हो गयी है।

तुम छोटे-से बच्चे को देखो ! छोटा बच्चा मन का सबूत है, क्योंकि मन सभी के छोटे बच्चों जैसे हैं। उससे तुम कहो कि फलां चीज़ मत खाना, उसे शायद याद भी न थी, तुमने कह के और याद दिला दी। उससे कहो कि फलां जगह मत जाना, दुनिया बड़ी है, शायद वह जाता भी न उस जगह; लेकिन तुमने अब सारी दुनिया को इनकार कर दिया और एक ही जगह पे उसका ध्यान आकर्षित कर दिया। अब वहीं जाएगा। तुम्हारे कहने ने ही बता दिया कि जरूर कुछ राज़ होगा, अन्यथा कौन किसको मना करता है ? ज़रूर कोई बात काम की होगी, रहस्य की होगी !

ईसाइयों की कथा है कि परमात्मा ने आदमी को बनाया और उससे कहा कि यह एक वृक्ष है—ज्ञान का वृक्ष—इसके फल तू मत खाना। बगीचे में अनंत वृक्ष थे, मगर सब वृक्ष व्यर्थ हो गये, अदम की आँखें उसी वृक्ष पे लटक गईं। रात सोते-जागते उसको उसी-उसी की याद आने लगी होगी। स्वाभाविक है। भूल अदम की नहीं, भूल परमात्मा की है। इतने वृक्ष थे, अगर न कहा होता तो मैं समझता हूँ शायद अभी तक भी वह खोज न पाया होता; खोजने की ज़रूरत ही न रही। तुमने तख्ती लटका दी।

जहाँ-जहाँ निषेध है, वहाँ-वहाँ निमंत्रण हो जाता है। जहाँ कोई कहे, 'मत करो', करने की प्रबल आकांक्षा जगती है। अहंकार नहीं के साथ जूझने लगता है, प्रतिरोध पैदा होता है।

जिन चीज़ों को लोगों ने पाप कहा है, उन्होंने तुम्हें ग्रस लिया। मैं तुमसे कहता हूँ, 'कोई पाप नहीं है, तुम्हारी भूल हो सकती है। भूल है। 'पाप'! —तुम्हारी छोटी-छोटी भूलों के लिए बहुत बड़ा शब्द हो गया। इतने बड़े शब्द का उपयोग ठीक नहीं।

कोई आदमी को भोजन में थोड़ा रस आ रहा है, इसको 'पाप'...! भूल भला हो, पाप क्या है ? किसी आदमी को वस्त्र पहनने में सुख मिलता है— भूल भला हो, पाप क्या है ? और जिसको वस्त्र पहनने में रस मिलता है वह केवल एक बात की खबर देता है कि उसे अपने आंतरिक सौंदर्य का कोई पता नहीं; उसे आंतरिक सौंदर्य का पता हो जाए तो बाहर की सजावट वह बंद कर देगा ।

जो आदमी धन के पीछे दौड़ रहा है, वह इतनी ही खबर देता है कि उसे भीतर के धन की कोई खबर नहीं । जो आदमी बाहर के पदों की तलाश कर रहा है, उसे परमपद की कोई सूचना नहीं मिली, अन्यथा छोड़ देगा । हीरे जिसे मिल जाएँ, वह कंकड़-पत्थर छोड़ ही देता है । मैं तुमसे कंकड़-पत्थर छोड़ने को नहीं कहता—मैं तुमसे हीरों का स्मरण करने को कहता हूँ ।

भक्ति का सारा शास्त्र भगवान के स्मरण के लिए है, संसार के त्याग के लिए नहीं है । वही भेद है भक्ति और योग में । योग कहता है : संसार छोड़ो, परमात्मा मिलेगा । भक्ति कहती है : परमात्मा को खोज लो, संसार छूट जाएगा । भोग परमात्मा का उठ आए तुम्हारे जीवन में, सब भोग अपने से निस्तेज हो जाते हैं । जब सूरज उग जाता है, तारे छिप जाते हैं : जब परम भोग का सूर्य उगता है तो सब टिमटिमाते तारे, अनंत हों तो भी खो जाते हैं, असंख्य हों तो भी खो जाते हैं ।

लेकिन ध्यान रखना, स्वाद तुम्हें लेना पड़ेगा । मैं स्वाद के गीत गा सकता हूँ । मेरी आँखों में तुम थोड़ा झाँको तो शायद तुम्हें स्वाद की थोड़ी ध्वनि भी सुनायी पड़ जाए । लेकिन स्वाद तो तुम्हें ही लेना पड़ेगा, तभी स्वाद होगा ।

और मजा यह है कि कुछ भी करना नहीं है, तुम मालिक पैदा हुए हो । तुम महल की सीढ़ियों पे बैठे रो रहे हो । चाबी तुम्हारे हाथ में है, तुम भूल ही गये हो ।

तुम जैसे हो, जहाँ हो, भक्ति का यह बुनियादी सूत्र है : तुम वहीं भोगना शुरू कर दो । तुम जैसे हो, जहाँ हो, वहीं तुम परमात्मा के स्मरण को उपलब्ध हो जाओ । याद करो उसकी । क्या होगा इसका अर्थ ? इसका यह अर्थ होगा, मैं तुमसे यह कहूँगा, अब जब भोजन करो तो भोजन की फिक्र मत करना, परमात्मा को खोजना भोजन में । इसलिए उपनिषद कहते हैं : अन्नं ब्रह्म । वह बड़े ज्ञानियों की बात है, बड़े पहुँचे हुए पुरुषों की बात है । भोजन में भगवान ! तुम जब भोजन का स्वाद लो तब भी स्मरण करना : स्वाद उसी का है । रसो वै सः । सब रस उसी का है ! जब तुम एक सुन्दर स्त्री को गुजरते देखो तो स्मरण करना : सब सौंदर्य उसी का है । रसो वै सः ! सब रस उसी का है ! जब तुम फूल को खिला देखो तो उसी को प्रणाम करना, क्योंकि सभी खिलना उसी का है । पक्षी गीत गाएँ, तब तुम गौर से सुनना । क्योंकि कंठ हों अनेक, गीत तो उसी का है । धीरे-धीरे तुम चारों तरफ जीवन में उसका स्मरण इस तरह करना कि उसके अतिरिक्त तुम्हें कोई दिखायी ही न पड़े ।

भक्ति सुगम है, सरल है, सहज है । लेकिन तुम्हें अगर कठिनाई में ही रस हो तो

बात और; तो फिर बहुत योगशास्त्र हैं; फिर उलटे-सीधे व्यायाम करने की बहुत सुविधाएँ हैं ।

दूसरा प्रश्न : आपने कल कहा कि क्रोध को होशपूर्वक देखने पर क्रोध विलीन हो जाता है । लेकिन क्या कारण है कि कामवासना के उठने पर होश में भी उसकी प्रगाढ़ता बनी रहती है । ऐसा क्यों है ?

होश संदिग्ध है । होश ही न होगा । अन्यथा, होश के होने पर काम हो कि क्रोध, लोभ हो कि मोह, सभी विर्सजित हो जाते हैं । तो फिर तुमने होश को ठीक से सम्हाला न होगा । तो कहीं चूक हो गयी होगी । बजाय यह सोचने के, यह पूछने के, कि होश रहने पर भी कामवासना क्यों नहीं जाती, तुम पुनः अपने होश पर प्रश्न उठाना । ऐसा तो होता ही नहीं ।

होश का अर्थ तो केवल इतना ही है कि होश के क्षण में तुम्हें कोई भी चीज़ घेर नहीं सकती, बस । नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता—काम है, क्रोध है, मोह है, लोभ है—यह सवाल नहीं है । होश के क्षण में तुम सिर्फ साक्षी रह जाते हो । तो तुम किसी भी चीज़ से ग्रसित नहीं हो सकते ! हाँ, होश का क्षण खो जाए, तो तुम फिर पुनः ग्रसित हो जाओगे; या होश का क्षण आये ही न, तुम अपने को धोखा दे लो और समझा लो कि होश का क्षण है ।

लेकिन यह होश की परिभाषा है, कसौटी है, कि उस क्षण में तुम शुद्ध निर्विकार हो जाते हो । होश के क्षण में तुम भगवान हो जाते हो । उस क्षण में तुम्हें कोई भी चीज़ पकड़ नहीं सकती; अगर पकड़ लेती हो तो होश का क्षण नहीं है, तुमने किसी तरह अपने साथ आत्मवंचना कर ली है ।

उन्हें सआदते-मंजिल रसी नसीब हो गया
वो पाँव राहेतलब में जो डगमगा न सके ।

यदि तुम्हारे पैर न डगमगाएँ, तो इसी जीवन में आखिरी मंजिल उपलब्ध हो जाती है । किन पैरों की बात है ? होश के पैरों की बात है । अगर होश न डगमगाए तो जिसको कृष्ण ने गीता में 'स्थितप्रज्ञ' कहा है, कि जिसकी चेतना थिर हो जाती है, जिसकी चेतना में कोई कंपन नहीं होता, अकंप हो जाती है— उस अकंप दशा में कोई चीज़ प्रभावित नहीं करती, क्योंकि प्रभावित हुए कि कंपन शुरू हुआ । प्रभाव यानी कंपन, डगमगाहट ।

तो, मैं यह कहूँगा कि फिर से होश को साधना । और जल्दी न करो, कामवासना बड़ी गहरी वासना है । तुम्हारी भूल मैं समझता हूँ कहाँ हो जाती है । तुमने अभी उड़ना भी नहीं सीखा आँगन में, और तुम बड़े आकाश की यात्रा पर निकल जाते हो । गिरोगे । मुश्किल में पड़ोगे । अभी तुम जरा नदी के किनारे थोड़ा तैरना सीखो, फिर गहरे सागरों में उतरना ।

होश के साथ यही कठिनाई है कि तुम सोचते हो, चलो होश का प्रयोग कर लें कामवासना पर। कामवासना सबसे गहरी वासना है। इतनी जल्दी मत करो। पहले ऐसी चीज़ों पर होश को साधो, जिनमें किनारे पर थोड़ा प्रशिक्षण हो जाए। जैसे राह पे चल रहे हो, होशपूर्वक चलो। सिर्फ चलने के प्रति होश रहे। भूल-भूल न जाओ। याद बनी रहे कि चल रहा हूँ – यह बायाँ पैर उठा, यह दायाँ पैर उठा। अब यह एक छोटी-सी क्रिया है जिसका कोई बंधन नहीं तुम्हारे ऊपर। तुम चकित होओगे कि इसमें भी होश नहीं सधता ! भूल-भूल जाओगे।

बैठे हो शांत, श्वास पर होश साधो। बुद्ध ने श्वास पर होश साधने को सब से महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया माना; क्योंकि श्वास चौबीस घंटे चल रही है, तुम न भी कुछ करो तो भी चल रही है। तो इस सहज क्रिया पर होश को साधना आसान होगा। और जब चाहो तब साध सकते हो–ज़रा आँख बंद करो, श्वास को देखो और होश साधो। श्वास भीतर जाए, होशपूर्वक भीतर ले जाओ–जानते हुए कि श्वास भीतर जा रही है, भीतर पहुँच गयी है, वापस लौटने लगी, बाहर गयी, फिर भीतर आने लगी–माला बना लो श्वास की : भीतर-बाहर, भीतर-बाहर ! एक-एक गुरिया श्वास का सरकाते रहो। तुम चकित होओगे कि यह भी भूल-भूल जाता है। क्षण भर को होश आएगा, फिर मन चला गया दुकान पर, कुछ खरीदने लगा, बेचने लगा, किसी से झगड़ा हो गया; फिर चौंकोगे, पाओगे : 'अरे ! घड़ी बीत गयी ! कहाँ चले गये थे, श्वास तो भूल ही गयी !' फिर पकड़ कर ले आओ। इसको मैं किनारे का अभ्यास कहता हूँ।

श्वास में कुछ झंझट नहीं है। अब तुम या तो क्रोध पे साधोगे . . .। क्रोध रोज़ तो होता नहीं, प्रतिपल होता नहीं, कभी-कभी होता है; जब होता है तब इतनी प्रगाढ़ता से होता है कि तुम गहरे में उतर रहे हो; जब होता है तब इतनी बातें दाँव पे लग जाती हैं कि शायद तुम सोचोगे : 'फिर देख लेंगे होश इत्यादि ! यह अभी तो निपट लें।'

कामवासना तो बहुत गहरी है, क्योंकि प्रकृति ने उसे बहुत गहरा बनाया है, क्योंकि जीवन उस पर निर्भर है। अगर कामवासना इतनी आसान हो कि तुमने चाहा और छूट गये, तो तुम शायद पैदा ही न होते, क्योंकि तुमसे पहले बहुत लोग छूट चुके होते; तुम्हारे होने की संभावना न के बराबर होती। मगर वह तो तुम्हारे माता-पिता, उनके माता-पिता नहीं छूट सके, इसलिए तुम हो। तुम भी इतनी आसानी से न छूट जाओगे, क्योंकि तुम्हारे बच्चों को भी होना है; वे भी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि ऐसे भाग मत जाना बीच से।

जीवन बहुत कुछ टिका है कामवासना पर। इसलिए उसका छूटना इतना आसान नहीं है। असम्भव नहीं है, आसान भी नहीं है। और तुम्हारी यह भूल होगी, अगर तुम इतनी कठिन प्रक्रिया पर पहले ही अभ्यास करो। यह मन की तरकीब है। मन हमेशा तुम्हें कठिन चीज़ें सुझा देता है, ताकि तुम पहले ही दाँव में हार जाओ. . . ! चारों खाने चित्त ! फिर तुम सोचते हो : 'छोड़ो भी ! यह कुछ होने वाला नहीं।'

मन तुम्हें ऐसी दुविधा में उतारता है जहाँ तुम हार जाओ और मन जीत जाए। तुम्हारी हार में मन की जीत है। तो मन तुम्हें तरकीबें ऐसी बताता है कि तुम पहली दफा पाँव उतारो नदी में कि डुबका खो जाओ, कि सदा के लिए भयभीत हो जाओ कि यहाँ जान का खतरा है, जाना ही नहीं !

थोड़े बोधपूर्वक चलो। पहले ऐसी चीज़ों पर होश साधो जिनका कोई भी बल नहीं है : राह पर चलना, श्वास का देखना; कोई भी ऐसी चीज़–पक्षी गुनगुना रहे हैं गीत, बैठ के शांति से उनका गीत सुनना। सतत होश रहे, इतनी बात है। अखंडित होश रहे, धारा टूटे न। जैसे कि कोई तेल को एक पात्र से दूसरे पात्र में डालता है तो अखंड धारा रहती है तेल की, टूटती नहीं–बस ऐसी होश की धारा रहे। पक्षी गुनगुनाते रहें गीत, तुम सुनते ही रहो, सुनते ही रहो, सुनते ही रहो; एक क्षण को भी तुम कहीं और न जाओ।

तो धीरे-धीरे किनारे का अभ्यास करो। जैसे-जैसे अभ्यास घना होगा, वैसे-वैसे तुम्हारे भीतर उत्फुल्लता बढ़ेगी। जैसे-जैसे अभ्यास घना होगा, तुम्हारे भीतर अपने प्रति आश्वासन, विश्वास बढ़ेगा। फिर तुम धीरे-धीरे प्रयोग करना। वह भी जल्दी नहीं करना।

क्रोध पर भी प्रयोग करने हों तो क्रोध भी हजार तरह के हैं। एक क्रोध है जो तुम्हें अपने बच्चे पे आ जाता है। उस पर अभ्यास करना, क्योंकि बच्चे के क्रोध में प्रेम भी सम्मिलित है। फिर एक क्रोध है जो तुम्हें दुश्मन पे आता है, उसमें प्रेम बिलकुल सम्मिलित नहीं है; उस पर अभ्यास करना कठिन होगा। तुम क्रोध में भी गौर करना कि कहाँ अभ्यास शुरू करो। जो अति निकट हैं, जिन पर तुम क्रोध करना भी नहीं चाहते और हो जाता है, उन पर अभ्यास करो। फिर कुछ हैं जो बहुत दूर हैं – दूर ही नहीं, विपरीत हैं; जिन पे तुम चाहोगे भी कि क्रोध न हो, तो भी भीतर की चाह है कि हो जाए; जिन पर तुम खोजते हो, अकारण भी, कि कोई निमित्त मिल जाए और क्रोध हो जाए–उन पे ज़रा देर से अभ्यास करना। पहले अपनों पर, फिर पड़ोसियों पर, फिर शत्रुओं पर। इतने जल्दी तुम अगर शत्रु पर अभ्यास करने चले जाओगे, तो यह ऐसे ही हुआ कि तलवार हाथ में ली और सीधे युद्ध के मैदान में पहुँच गये, कोई प्रशिक्षण न लिया। पहले प्रशिक्षण लो। प्रशिक्षण का मतलब होता है : पहले मित्र के साथ ही तलवार चलाओ। शत्रु के साथ चलाना खतरनाक हो जाएगा। अभी मित्र के साथ खेल-खेल में तलवार चलाओ। जब हाथ सध जाएँ, भरोसा आ जाए, सुरक्षा हो जाए, तब थोड़े आगे बढ़ना।

यह मेरे अनुभव में आया है हज़ारों लोगों पर ध्यान के प्रयोग करने के बाद कि लोग जल्दी ही ऐसा कुछ प्रयोग करते हैं कि जिसमें टूट जाएँ, ताकि झंझट खत्म, ! ताकि फिर वापस अपनी दुनिया में चले गये कि यह होने वाला नहीं, यह होता होगा

किसी और को–कोई सौभाग्यशाली, कोई अवतारी पुरुष, कोई संत-महात्मा–यह अपने से होने वाला नहीं है ! मगर पहले ही इस तरह की कोशिश करते हो, जिसमें कि पहले ही कदम पे हार हाथ लगे । यह तुम्हारे मन का जाल है । इस मन से सावधान ।

अगर तुमने क्रोध पर होश साधा तो क्या होगा ? क्या कसौटी है कि क्रोध पर होश सधा ? प्रमाण क्या होगा ? प्रमाण यह होगा कि अगर क्रोध पर होश वस्तुतः सधा तो तुम क्रोध की जगह करुणा का आविर्भाव पाओगे । अगर करुणा पैदा न हो तो होश का धोखा हुआ, सधा नहीं । क्योंकि क्रोध की जो ऊर्जा है, कहाँ जाएगी ? तुम होश साध लोगे, लेकिन क्रोध में जो ऊर्जा पैदा हुई थी, जो शक्ति जन्मी थी, वह कहाँ जाएगी । तुम्हारे होश के सधते ही वह शक्ति रूपान्तरित होती है ।

होश कीमिया है । होश तो एक प्रक्रिया है, जिससे गुज़र के शक्तियाँ रूपान्तरित होती हैं, अधोगामी शक्तियाँ उर्ध्वगामी होती हैं; तुम ऊर्ध्वरेतस् बनते हो । नीचे की तरफ जाने वाली जीवन-ऊर्जाएं ऊपर की तरफ जाने वाले पंख बन जाती हैं ।

क्रोध पर अगर होश सधा, करुणा पैदा होगी ही । बुद्ध ने उसे कसौटी कहा है । अगर कामवासना पर क्रोध सधा, महान ब्रह्मचर्य का आविर्भाव होगा; तुम एक अनूठी ऊर्जा, शीतल ऊर्जा से भर जाओगे; तुम्हारे भीतर फूल ही फूल खिल जाएंगे; एक गहन संतोष, परितोष, तृप्ति तुम्हें घेर लेगी; बिना किसी कारण के तुम महासुख का अनुभव करोगे । ऐसा सुख तुमने संभोग में कभी नहीं जाना था ! ऐसे सुख की शायद संभोग में बहुत दूर की प्रतिध्वनि मिली थी । अब तुम पहचान पाओगे कि अरे, संभोग में जिसे जाना था, वह इसी महासुख की बड़ी दूर की छाया थी–जैसे हज़ार-हज़ार परदों के पीछे से छिपी हुई रोशनी को तुमने देखा हो, फिर सब परदे उठ गये और तुमने रोशनी का साक्षात दर्शन किया हो !

कामवासना में अगर होश जगेगा तो ब्रह्मचर्य का आविर्भाव होगा । जब मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ तो तुम्हारे साधु-संन्यासियों का ब्रह्मचर्य नहीं, जो जबरदस्ती कामवासना को दबा कर बैठे हैं । उनका ब्रह्मचर्य तो तुम्हारी कामवासना से भी बदतर और रुग्ण है । जब मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ तो मेरा मतलब है : जिस चैतन्य में कामवासना होश की प्रक्रिया से गुज़र गयी और जहाँ अब कुछ भी दमन नहीं; जहाँ सब कूड़ा-कर्कट जल गया, सिर्फ सोना बचा; जहाँ सारी कीचड़ कमल हो गयी ! तुम सुगंध से भर जाओगे । तुम्हीं नहीं भर जाओगे, दूसरे भी तुम्हारे पास उस सुगंध के झोकों को अनुभव करने लगेंगे ! तुम्हारे पैर जमीन पे होंगे और ज़मीन पर नहीं पड़ेंगे । तुम रहोगे यहीं, और कहीं और दूसरे लोक से जुड़ जाओगे । तुम जानोगे निश्चित रूप से; क्योंकि इतनी बड़ी घटना है, बिना जाने नहीं घटेगी ।

अगर लोभ पर तुम्हारा होश जागा तो तुम्हारे जीवन में दान का जन्म होगा; तुम बाँटने लगोगे । और बाँट के तुम ऐसा न अनुभव करोगे कि जिसको तुमने दिया,

उस पर तुमने कोई उपकार किया । तुम उलटे यही अनुभव करोगे कि जिसने स्वीकार किया उसने उपकार किया ।

जो अन्तर की आग, अधर पर
आ कर वही पराग बन गयी
पाँखों का चापल्य सहज ही
आँखों का आकाश बन गया
फूटा कली का भाग्य, सुमन का
सहसा पूर्ण विकास बन गया
अवचेतन में छिपी घृणा ही
चेतन का अनुराग बन गयी ।

वह जो-जो अंधेरे में पड़ा है तुम्हारे भीतर, रोशनी जलते ही रूपान्तरित होता है ।

अवचेतन में छिपी घृणा ही
चेतन का अनुराग बन गयी ।

घृणा प्रेम बन जाती है । क्रोध करुणा बन जाता है ।

द्वंद्व-लीन मानस का मधु छल
प्राणों का विश्वास बन गया
वृद्ध तिमिर का सित कुंतल दल
दृग का दिव्य प्रकाश बन गया
स्व की चरमासक्ति स्वयं से
छल कर परम विराग बन गयी ।
जो अभेद है अनायास वह
भाषित हो कर भेद बन गया
सप्तम स्वर तक पहुंच भैरवी
कोमल राग विहाग बन गयी
जो अंतर की आग, अधर पर
आ कर वही पराग बन गयी ।

अग्नि पराग बन जाती है । काँटे फूल बन जाते हैं ।

होश की प्रक्रिया कीमिया है ।

मनुष्य अपने भीतर सब ले कर आया है–सब ! होश से गुजर जाए तो जिसे तुम संसार कहते हो, वही सत्य बन जाता है । होश से गुज़र जाए तो जिसे तुमने पत्थर जाना है, वही परमात्मा बन जाता है ।

इसलिए होश बहुमूल्य शब्द है । इसे सम्हालना संपदा की भाँति । इससे बड़ी और कोई संपदा नहीं है । होश, स्मृति, सुरति, सम्यक् बोध–नाम बहुत हैं, बात एक ही है ।

तीसरा प्रश्न : आपने कहा कि तुम स्वप्न पर श्रद्धा करते हो और सत्य पर संदेह। पर जिसे आप स्वप्न कहते हैं, वह हमें सत्य मालूम देता है और आपका सत्य हमारे लिए स्वप्नवत् है। कृपापूर्वक बताएं कि किसकी गंगा उलटी बहती है—आपकी या हमारी ? और क्यों और कैसे ?

लोकतंत्र की बात पूछो तो तुम्हारी गंगा सीधी बहती है। लेकिन सत्य से लोकतंत्र का कोई सम्बंध नहीं। भीड़ से सत्य तय नहीं होता।

तो फिर कसौटी क्या है ?

एक ही कसौटी है कि अगर गंगा सीधी बहती हो तो आनंदित होगी, सहज होगी, संगीतपूर्ण होगी; सागर की तरफ पहुँच रही है, अपना घर पास आ रहा है—प्रतिपल पुलकित होगी; नृत्य करती होगी; समारोहपूर्वक होगी। गंगा अगर उलटी बहती हो तो दीन-हीन होगी, परेशान होगी, तनाव से भरी होगी, दुखी होगी, संतप्त होगी। तो तुम्हीं सोच लो। अगर तुम प्रसन्न हो, आनंदित हो, तो धन्यभाग, तुम्हारी गंगा सीधी बह रही है। अगर तुम दुखी हो, पीड़ित हो, परेशान हो, तो ऐसा समझ के मत बैठ जाना कि गंगा सीधी बह रही है; क्योंकि तब तो फिर तुम्हारे इस दुर्भाग्य से छूटने का उपाय भी न रहा। अपने-अपने भीतर कस लेना। अपनी-अपनी गंगा है। अगर उलटी बह रही हो तो आनंदपूर्ण नहीं हो सकती। उलटा हो के कोई कभी आनंदपूर्ण हुआ ? शीर्षासन करके ज़रा खड़े हो के देखो, कितनी देर कर पाओगे ?

जहाँ-जहाँ जीवन में प्रक्रियाएं उलटी हो जाती हैं, वहीं पीड़ा पैदा होती है। पीड़ा का अर्थ ही केवल इतना है। पीड़ा इंगित है, सूचक है कि कहीं कुछ गलत हो गया, कहीं कुछ बात स्वभाव के प्रतिकूल हो गयी, स्वाभाविक न रही।

सुख का अर्थ है : सभी कुछ स्वाभाविक है तो सुख है। दुख का अर्थ है : सभी कुछ अस्वाभाविक हो गया है। दुख दुश्मन नहीं है; दुख तो मित्र है; दुख तो खबर दे रहा है कि कहीं कुछ गलत हो गया है, ठीक कर लो। दुख तो यही कह रहा है कि जहाँ चले जा रहे हो वह मंजिल नहीं है; बदलो, राह बदलो, लौटो ! जैसे ही तुम ठीक दिशा में चलने लगोगे, सुख का सरगम बजने लगेगा।

सुख है क्या ?—जब तुम अनुकूल जा रहे हो स्वभाव के।

महावीर से किसी ने पूछा : सत्य क्या है ? तो महावीर ने कहा : बत्थु सहावो धम्म ! जो वस्तु का स्वभाव है, वही सत्य है, वही धर्म है।

मनुष्य दुखी है : स्वभाव के प्रतिकूल है, धर्म के प्रतिकूल है।

तुम अपने भीतर जाँच कर लो। अगर दुखी हो, गंगा उलटी बह रही है। फिर देर न करो, क्योंकि ज्यादा देर उलटे बहते रहो तो उलटे बहने का अभ्यास हो जाता है। फिर जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी रूपान्तरण करो। दुख के साथ बैठ के मत रह जाना, नहीं तो दुख भी आदत बन जाता है। फिर तुम दुख को छोड़ना भी चाहते

हो और छोड़ना भी नहीं चाहते; एक हाथ से पकड़ते हो, एक हाथ से हटाते हो, चाहते हो मुक्ति हो जाए दुख से, और बीज भी बोए चले जाते हो, क्योंकि आदत हो गयी है।

पर इसको तुम मापदण्ड, कसौटी, निकष समझो। यह कोई मत लेने की बात नहीं है, अन्यथा मैं हार जाऊँगा। उस दृष्टि से बुद्ध-महावीर सदा हारे हैं, अकेले हैं। अगर भीड़ से सत्य निर्णीत होता है तो बुद्ध गलत हैं, भीड़ सही है। लेकिन सत्य का भीड़ से क्या लेना-देना ? सत्य तो भीतरी अनुभव है। उससे दूसरे की तुलना का भी कोई सम्बंध नहीं है। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम मुझसे तुलना करो। मैं तुमसे यही कहता हूँ कि तुम अपने भीतर ही जाँच-परख करो, अवलोकन करो। अगर दुखी हो तो गंगा उलटी बह रही है। अगर सुखी हो तो सौभाग्य, गंगा बिलकुल सीधी बह रही है। फिर तुम किसी के चक्कर में मत पड़ना। फिर तुम किसी की शिक्षा स्वीकार मत करना। अगर तुम सुख में हो तो सावधान रहना, किसी के पीछे मत चलना, नहीं तो कोई तुम्हारी गंगा उलटी चलवा देगा। अगर तुम सुख में हो तो सुख में जीना। चाहिए ही क्या और ?

अगर तुम सुख में हो तो आनंद तक पहुँच जाओगे। सुख प्रमाण है कि ठीक जगह चल रहे हैं, मंजिल आ जाएगी। अगर तुम दुख में हो तो सुख तक ही पहुँचना मुश्किल है, आनंद तक तो कैसे पहुँचोगे ?

फूल खिले हैं गुलशन गुलशन
लेकिन अपना अपना दामन !

फूल तो खिले हैं चारों तरफ, पर कुछ लोग हैं जिन्होंने काँटों को चुनने की आदत बना ली है—अपना-अपना दामन—जो काँटे ही चुनते हैं। फिर पीड़ित होते हैं। फिर भी काँटे चुनना जारी रखते हैं !

काफी समय हुआ, बहुत देर हो गयी ! काफी जन्मों तक तुम काँटे इकट्ठे किये हो। अभी भी तुम्हारी आँख में सुख का फूल खिला हुआ मालूम नहीं होता। अभी भी तुम्हारे हृदय में वह साज नहीं बज रहा है जिसे सुख का कहें।

चेतो !

बदलो !

रूपान्तरित होओ !

किसी और के कहने की बात नहीं है—खुद को ही समझ लेने की है।

तुम जिन्हें सत्य कहते हो, अगर वे सत्य हों तो तुम्हारा दामन फूलों से भर गया होता; क्योंकि सत्य से कभी किसी ने दुख पाया नहीं। तुम्हारी हालत ऐसी है कि जितना तुम दौड़-धूप करते हो उतने हाथ खाली होते चले जाते हैं; उतना दामन भिखारी की झोली बनता चलता जाता है; भरता तो नहीं, उलटा खाली होता है। जिंदगी भर दौड़ के आदमी भिखारी की तरह गिर के मर जाता है—हाथ खाली !

सारी जिंदगी की चेष्टा तुम्हारी आत्मा को एक भिक्षापात्र से ज्यादा नहीं बना पाती। कहीं पहुँच नहीं पाते। शायद बचपन में कहीं थे, तो वह भी चूक गया। मंजिल के पास आना तो दूर, शायद और दूर निकल गये।

इसे थोड़ा गौर करो। इसे जाँचते रहो।

एक-एक कदम महँगा है अगर गलत दिशा में उठाया जा रहा है, क्योंकि लौटना पड़ेगा। एक-एक कदम महँगा है, क्योंकि फिर पुनः यात्रा करनी पड़ेगी।

तुम्हारे जीवन में जिसे तुम सत्य कहते हो, अगर वह सत्य है तो तुम तृप्त क्यों नहीं हो? नहीं, मैं तुमसे कहता हूँ: रात तुम सोए, नींद में तुम्हें भूख लगी, तुमने एक सपना देखा कि राजमहल में निमंत्रण मिला है, तुम भोज में सम्मिलित हुए हो, तुमने खूब भरपेट भोजन किया—लेकिन सुबह, क्या तुम पाओगे, तुम्हारा पेट भरा है? या कि सुबह तुम पाओगे, कि यह तो सिर्फ रात अपनी भूख को झुठला लेने की तरकीब थी? यह सपना तो भूख को मिटाने वाला न था, भूख को छिपा लेने वाला था। इससे भूख मिटी नहीं, इससे भूख दब गयी। इससे शरीर को कोई तृप्ति और कोई पोषण तो न मिलेगा।

सपने में तुमने कितने ही अच्छे भोजन किये हों, किसी काम के नहीं — रूखी-सुखी रोटी भी शायद ज्यादा पोषक हो अगर सच्ची हो, असली हो।

तुम्हारे सपने सत्य नहीं हो सकते, अन्यथा तुम तृप्त होते; तुम्हारा पेट भरा होता; तुम्हारी क्षुधा शांत होती; तुम्हारे भीतर चैन की बंसी बजती—वह तो नहीं सुनायी पड़ती। तुम्हारे भीतर तो अहर्निश एक आर्तनाद हो रहा है, एक दुख और पीड़ा का शोरगुल मचा है। तुम्हारी वीणा से संगीत उठता नहीं मालूम पड़ता, सिर्फ व्यर्थ का कोलाहल होता हुआ मालूम होता है।

निश्चित ही, तुम जिन्हें सत्य कहते हो, वे स्वप्न हैं।

मेरे सत्य तुम्हें स्वप्न मालूम पड़ेंगे, स्वाभाविक है। लेकिन इतना मैं तुमसे कह सकता हूँ: कोलाहल खो गया है। दुख बहुत दूर निकल गया है; उसकी पगध्वनि भी सुनायी नहीं पड़ती। इतना तुमसे कह सकता हूँ: आनंद बरसा है। और अगर तुम समझदार हो, अगर तुममें थोड़ी भी मात्रा समझ की है, तो तुम मेरे स्वप्नों को, जो तुम्हें स्वप्न जैसे मालूम पड़ते हैं, उनको चुनना पसंद करोगे अपने सत्यों की बजाय; क्योंकि तुम्हारे सत्यों ने क्या दिया है? माना कि आज तुम्हें मेरे सत्य स्वप्न जैसे मालूम पड़ते होंगे; लेकिन फिर भी अगर तुम समझदार हो तो अपने सत्यों की बजाय मेरे स्वप्न चुनोगे।

तुमने अपने सत्य तो बहुत चुन के देख लिये, कहाँ पहुँचे? चलो, मेरे सपनों की भी परीक्षा कर लो! दो कदम मेरे साथ भी चल के देख लो, अपने साथ चल के तो तुमने बहुत देख लिया।

आखिरी प्रश्न : भगवान! मेरे पिता जी सत्रह-अट्ठारह वर्ष की उम्र में धूनी वाले बाबा के पास अकेले गये और वहाँ से लौटते समय रास्ते में उन्हें कुछ अनुभव हुआ और वे विक्षिप्त हो गये। तब से आज तक वे जीवन को दो विपरीत तलों में बारी-बारी से जीते हैं—एक विक्षिप्तता का और दूसरा सामान्य समाज-स्वीकृत। जब वे विक्षिप्तता की दशा में होते हैं, तब उनका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक होता है और वे अभय से भरे होते हैं, साधु-संतों के पास जाते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं, चिंता-मुक्त मस्ती से जीते हैं। और जब वे सामान्य दशा में होते हैं, तब रुग्ण हो जाते हैं, भयभीत, चिंतित और गंभीर रहते हैं, और पूरे समय घर में ही बने रहते हैं। आज उनकी उम्र सत्तर वर्ष है। आप कृपाकर मुझे कहें कि इस जीवन में क्या उनकी नियति यही है, या उनके लिए भी जीवन के अंतिम चरण में नये जन्म की कोई संभावना है।

नरेन्द्र ने पूछा है। नरेन्द्र के पिता को मैं जानता हूँ। उनकी स्थिति का मुझे पूरा-पूरा पता है। और ऐसी दुर्घटना बहुत लोगों के जीवन में घटी है। जो सौभाग्य हो सकता था वह दुर्भाग्य हो गया। समझना जरूरी है।

सत्य की दिशा में कभी-कभी किसी उपलब्ध व्यक्ति के करीब अचानक झलक मिल जाती है। उस झलक के मिलने के बाद स्वभावतः व्यक्ति में दो तल हो जाते हैं। जो झलक मिली, वह किसी और दिशा में खींचती है और उस व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व किसी और दिशा में खींचता है। एक द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है।

फिर वह जो झलक मिली, वह कुछ ऐसी मस्ती से भर देती है कि लगता है कि पागलपन है। न केवल व्यक्ति को लगता है पागलपन है, बल्कि परिवार के लोगों को, प्रियजनों को, मित्रों को, समाज को भी लगता है पागलपन है। और जब वह व्यक्ति उस झलक से नीचे उतर आता है तो समाज को, परिवार को, मित्रों को लगता है अब ठीक हुआ। हालत बिलकुल उलटी है। वह जो पागलपन की दशा है, वही ठीक दशा है।

नरेन्द्र के पिता को अगर बचपन से ही, जब उनको यह घटना घटी, तभी से अगर जबरदस्ती स्वास्थ्य दिलाने की चेष्टा न की गयी होती और उनकी विक्षिप्तता को एक भक्त की अहोभाव की दशा समझा गया होता, तो वे कभी के खिल गये होते। लेकिन परिवार ने, घर ने, समाज ने भी समझा कि यह पागलपन है, इसका इलाज होना चाहिए। बहुत इलाज किये गये उनके। जबरदस्ती दवाइयाँ दी गयीं उनको।

और वे भी मानते हैं कि यह पागलपन है! पागलपन जैसा लगता ही है, क्योंकि इतना अनूठा लोक शुरू होता है, खुद भी भरोसा नहीं आता। तो वे भी साथ देते हैं इलाज में, चिकित्सा में। फिर भी जो झलक मिली थी, वह इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि लाख दवाएँ भी उससे नीचे नहीं उतार पायीं; फिर-फिर पकड़ लेती है।

कभी उन मदभरी आँखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं ।

फिर-फिर लौट-लौट के वह झलक उनको पकड़ लेती है !

और कितना साफ मामला है अगर समझ हो ! जब भी वे पागल होते हैं, तभी वे स्वस्थ होते हैं, तब उनको कोई बीमारी नहीं रह जाती, तब वे बड़े प्रसन्न होते हैं, बड़े मस्त होते हैं ! मैंने उनकी मस्ती देखी है । तब वे वैसे होते हैं जैसे हर मनुष्य को होना चाहिए । तब वे गीत गाते हैं । तब सुबह से उन्हें तीन बजे गाँव नदी पर स्नान करते देखा जा सकता है– गुनगुनाते, नाचते ! वे प्रसन्न होते हैं । उनके सब रोग खो जाते हैं । उनके चेहरे पे रौनक आ जाती है । आँखों में एक चमक आ जाती है । तब वे तीर्थयात्रा पे निकल जाते हैं । तब संतों का सत्संग करते हैं । तब सुबह तीन बजे से भजन गाते हैं । लेकिन गाँव भर उनको पागल समझता है । तब वे मस्त होते हैं । तब उनकी मस्ती का कोई ठिकाना नहीं होता । तब उनके प्याले से उनकी मस्ती बहती है । तब पूरा गाँव उनको पागल समझता है । तब उनका इलाज शुरू हो जाता है । जब गाँव उनका इलाज कर लेता है, तब वे रुग्ण हो जाते हैं; तब उनके चेहरे की मस्ती खो जास्ती है; तब बड़े भयभीत हो जाते हैं; तब वे घर से निकलने में डरने लगते हैं; तब वे कमजोर हो जाते हैं, रुग्ण हो जाते हैं, बिस्तर से लग जाते हैं– तब लोग कहते हैं, 'अब ठीक हो गये ! अब पागल नहीं हैं ।'

अब यह मामला बिलकुल सीधा-साफ है : जब वे पागल हैं तब वे ठीक हैं । लेकिन समाज को पागलपन लगता है, घर के लोगों को भी पागलपन लगता है । क्योंकि हम यह मान ही नहीं सकते कि कोई आदमी होश में और इतना मस्त हो सकता है । हम सब इतने रुग्ण और परेशान और दीन-हीन, और हमारे बीच अचानक एक आदमी इतनी मस्ती दिखला रहा है, जरूर दिमाग खराब हो गया है ! दुखी होना हमारी कसौटी है सामान्य स्वास्थ्य की; प्रसन्नचित्त हो जाने से शक होने लगता है ।

मेरे पास लोग आ जाते हैं । खुद भी शक होता है उनको । वे कहते हैं, 'ध्यान कर रहे हैं, बड़ा आनंद आ रहा है; लेकिन कहीं पागल तो न हो जाएँगे ?'

आनंद पागल का लक्षण है !

मेरे पास लोग आते हैं । वे कहते हैं, 'बड़ी शांति मिल रही है; लेकिन घर लौट के जाएँगे, कुछ लोगों को ऐसा तो न लगेगा कि कुछ गड़बड़ हो गयी है ?'

समाज करीब-करीब रुग्ण दशा को स्वास्थ्य मान के जी रहा है । इसलिए जब तुम्हारे भीतर कोई मस्त हो जाता है तो मुश्किल मालूम होती है ।

महावीर मस्त हो गये, तो लोगों ने गाँव से निकाल भगाया । महावीर मस्ती में नग्न घूमने लगे, तो लोगों ने गाँव में न घुसने दिया । मीरा मस्त हो गई तो प्रियजनों ने जहर भिजवाया कि मर जाए; क्योंकि उसकी मस्ती सारे घर के ऊपर बोझ हो गयी; उसकी मस्ती पागलपन हो गयी । लोक-लाज छोड़ दी उसने । जो कभी घर

से न निकली थी, घूंघट के बाहर न आयी थी, वह बाजारों में नाचने लगी ! वह आवारा हो गयी !

मीरा दीवानी हुई; लेकिन उसकी दीवानगी परम स्वास्थ्य है !

यही झंझट नरेन्द्र के पिता के साथ हो गयी । अभी भी उपाय है – अगर उनके पागलपन को स्वास्थ्य मान लिया जाए और उनका इलाज न किया जाए, और जब वे पागल हो जाएँ तो सारा घर उत्सव मनाये और उनके पागलपन में सम्मिलित हो जाए, और उनको आश्वासन दे कि तुम बिलकुल ठीक हो । उनके मन से यह भ्रांति टूट जाए कि मैं गलत हूँ, तो उनके भीतर का जो द्वैत पैदा हो गया है, वह विसर्जित हो जाएगा ।

वे जिनके पास गये थे – धूनी वाले बाबा – वे एक परमहंस व्यक्ति थे । उनके पास घटना घट गयी होगी । वे एक महानुभाव थे । उनकी छाया में कोई बात पकड़ गयी होगी । फिर भूले नहीं । वह मस्ती फिर गयी नहीं । फिर ज़माने बीत गये, पचास साल हो गये उस बात को । लेकिन अगर शुभ की एक झलक मिल जाए तो घेर-घेर लेती है, बार-बार घेर लेती है ।

सौभाग्य का क्षण आया था, उसे हमने बदल दिया, रूपांतरित कर दिया, उसे दुर्भाग्य बना दिया ।

हुदूदे-कूचा-ए महबूब है वहीं से शुरू
जहाँ से पड़ने लगें पाँव डगमगाए हुए ।

– परमात्मा का घर वहीं से पास है, प्रेमी का घर आने लगा करीब – 'हुदूदे कूचा-ए महबूब है वहीं से शुरू' – उस प्यारे के घर की सीमाएँ पास आने लगीं, 'जहाँ से पड़ने लगें पाँव डगमगाए हुए'–जहाँ से मस्ती आने लगे, शराब का नशा छाने लगे ! पास है उसका घर ।

वे उस घर के बहुत पास हो के लौट आये हैं । वे भूलते भी नहीं–भूल भी नहीं सकते । उनका कोई कसूर भी नहीं है । लेकिन समाज नासमझ है । समाज के मूल्य गलत हैं । वे परमहंस हो गये होते, वे पागल हो के रह गये हैं ।

उनके बस के बाहर है कि वे उसको भूल जाएँ, और हम उन्हें साथ न दे सके कि वे इसको भूल जाते जिसको हम स्वास्थ्य कहते हैं । उसे तो भूल ही नहीं सकते वे । पचास साल बहुत लम्बा वक्त होता है । हर कोशिश की है उन्होंने । खुद भी कोशिश की है । लेकिन मामला कुछ ऐसा है –

वो जो एक रब्तेमोहब्बत है मिटाना उसका
मेरी ताकत में नहीं, आपकी कुदरत में नहीं ।

वह जो प्रेम का एक सम्बंध है, वह जो एक अहोभाव है, वह जो एक घड़ी है, वह आदमी की ताकत में नहीं कि उसको मिटा दे, अगर हो जाए, और परमात्मा के स्वभाव में नहीं कि उसको मिटा दे ।

मेरी ताकत में नहीं, आपकी कुदरत में नहीं ।

उनके 'पागलपन' को पागलपन कहने में भूल हो गयी है । अभी भी कुछ बात नहीं बिगड़ गयी है । अभी भी काश, उन्हें स्वीकार किया जा सके ! न केवल स्वीकार, बल्कि अहोभाव से, धन्यभाव से, उनसे कहा जा सके कि हमसे भूल हो गयी । अगर परिवार उनसे कह दे कि 'हम से भूल हो गयी और हम व्यर्थ ही तुम्हें खींचते रहे, वह हमारी गलती थी, हमारी नासमझी थी; हम समझ न पाए कि क्या तुम्हें हुआ है, तुमने कौन-सा झरोखा खोल लिया ! हम अंधे हैं । और हमने तुम्हें अपनी तरफ खींचने की कोशिश की । उस खींच-तान में सब टूट गया । न तुम वहाँ जा पाये, न तुम यहाँ के हो पाये । यहाँ के तुम हो नहीं सकते, वह तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर है ।'

जिसकी आँख उस पे पड़ गयी, वह लौट नहीं सकता; हाँ, खींच-तान में दुर्दशा हो जाएगी । वही दुर्दशा उनकी हो गयी है । उन्हें स्वीकृति चाहिए – सम्मानपूर्वक स्वीकृति चाहिए, ताकि उनके भीतर का भी भाव यह हो जाए कि ठीक हुआ है ।

ध्यान रखना, आज की दुनिया में ऐसे बहुत-से पागल पागलखानों में बंद हैं जो आज से हज़ार साल पहले अगर होते तो परमहंस हो गये होते; और ऐसा भी हुआ है कि आज से हज़ार साल पहले ऐसे बहुत-से पागल परमहंस समझे गये, जो आज होते तो पागलखानों में होते । समाज के मापदण्ड पे बहुत कुछ निर्भर करता है ।

परमहंस में बहुत कुछ पागल जैसा होता है । पागल में भी बहुत कुछ परमहंस जैसा होता है । भेद करना बड़ा मुश्किल है, बड़ा बारीक है । पर अगर भेद न हो सके तो भी मेरा मानना यह है कि पागल को भी परमहंस कहो, हर्जा नहीं है; लेकिन परमहंस को पागल मत कहना । मेरी बात समझ में आयी ? अगर भेद न भी हो सके, अगर मनस्शास्त्री तय भी न कर पाएँ कि सीमा-रेखा कहाँ है, तो तुम पागल को भी परमहंस कहना, क्या हर्ज है ? तुम्हारे परमहंस कहने से वह कुछ ज्यादा पागल न हो जाएगा । लेकिन परमहंस को पागल कभी मत कहना, क्योंकि पागल कहने से, वह जो जहाँ जा रहा था, जा न पाएगा । और यहाँ तो अब हो नहीं सकता; वह आधा-आधा हो जाएगा, द्वंद्व हो जाएगा ।

एक दुर्भाग्य हो गया जो सौभाग्य हो सकता था । अभी भी लेकिन दूर समय नहीं गया है । कभी भी इतनी देर नहीं होती । जब जाग जाओ तभी सुबह है !

आज इतना ही ।

दिनांक १३ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।।.५१ ।।

मूकास्वादनवत् ।। ५२ ।।

प्रकाशते क्वापि पात्रे ।ः ५३ ।।

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानम-
विच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ।। ५४ ।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति
भाषयति तदेव चिन्तयति ।। ५५ ।।

गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा ।। ५६ ।।

उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति
।। ५७ ।।

शून्य का संगीत है प्रेम

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् !

प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है – जो कहा न जा सके; जिया जा सके, भोगा जा सके, अनुभव किया जा सके – पर कहा न जा सके ।

लहर सागर में है, सागर भी लहर में है – लेकिन लहर पूरी की पूरी सागर में है; पूरा का पूरा सागर लहर में नहीं है ।

अनुभव सागर जैसा है; अभिव्यक्ति लहर जैसी है । . . . थोड़ी-सी खबर लाती है, पर बहुत, अनंतगुना पीछे छूट जाता है; ज़रा-सी झलक लाती है, लेकिन बहुत शेष रह जाता है ।

शब्द शून्य को बाँध नहीं पाते–बाँध नहीं सकते। शब्द तो छोटे-छोटे आँगनों जैसे हैं। अनुभव का, शून्य का, प्रेम का, परमात्मा का आकाश असीम है । यद्यपि आँगन में भी वही आकाश झाँकता है, लेकिन आँगन को आकाश मत समझ लेना, अन्यथा कारागृह में पड़ जाओगे। जिसने आँगन को आकाश समझा, उसका दुर्भाग्य, क्योंकि फिर आँगन में ही जीने लगेगा। आँगन से आकाश बहुत बड़ा है। आँगन से स्वाद ले लेना, लेकिन तृप्त मत हो जाना ।

शब्द से अनुभव का आकाश बहुत बड़ा है। शब्द से प्यास जगे, शब्द से यात्रा शुरू हो, लेकिन शब्द पर यात्रा पूरी न हो जाए। कहीं शब्द को ही सब मत समझ लेना। शब्द में इंगित हैं, इशारे हैं; जैसे राह के किनारे मील के पत्थर हैं, तीर लगे हैं – आगे की तरफ सूचना है । मील के पत्थर को मंजिल मत समझ लेना । सभी शब्द चाहे वेद के हों, चाहे कुरान के, चाहे बाइबिल के – शब्द मात्र सीमित है, और प्रेम का अनुभव विराट है ।

इसलिए पहला सूत्र है आज का, बहुत अनूठा : 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।' 'उस प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है !'

उसकी व्याख्या न हो सके, अभिव्यक्ति न हो सके। ऐसा नहीं कि जिन्होंने जाना, नहीं कहा है; खूब कहा है, बार-बार कहा है, हज़ार बार कहा है; फिर भी अनुभव किया है, जो कहना चाहते थे, वह नहीं कहा जा पाया है । जो कहा है, बहुत छोटा

है; जो कहना चाहते थे, बहुत बड़ा है ।

रवीन्द्रनाथ मरणशैया पर थे। एक मित्र ने कहा, 'तुम धन्यभागी हो, तुम्हें जो गाना था गा लिया, कहना था कह लिया। तुमने छह हज़ार गीत रचे हैं। तुम महाकवि हो ! तुम तो शांति से, तृप्ति से मृत्यु में विदा हो सकते हो !' रवीन्द्रनाथ ने आँख खोली और कहा, 'तृप्ति ! तृप्ति कैसी ? जो कहना चाहता था, अभी भी अनकहा रह गया है; जो गाना चाहता था अभी गा कहाँ पाया ! यही परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि यह तूने क्या किया ! कैसे असमय में उठा रहा है मुझे ! अभी तो वाद्य बिठा पाया था, साज़ जमा पाया था । अभी तो गीत जो गाना था, अनगाया रह गया है । अभी फूल खिले नहीं, अभी तो सिर्फ भूमि तैयार हुई थी । बाहर के लोगों ने तो यही समझ लिया कि वाद्य का बिठाना, तबले की ठोंक-पीट, सितार के तारों का जमाना, यही संगीत है ।'

अगर कोई कवि कहता हो कि जो गाना था गा लिया है तो समझना कवि छोटा है; गाने को बहुत कुछ होगा ही न, इसलिए गा लिया। अगर कोई चित्रकार कहे कि जो चित्रित करना था कर लिया है, तो समझना कि चित्रित करने को कुछ बहुत ज्यादा न रहा होगा; आँगन ही बनाना था, आकाश नहीं ।

सिर्फ छोटे क्षुद्र अनुभव ही प्रगट होते हैं। जितना विराट अनुभव हो, उतना ही अप्रगट रह जाता है; जितना हो विराट, उतना ही अनिर्वचनीय हो जाता है । अनिर्वचनीयता विराटता के अनुपात में होती है ।

इसलिए बुद्ध ने कहा है कि 'तुम सोचते हो मैं बोला ? बोलने की कोशिश की – बोला कहाँ !' बुद्ध के भक्त – जापान में झेन फकीर – कहते हैं कि बुद्ध बोले ही नहीं । और बुद्ध चालीस साल निरंतर बोले !

यही मैं तुमसे कहता हूँ, 'रोज तुम मुझे सुनते हो, मैं बोला नहीं । जो बोलना है, बोला नहीं जा सकता । अनिर्वचनीय है। जो बोल रहा हूँ, वह वही है जो बोला जा सकता है; वह वही नहीं है जो मैं बोलना चाहता हूँ । मेरे बोलने को तुम मेरी आकांक्षा अभीप्सा, अभिलाषा मत समझ लेना । मेरा बोलना शब्द की सीमा में है–होगा ही; कोई उपाय नहीं है ।'

शून्य का संगीत बजाना हो तो वीणा के तार से कैसे उठाओगे ? तार तो ध्वनि करेगा । शून्य तो ध्वनि में खो जाएगा । शून्य का संगीत उठाना हो तो वीणा तोड़ देनी पड़ेगी । शून्य का संगीत उठाना हो तो वीणा को अनुपस्थित हो जाना पड़ेगा । वीणा की मौजूदगी भी बाधा होगी । मौन से ही कहा जा सकता है जो कहना है । लेकिन मौन तुम न समझ सकोगे ।

प्रेम अनिर्वचनीय है । लेकिन प्रेम को जो समझना चाहते हैं, शब्द के अतिरिक्त उनके पास कोई और समझ नहीं; इसलिए प्रेम पर भी बोलना होता है ।

शून्य नहीं होता परिभाषित
रहता मात्र नयन में
मन्वन्तर संवत्सर वत्सर
कब बँधते लघु क्षण में ?
रहते सभी अनाम, न कोई
कभी पुकारा जाता
रह जाती अभिव्यक्ति अधूरी
जीवन-शिशु तुतलाता !

सब बोलना तुतलाने जैसा है। बुद्धों के वचन भी तोतले हैं, तुतलाने जैसे हैं। जैसे छोटा बच्चा कुछ कहना चाहता है, बड़े भाव से भरा है, पर शब्द नहीं हैं। शब्दों की भी कुछ खोज-बीन कर ले थोड़ी-बहुत, तो बड़े थोड़े-से शब्द हैं। कहना चाहता है बड़ी बातें, लेकिन एक ही शब्द जानता है : 'माँ'! 'माँ'! उसी से सब कहना है। भूख लगे तो माँ-माँ, प्यास लगे तो माँ-माँ; धूप लगे तो माँ-माँ, शीत लगे तो माँ-माँ। एक ही शब्द है, उसी से सब कहना है।

शब्द बड़े थोड़े हैं; कहने को बड़ा विराट है। और प्रेम विराट से भी विराटतर है। प्रेम महाशून्य है। प्रेम का अर्थ ही है, जहाँ तुम मिट जाओ, जहाँ तुम्हारी खबर न मिले; ऐसी जगह आ जाओ जहाँ अपने को भी खोजने से खोज न सको।

प्रेम का अर्थ है, जहाँ तुम मिट जाओ। प्रेम महामृत्यु है। तुम जहाँ शून्य हो जाते हो वहीं परमात्मा प्रगट हो जाता है, अपने अनंत रूपों में। जहाँ तुम खो जाते हो, वहीं उसकी वीणा बज उठती है; अनंत स्वर-संगीत तुम्हें घेर लेते हैं। लेकिन तुम बचते नहीं, कहने वाला नहीं बचता। पहली बात : भाषा छोटी है, संकुचित – थोड़े-से शब्द, बच्चे के तुतलाने जैसे। फिर दूसरी बात : प्रेम को जानने वाला, जानने में खो जाता है, पिघल जाता है, बह जाता है; बोलने वाला बचता नहीं। जब बोलने योग्य कुछ होता है जीवन में तो बोलने वाला नहीं बचता। जब तक बोलने वाला होता है जीवन में तो कुछ बोलने योग्य नहीं होता।

तुम कितना बोलते हो ! कभी सोचा ? सुबह से साँझ बोलते ही रहते हो। कभी विचारा, बोलने को क्या है ? रात नींद में भी बड़बड़ाते हो, बोले ही चले जाते हो। कभी ठहरो ! क्षणभर को ठिठको ! कभी रुक के सोचो ! लौट के देखो, बोलने को क्या है ? बोलने को कुछ भी नहीं। मगर बोल-बोल के ऐसा आभास कर लेते हो कि जैसे बोलने को बहुत कुछ था। कहानी कह-कह के आभास कर लेते हो कि कहने को कहानी थी। ऐसे झूठी संपदा का भ्रम पैदा होता है। गा-गा के समझा लेते हो कि गीत पैदा हुआ था, गायक का जन्म हुआ था। बिना जाने, स्वर-ताल का कोई अनुभव नहीं; लेकिन ठोंकते-पीटते रहते हो वीणा को, शोरगुल होता है। निश्चित ही; उसी शोरगुल को संगीत समझ लेते हो। जब संगीत पैदा होता है तो हाथ रुकने लगते हैं, वीणा छेड़ने में भी डरते हैं।

जितनी होती है गहरी समझ, उतना ही मौन प्रगाढ़ होने लगता है। फिर अगर तुम बोलते भी हो तो जान के बोलते हो, मजबूरी है; दूसरा समझ न सकेगा मौन को, इसलिए मुखर होते हो। लेकिन एक क्षण को भी यह बात विस्मरण नहीं होती कि जो पाया है वह कहा न जा सकेगा। क्योंकि कहने वाला भी शेष नहीं रहा उसी पाने में; उसे भी, उसी पाने में उसे दे डाला है। उसे दे कर ही तो पाया है।

शून्य नहीं होता परिभाषित !
और प्रेम शून्य है, महाशून्य है।

दो तरह के शून्य हैं। एक तो गणित का शून्य है; वह किताबों में, कागज़ों पर, सलेट-पट्टियों पर होता है। आदमी न हो तो गणित का शून्य मिट जाएगा, क्योंकि आदमी न हो तो गणित न होगा। गणित का शून्य भी बड़ा बहुमूल्य है। एक के ऊपर रख दो, दस बन जाते हैं। दस के ऊपर रख दो, सौ बन जाते हैं। उस शून्य से सारा गणित निकलता है। सारा गणित शून्य का ही फैलाव है। लेकिन वह शून्य खो जाएगा; वह मनुष्य-निर्मित शून्य है। गणित का शून्य असली शून्य नहीं है; आदमी न होगा, खो जाएगा। लेकिन एक और शून्य भी है–असली शून्य–प्रेम का; आदमी हो या न हो, रहेगा। जब दो पक्षी भी प्रेम में पड़ते हैं, तो उसी शून्य में उतर जाते हैं। जब धरती-आकाश प्रेम में डूबते हैं तो उसी शून्य में उतर जाते हैं। जब दो पौधे लहलहाते है प्रेम की तरंग में, तो उसी शून्य में उतर जाते हैं।

प्रेम का शून्य जीवन का शून्य है। गणित का शून्य तो नकारात्मक भाव रखता है। गणित के शून्य का अर्थ होता है, जहाँ कुछ भी नहीं, खाली; यद्यपि उस खाली से सारे गणित का खेल चलता है। तुम शून्य को हटा लो गणित से, आँकड़े रह जाएँगे, लेकिन गणित खो जाएगा। सारा विस्तार उसी ना-कुछ का है। लेकिन प्रेम का शून्य तो विधायक शून्य है। जैसे गणित का सारा विस्तार गणित के शून्य का है, ऐसे ही जीवन का सारा विस्तार प्रेम के शून्य का है।

तुम पैदा हुए हो–प्रेम की किसी ऊर्जा से। सारे जगत का खेल चलता है–प्रेम की किसी ऊर्जा से। अब तो वैज्ञानिकों को भी शक होने लगा है कि शायद जिसे वे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं पृथ्वी का, वह पृथ्वी का प्रेम हो ! और जिसे वे ऋण और धन विद्युत का आकर्षण कहते हैं, वह शायद विद्युतीय प्रेम हो ! शायद जिसे वे तारों के बीच का संबंध और जोड़ कहते हैं, वह भी चुंबकीय प्रेम हो ! शायद अणु-परमाणु जिससे गुंथे हैं और टूट के छितर नहीं जाते, वह भी प्रेम की ही गाँठ हो, वह भी प्रेम का ही गठबंधन हो ! होना भी चाहिए, क्योंकि आदमी कुछ अलग-अलग तो नहीं। आया है इसी विराट से, जायेगा इसी विराट में। जहाँ से आदमी आता है, वहीं से पौधे आते हैं, वहीं से पत्थर आते हैं। ज़रूर कोई चीज तो समान होनी ही चाहिए। स्रोत समान है तो कुछ चीज़ तो समान होनी ही चाहिए। तभी तो तुम पत्थर के पास बैठ के भी अजनबी अनुभव नहीं करते। वृक्ष के पास बैठ के भी अपनापन अनुभव

करते हो । सागर भी बुलाता है । हिमालय से भी बात हो जाती है । आकाश को देखते हो तो भी संबंध बनता है, परिवार मालूम होता है ।

अस्तित्व परिवार है । और अगर परिवार को तुम समझो, तो परिवार को जोड़ने वाले सेतु और धागे का नाम ही प्रेम है ।

इसलिए जीसस का वचन अनूठा है, जब जीसस ने कहा : परमात्मा प्रेम है । जीसस ने यह कहा कि परमात्मा को छोड़ दो तो चलेगा, प्रेम को मत छोड़ देना । परमात्मा को भूल जाओ, कुछ हर्जा न होगा; प्रेम को मत भूल जाना । प्रेम है तो परमात्मा हो ही जाएगा । और अगर प्रेम नहीं है तो परमात्मा पत्थर की तरह मंदिरों में पड़ा रह जाएगा, मुर्दा, लाश होगी उसकी, उससे जीवन खो जाएगा ।

भक्ति का सारा सूत्र प्रेम है । और प्रेम से सब निकला है—पदार्थ ही नहीं, परमात्मा भी । परमात्मा प्रेम की आत्यंतिक नियति है—अंतिम खिलावट ! आखिरी ऊँचाई ! संगीत की आखिरी छलाँग ! परमात्मा प्रेम का ही सघन रूप है । प्रेम को समझा तो परमात्मा को समझा । प्रेम को न समझ पाए तो परमात्मा से चूक हो जाएगी ।

इसलिए भक्ति का शास्त्र बड़ा अनूठा है । भक्ति का शास्त्र संसार के विरोध में नहीं है । भक्ति का शास्त्र कहता है, संसार में प्रेम को खोजना, क्योंकि उन्हीं चरण-चिह्नों के सहारे तुम परमात्मा तक पहुँच पाओगे ।

हाँ, एक दृष्टि का रूपान्तरण चाहिए । अपने बेटे को प्रेम करना, अपने बेटे की तरह नहीं । वहीं भूल हो जाती है । अपने बेटे को भी प्रेम करना—परमात्मा के एक रूप की तरह । वहीं भूल मिट जाती है । वहीं उलझन छूट जाती है । प्रेम जिसको भी करना, उसमें परमात्मा देखना । और प्रेम से शुरुआत होती है । प्रेम के अभाव में, परमात्मा कोरी लफ्फाजी है, शाब्दिक जाल है, तर्क का ऊहापोह है, वाद-विवाद है—सार कुछ भी नहीं ।

इसलिए तुम पाओगे बहुतों को, पंडितों को, परमात्मा की चर्चा करते; लेकिन अगर उनकी आँख में तुम्हें प्रेम की किरण न मिले तो समझ लेना, सब धोखा है, सब पाखंड है । प्रेम की किरण हो आँख में तो चर्चा कोई भी चलती हो, परमात्मा की ही चर्चा है । चाहे कोई यह भी कहता हो कि परमात्मा नहीं है — जैसा बुद्ध ने कहा, 'कोई परमात्मा नहीं'—लेकिन बुद्ध धोखा थोड़े दे पाएँगे । किसको धोखा देने की सोच रहे हैं ? किसको धोखा दे पाए ? बुद्ध कहते रहे, 'परमात्मा नहीं'; लेकिन आँख कहती रही, 'परमात्मा है' । आँख की किरण कहती रही, 'परमात्मा है' ।

एच. जी. वेल्स ने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात लिखी है कि बुद्ध जैसा ईश्वर-शून्य और ईश्वर-जैसा व्यक्ति पृथ्वी पर हुआ नहीं । ईश्वर-शून्य ! और ईश्वर-जैसा ! गॉडलेस एक गॉडलाइक! किसको धोखा देने का सोचा है बुद्ध ने? बुद्धू पड़ जाएँ धोखे में, पड़ जाएँ; बाकी कोई जानने वाला क्या धोखे में पड़ेगा ! बुद्ध की आँख कहती है जो बुद्ध के वचन इनकार करते हों । और बुद्ध शायद इसीलिए इनकार कर रहे हैं कि मुँह से

कहने से क्या होगा, अगर आँख में तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता ! और आँख में दिखायी पड़ता हो तो मुँह कुछ भी कहता हो, तुम देख ही लोगे ।

वह शायद कसौटी थी । वह शायद, जो उनके पास आते थे, उनकी परीक्षा थी । जो परीक्षा में पार उतर गये, उन्होंने बुद्ध के द्वार से—उस गुरुद्वारे से — सब कुछ पा लिया । स्वभावतः बुद्ध कहते रहे कि भगवान नहीं है, और जिन्होंने बुद्ध को जाना, उन्होंने कहा, 'तुम भगवान हो ! ' धोखा किसे दे सकते हो ?

> शून्य नहीं होता परिभाषित
> रहता मात्र नयन में
> मन्वंतर संवत्सर, वत्सर
> कब बँधते लघु क्षण में ?
> रहते सभी अनाम, न कोई
> कभी पुकारा जाता
> रह जाती अभिव्यक्ति अधूरी
> जीवन-शिशु तुतलाता !

हमारे श्रेष्ठतम व्याख्याकार भी तुतला रहे हैं । हमारे श्रेष्ठतम दार्शनिक और मनीषी भी तुतला रहे हैं । मगर उनकी करुणा है कि उसे कहने की कोशिश करते हैं, जो नहीं कहा जा सकता । और तुम्हारी भूल होगी कि उन्होंने जो कहा है, तुम उसे वही समझ लो कि वही सत्य है । उनकी करुणा है, इसलिए कहते हैं; तुम्हारा अज्ञान होगा अगर तुम उसे पकड़ लो ।

जिन्होंने वेद की ऋचाएँ गायीं, उनकी महाकरुणा है; वे न गाते तो मनुष्यता वंचित रह जाती; वे न गाते तो मनुष्य दरिद्र होता; वे न गाते तो मनुष्य की चेतना इतनी समृद्ध न होती जितनी आज है । लेकिन तुम्हारी भूल होगी कि तुम उन ऋचाओं को पकड़ के बैठ जाओ और तुम समझो कि ऋचाओं में सत्य है या कि ऋचाएँ सत्य हैं ।

इसलिए तो नारद ने कहा : भक्त सर्वथा वेद का त्याग कर देता है । वेद से मतलब सिर्फ चार वेदों से नहीं है । वेद से मतलब उन सभी शास्त्रों का है जिनमें महाकरुणा-वान पुरुषों ने अपने अनुभव को परिभाषित करने की असफल चेष्टा की है । असफल इसलिए भी हो जाती है चेष्टा कि जब तुम परमात्मा के पास पहुँचते हो, जितने पास पहुँचते हो—तुमने जो माँगा था उससे अनंतगुना मिलना शुरू होता है; तुम्हारी झोली छोटी पड़ जाती है ।

> एक रूप माँगा था, तुमने
> यह सारा संसार दे दिया !
> छोटी-सी पुतली के पट पर
> किस-किस का प्रतिबिम्ब उतारूँ

भीड़ खड़ी है सन्मुख मेरे
किसे छोड़ दूं, किसे पुकारूँ
एक कली माँगी थी, तुमने
अपना हार उतार दे दिया !
एक राग माँगा था, तुमने
अपना उठा सितार दे दिया !
एक रंग माँगा था, तुमने
सुरधनु का उपहार दे दिया !

झोली छोटी पड़ जाती है। माँगने वाले का हृदय छोटा पड़ जाता है। जिस बूंद में सागर उतर आए, तो जो दशा बूंद की हो जाए, वही भक्त की हो जाती है।

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् !'

प्रेम का स्वरूप व्याख्या के, वर्चन के बाहर है।

'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है।'

अनिर्वचनीयता बहुरंगी है, बहुमुखी है, बहुआयामी है। परमात्मा का जब उद्घोष होता है तो तुम सुनते हो, परमात्मा बोलता नहीं। तुम भर जाते हो संगीत से, और उसकी वीणा मौन रही आती है। रहस्यपूर्ण है अनुभव।

कभी-कभी तुम्हें अनुभव होगा किसी 'महानुभाव' की छाया में : सद्गुरु चुप होगा और अचानक तुम अनुभव करोगे कि तुम भरने लगे; उसने कुछ दिया नहीं प्रगट, अप्रगट में कुछ उँडल आया; उसने कुछ तुम्हारे हाथों में दिया नहीं—सीधा-साफ, रूपरेखा में आबद्ध—और तुम्हारे हाथ अचानक भर गये।

परमात्मा प्रसाद देता नहीं—तुम्हें मिलता है। दे, तो प्रगट करना आसान हो जाए। बिना दिये मिलता है। बोले, सुना हो, तो दूसरे को भी सुनाना आसान हो जाए।

शून्य से आती है—प्रतीति, अहसास, लहर ! मस्ती की तरह तुम्हें घेर लेता है ! शब्दों की तरह नहीं, शास्त्रों की तरह नहीं—शराब की तरह तुम्हें भर देता है। तुम तुम नहीं रह जाते, सब कुछ बदल जाता है; लेकिन कोई हाथ देते हुए मालूम नहीं पड़ते; कोई वीणा बोलती हुई मालूम नहीं पड़ती। सुना जाता है; इलहाम होता है; उद्घोषणा होती है। स्रोत का पता नहीं चलता।

तुम चकित अवाक्, रहस्यपूरित रह जाते हो। उस घड़ी में, हृदय भी रुक जाता है; मन की तो बात ही न करो। विचार ठिठक जाते हैं। सोच-विचार की सारी क्षमता खो जाती है। तुम पहली दफा निर्बोध शिशु की भाँति हो जाते हो ! कोरे कागज़ !

गोशे-मुश्ताक की क्या बात है अल्लाह अल्लाह
सुन रहा हूँ मैं वो नग्मा जो अभी साज़ में है।

उत्कंठित कानों की क्या बात कहें ! वह गीत जो अभी गाया नहीं गया, जो फूल अभी फूला नहीं, जो बीज अभी टूटा नहीं.....।

सुन रहा हूँ मैं वो नग्मा जो अभी साज़ में है ! अभी साज़ के बाहर नहीं आया, अभी रूप नहीं लिया—अरूप, मौन ! देख रहा हूँ उसे जिसने अभी आकार नहीं लिया ! मिलन हो रहा है उससे जो अभी जन्मा नहीं। फिर कैसे अभिव्यक्ति होगी, फिर कैसे अभिव्यंजना होगी ?

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् !'

'गूंगे के स्वाद की तरह !'

'मूकास्वादमवत्।'

नारद के इस सूत्र के फिर भक्त हज़ारों तरह से गाते रहे हैं। कबीर कहते हैं : गूंगे केरी सरकरा ! 'गूंगे का गुड़' तो लोकोक्ति बन गया। मगर जन्म हुआ है इसी सूत्र से।

'मूकास्वादमवत् ! गूंगे के स्वाद की तरह !'

गूंगे के स्वाद को समझें।

गूंगे को कोई अड़चन स्वाद लेने में नहीं है—स्वाद की पूछना मत। स्वाद लेने में गूंगा उतना ही समर्थ है, जितना कोई और; क्योंकि स्वाद की इन्द्रिय गूंगे के पास उतनी ही है जितनी तुम्हारे पास ! इन्द्रिय एक ही है स्वाद की और वाणी की— जिह्वा। इसलिए यह सूत्र पैदा हुआ।

जीभ ही स्वाद लेती है, जीभ ही बोलती है। अब सवाल यह है : जब जीभ ही स्वाद लेती है तो बोलने में दिक्कत क्या ? जीभ ने ही स्वाद लिया है, बोल दे ! किसी और ने लिया होता और हम जीभ से पूछते तो अड़चन हो सकती थी। अब जब तुमने ही स्वाद लिया है तो बोल दो। इसलिए यह सूत्र पैदा हुआ, कि माना, जीभ ही स्वाद लेती है; लेकिन जीभ के पास दो क्षमताएँ अलग-अलग हैं। इसलिए गूंगा बोल तो नहीं सकता, स्वाद तो ले सकता है। इसलिए बोलने की क्षमता और स्वाद की क्षमता को एक मत मानना; वे अलग हैं। गूंगा बोल नहीं सकता, स्वाद ले सकता है। तुम बोल भी सकते हो, स्वाद भी ले सकते हो; एक ही जीभ से दोनों काम होते हैं, लेकिन दोनों का कहीं मिलन नहीं होता। नहीं तो गूंगा भी स्वाद न ले सकता। अगर बोलने के कारण गूंगे की जीभ खराब हो गयी है, बोल नहीं सकता, तो स्वाद कैसे होगा ? पर स्वाद तो बड़े मजे से लेता है। संभावना इस बात की है कि गूंगा तुमसे ज्यादा बेहतर स्वाद लेता हो, क्योंकि बोलने की भी अड़चन वहाँ नहीं है; वहाँ उसकी जीभ पूरी की पूरी मुक्त है।

'गूंगे के स्वाद की भाँति।'

भक्त अनुभव तो करता है, बोल नहीं पाता। तार्किक पूछते हैं, जब तुम्हें ही अनुभव हुआ है तो बोल क्यों नहीं देते हो ?

पश्चिम के एक वर्तमान विचारक है : आर्थर कोएस्लर। सदियों से जो तर्क

दोहराया गया है, वही वे आज भी दोहराते हैं। वे यही कहते हैं बार-बार कि जो अनुभव किया जा सकता है, वह बोला क्यों नहीं जा सकता ? जब तुमने जान लिया तो जना दो ! आखिर अड़चन क्या है ?

उनका कहने का अर्थ यह है, समस्त तार्किकों के कहने का अर्थ यह है कि संतों को कुछ हुआ नहीं, व्यर्थ की बकवास है; चूंकि हुआ नहीं है, इसलिए कह नहीं सकते। मगर कहते यह हैं कि हुआ बहुत बड़ा है और कह नहीं पा रहे हैं। हुआ ही नहीं है कुछ।

तार्किक यह कहता है, 'जो हुआ है, उसे कहोगे क्यों न ? सिर में दर्द होता है, पता चलता है तो तुम कह देते हो, सिरदर्द हुआ। पैर में काँटा चुभता है, पता चलता है तो तुम कह देते हो कि काँटे की पीड़ा है। खुशी होती है, हृदय उत्फुल्ल होता है तो तुम कह देते हो, प्रसन्न हैं, खुश हैं, बहुत आनंदित हैं। तुम सभी बातें कह देते हो जो तुम जान पाते हो; यह परमात्मा की बात के संबंध में गूंगे क्यों हो जाते हो ? कहीं ऐसा तो नहीं कि धोखा दे रहे हो ? जब सभी और ज्ञान अभिव्यक्त हो जाते हैं, तो यही ज्ञान अनभिव्यक्त क्यों रह जाता है ? यह ज्ञान ही न होगा; या तो तुम धोखा दे रहे हो या खुद धोखे में पड़े हो।

तार्किक का यह प्रश्न है।

नारद का उत्तर है : मूकास्वादमवत्। वे यह कहते हैं, क्या तुम यह कहोगे कि गूँगा बोल नहीं सकता, इसलिए मिठाई जब उसने खायी तो मिठास नहीं जानी ? कोएस्लर को भी मुश्किल में डाल देंगे। यह तो कोएस्लर भी न कह सकेगा कि गूंगा अगर मिठाई खाये तो मिठास नहीं जानता। यह तो मानना पड़ेगा कि मिठास तो जानता है। तुम गूँगे के चेहरे को देख के कह सकते हो जब वह मिठाई खा रहा है। फिर मिर्चं खिला के देख लो ! बिना बोले गालियाँ देगा। आँख में पढ़ी जा सकेंगी। बड़बड़ायेगा, बोल न सकेगा। मगर सब तरह से कह देगा कि दोस्ती खत्म !

बोल तो नहीं सकता गूँगा, यह साफ है, लेकिन समझ लेता है। मिर्च का धोखा न दे पाओगे। मिठाई दोगे तो मिठास होगी; मिर्च दोगे तो तिक्त... उत्तेजना होगी, पीड़ा होगी ! पर गूँगा बोल नहीं सकता। इशारे करेगा। प्यास लगती है तो गूँगा अँजुलि बढ़ा देगा दोनों हाथों की। प्यास का तो अनुभव हो रहा है, लेकिन प्यास को वह कह नहीं पाता है। बढ़ाता है, अँजुलि भरता है। फिर जब तुम पानी दे दोगे तो तुम तृप्ति भी लिखी हुई उसके चेहरे पे देखोगे—धन्यवाद भी !

तो जब गूँगे के जीवन में ऐसा हो जाता है, तो जिस बात की सुविधा तुम गूँगे को देते हो, कम-से-कम उतनी सुविधा तो संतों को दे दो — इतना ही नारद कहते हैं। इतना तो तुम गूँगे को भी क्षमा कर देते हो, कम-से-कम उतनी सुविधा तो संतों को दे दो — इतना ही नारद कहते हैं। इतना तो तुम गूँगे को भी क्षमा कर देते हो, भक्तों को इतनी

तो क्षमा कर दो। इतना तो सन्देह मत करो कि इनको हुआ ही न होगा, इसलिए कह नहीं पाते हैं।

फिर एकाध भक्त की बात होती कि धोखा दे रहा था तो भी ठीक था, अनंत काल में अनंत भक्त हुए हैं, सभी धोखा दे रहे थे ? और किसलिए धोखा दे रहे थे ? तुम्हारी गालियाँ खाने को ? सूली चढ़ाया जाए, जहर पिलाया जाए, पत्थर मारे जाएँ — इसलिए ? तुमसे मिला क्या है ? धोखा आदमी देता है वहाँ जहाँ कुछ मिलता हो। जीसस को मिला क्या ? सूली मिली। सूली पाने को तुम्हें धोखा दे रहे थे ? सुकरात को मिला क्या ? जहर मिला। जहर पीने के लिए तुम्हें धोखा दे रहे थे ? मंसूर को मिला क्या ? फाँसी मिली। फाँसी पाने के लिए तुम्हें धोखा दे रहे थे ? आत्महत्या ही कर ली होती, तुम्हें इतना कष्ट देने की क्या ज़रूरत थी ? तुमने दिया क्या है भक्तों को जो तुम्हें धोखा दें ? धोखा तो बाज़ार में चलता है जहाँ कुछ मिलने की आशा हो

परमात्मा... उस परम का गुह्य अनुभव ! पीड़ा भला लाता हो, संसार की नजरों में यह खयाल भला लाता हो कि तुम पागल हुए, उन्मत्त हुए, तुमने होश गँवाया, समझ खोयी, लोक-लाज खोयी—और तो क्या मिलता है ? निंदा मिलती हो, उपेक्षा मिलती हो, लोगों की हँसी मिलती हो, मसखरे मिलते हों—और क्या मिलता है ? धोखा किसलिए ? फिर एकाध कोई धोखा देता.....। निरपवाद रूप से असंख्य काल में, असंख्य लोगों ने धोखा दिया है ? फिर से सोचो। फिर ऐसा करो... कोएस्लर को उसके ही अनुभव से समझाना उचित है।

किसी से प्रेम हो जाता है, तब तुम ठीक-ठीक बता पाओगे किसलिए हो गया ? क्या तुम ठीक-ठीक बता पाओगे, प्रेम क्या है ? छोड़ो परमात्मा को, प्रेम तो सभी को होता है। हर माँ को प्रेम होता है अपने बच्चे से; कौन माँ अब तक व्याख्या कर सकी कि प्रेम क्या है ! पूछो प्रेम की बात, गूँगी हो जाती है। इतने प्रेमी हुए — मजनू हो कि फरिहाद हो, हीर-राँझा हो — पूछो प्रेमियों से, 'क्या है प्रेम ?' ठिठक के खड़े रह जाते हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। कोई उत्तर नहीं आता। पर शायद प्रेमी भी पागल होंगे।

फिर अपने जीवन में कुछ ऐसे अनुभव खोजो जो तुम्हें होते हैं और तुम्हीं नहीं कह पाते। रात पूर्णिमा का चाँद निकला है; गद्‌गद् अहोभाव से तुमने कहा है, 'सुन्दर है !' और पड़ोसी कहता है, 'कहाँ, क्या है सौंदर्य, बताओ ? इसमें क्या सुन्दर है ?' अचानक तुम हारे, असफल हो जाते हो। अचानक लगता है, सीमा आ गयी। तर्क से समझा न सकोगे। कैसे सिद्ध करोगे कि चाँद सुन्दर है ? है तो है; और अगर किसी को नहीं है तो नहीं है। अचानक विवश हो गये। अचानक अभिव्यक्ति सार्थक न रही। अब तुम लाख समझाने का उपाय करो, तुम जानते हो कि समझा न सकोगे।

सौंदर्य एक प्रतीति है—गूंगे का गुड़ है। हो अनुभव तो ठीक, दूसरा राजी हो जाए तो ठीक; बिना झंझट किये; अगर उसे भी स्वाद आ जाए तो ठीक। अगर वह भी सिर हिला दे गूंगे की तरह कि ठीक! लेकिन अगर खड़ा हो जाए तर्क करने कि क्या सौंदर्य, तो तुम सुन्दरतम स्त्री में भी सिद्ध न कर सकोगे कि सुन्दर है। क्या सिद्ध करोगे? नाक की लम्बाई से सौन्दर्य का कोई लेना-देना है? कैसे सिद्ध करोगे, आँखें मछलियों की तरह हैं? इससे क्या सिद्ध होता है? होंगी मछलियों की तरह, सौन्दर्य का क्या लेना-देना है? किसने कहा पहले कि मछलियाँ सुन्दर हैं? कि होंगे बाल काली घटाओं की तरह; पर काली घटाएँ सुन्दर हैं, यह तुमसे किसने कहा? जिनको कड़वे अनुभव हुए हैं, वे कहेंगे: काली नागिन की भाँति! कहाँ की काली घटाएँ? सपनों में खोये हो। ज़मीन पे आओ! अनुभव की बात करो! ये सब कविताएँ हैं।

सिद्ध न कर सकोगे। कोई उपाय नहीं है सिद्ध करने का।

मजनू को उसके गाँव के राजा ने बुला भेजा था और कहा, 'तू पागलपन बंद कर। यह लैला, जिसके पीछे तू दीवाना है, तेरी दीवानगी सुन के हमको भी खयाल हुआ था कि देख लें; देखी हमने, काली-कलूटी साधारण-सी स्त्री है। तुझ पे दया आती है: दौड़ता रहता है गाँव की सड़कों पर, लैला-लैला पुकारता रहता है।'

दया सभी को आने लगी होगी। सम्राट ने अपने महल से दस-बाहर सुन्दर स्त्रियाँ ला के खड़ी कर दीं कि इनमें से तू चुन ले कोई भी। लेकिन मजनू ने उस तरफ देखा और कहने लगा, 'लेकिन लैला कहाँ है? इनमें कोई लैला नहीं है।' सम्राट ने कहा, 'मैंने लैला देखी है। तू दीवाना है, पागल है।' मजनू हँसने लगा। उसने कहा कि 'मजनू की बिना आँख के तुम लैला देख सकोगे? मजनू की आँख चाहिए लैला देखने को।'

भक्त की आँख चाहिए भगवान को देखने को। सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। भक्त ही नहीं हार जाते, मजनू भी हार जाता है। वह क्या कह रहा है? वह यह कह रहा है कि मेरी आँख से देखोगे तो ही....। वह सौंदर्य कुछ ऐसा है कि उसके लिए खास आँख चाहिए—एक दृष्टि चाहिए!

तुम अपने जीवन में ऐसे अनुभव खोज सकोगे निश्चित ही। कई बार तुम्हें प्रतीति हुई होगी कि दूसरा राजी नहीं हुआ और तुम हार गये, कुछ उपाय न रहा कहने का, अचानक तुमने बात वापस ले ली, विवाद में कोई सार न था। क्या थी अड़चन?—गूंगे का गुड़! तुम्हारा अनुभव था, दूसरे का अनुभव नहीं था; तालमेल न हो सका।

कोएसलर को भी ऐसे अनुभव निश्चित हुए होंगे, क्योंकि इतना दीन-हीन मनुष्य खोजना मुश्किल है जिसे ऐसा एक भी अनुभव न हुआ हो, जहाँ शब्द सार्थक नहीं होते। कोएसलर तो बड़ा विचारशील व्यक्ति है, बहुत अनुभव हुए होंगे—प्रेम के, सौंदर्य के, सत्य के, शुभ के, शिवम् के—जहाँ भाषा एकदम टूट जाती है। और अगर

तुम दूसरों को इतनी सुविधा देते हो तो नारद को भी इतनी सुविधा दो।

...'गूंगे के स्वाद की तरह है।

मश्वरे होते हैं शेखो विरह-मन में 'जिगर'
रिन्द सुन लेते हैं बैठे हुए मैखाने में

—वे जो पंडितों में चर्चाएँ चल रही हैं, उनके लिए शराबियों को सुनने आने की ज़रूरत नहीं है। रिन्द सुन लेते हैं बैठे हुए मैखाने में! वे जो परमात्मा के संबंध में मश्वरे हो रहे हैं, विवाद हो रहे हैं, इस सबको सुनने उनको मंदिरों और मस्जिदों में आने की ज़रूरत नहीं है—अपनी मस्ती में डूब हुए वहीं सुन लेते हैं। खुद परमात्मा को ही सुन लेते हैं, पंडितों और मौलवियों के मश्वरों की किसको फिक्र!

भक्त यानी रिंद। भक्त यानी पियक्कड़। भक्त यानी जिसे शब्दों से लेना-देना नहीं है, जो मधुशाला में बैठा है। भक्त यानी अनुभव की प्याली को जो उतार गया; अनुभव को पी गया।

लागी कैसी लगन
मीरा हो के मगन
गली-गली हरि-गीत गाने लगी
जो थी महलों पली
जोगन बनी, जोगन चली
आज रानी दीवानी कहाने लगी,

—पागल हो गयी दूसरों की नज़रों में। कुछ पी बैठी! कोई नशा छा गया! कोई मस्ती इतनी बड़ी कि लोक-लाज की चिंता न रही। कुछ ऐसा बड़ा अनुभव कि सारा संसार स्वप्नवत् मालूम हुआ।

'प्रकाशते क्वापि पात्रे।'

'किसी विरले पात्र में ऐसा प्रेम प्रगट भी होता है।'

...अनिर्वचनीय है। कहा नहीं जा सकता। गूंगे के स्वाद की भाँति है। फिर भी नारद कहते हैं, किसी विरले पात्र में, प्रेमीभक्त में ऐसा प्रेम प्रगट भी होता है। अभिव्यक्त तो नहीं होता, प्रगट होता है। उसके रोएँ-रोएँ में पुलक होती है। उसके उठने-बैठने में प्रार्थना होती है। उसकी आँखों की पलकों के झपने में, उसके होने के ढंग में, उसके बोलने में या न बोलने में, उसके चुप रहने में—परमात्मा की भनक आती है।

'प्रकाशते क्वापि पात्रे।'

लेकिन कभी-कभी कोई ऐसा महा पात्र होता है सौभाग्यशाली कि उसमें परमात्म प्रकाशित होता है। इस भेद को समझ लेना—अभिव्यक्त नहीं, प्रकाशित। प्रगट होता है। कोई मीरा, कोई चैतन्य बह उठते हैं; उनके पात्र के ऊपर से बहने लगता परमात्मा। वही तो हमने नाच की तरह देखा। वही हमने गीत की तरह सुना।

लेकिन उसके लिए भी तुम्हारे पास हृदय का खुला हुआ द्वार चाहिए, अन्यथा मीरा पागल मालूम होगी। जहाँ परमात्मा पैदा होता है, अगर तुम्हारे पास देखने की सम्यक् दृष्टि न हो तो पागलपन मालूम होगा।

स्वभावतः पागलपन का इतना ही अर्थ होता है कि तुम जिन्हें जीवन के नियम मानते हो, उनके विपरीत कुछ हो रहा है; तुम जिसे मर्यादा मानते हो उससे अन्यथा कुछ हो रहा है; तुमने जिसे ढाँचा बना रखा था अपनी व्यवस्था का, उसके पार कोई चला गया, सीमा के बाहर जा रहा है। तुम पागल तभी कहते हो किसी को जब तुम्हारी जीवन-व्यवस्था उसकी मौजूदगी से डगमगाने लगती है : या तो वह सही है या तुम सही हो। स्वभावतः तुम्हारी भीड़ है। इसलिए तुम अपने को सही मानने के लिए सुविधा जुटा लेते हो। वह अकेला है। मीरा अकेली है। चैतन्य अकेला है। तुम उसे पागल कहोगे तो भी मीरा के पास कोई उपाय नहीं है सिद्ध करने का कि वह पागल नहीं है। लेकिन ध्यान रखना, उसे पागल कह के तुम चूके जा रहे हो। उसका कुछ बिगड़ता नहीं, तुम चूके जा रहे हो। तुम एक अवसर खोये दे रहे हो।

परमात्मा प्रकाशित हुआ है! आँखों से अपने पक्षपात हटाओ! आँखों से अपनी क्षुद्र विचारधारा को अलग करो! धुंधलके को हटाओ, व्यर्थ का; क्योंकि उससे कुछ मिला तो नहीं, उसे पकड़े क्यों बैठे हो? तुम्हारा तर्कजाल, तुम्हारा शब्दजाल तुम्हारा विचारजाल —पाया क्या है तुमने उससे? हाथ तो कुछ भी नहीं आया। एक मछली भी तो फँसी नहीं। कोरे के कोरे रह गये हो। प्यासे के प्यासे रह गये हो। छोड़ो अब उसे!

आँख को पक्षपात-मुक्त करके देखो, तो तुम्हें मीरा में या चैतन्य में परमात्मा प्रकाशित दिखायी पड़ेगा।

अभिव्यक्ति तो सम्भव नहीं है, लेकिन फिर भी उसकी अभिव्यंजना होती है। किसी विरले पात्र में, प्रेमी भक्त में, प्रेम प्रगट भी होता है।'

'यह प्रेम गुण-रहित है, कामना-रहित है, प्रतिक्षण बढ़ता है, विच्छेद-रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और अनुभवस्वरूप है।'

प्रेम की तैयारी हो, प्रेम के लिए तुम निरंतर धीरे-धीरे अपने को तैयार करते रहो, तो एक-न-एक दिन परमात्मा से मिलन हो जाएगा, क्योंकि प्रेम ही उसकी सीढ़ी है। लेकिन तुम जिस ढंग का जीवन जीते हो वह प्रेम से विपरीत है। उसमें तुम धन तो इकट्ठा करते हो, प्रेम नहीं। और अगर विकल्प हो कि धन चुनूँ कि प्रेम, तो तुम प्रेम के मुकाबले धन चुन लेते हो; प्रेम बेच देते हो, धन चुन लेते हो। तुम कहते हो, 'प्रेम फिर देख लेंगे, धन तो अभी ले लें।'

तुम्हारे सामने जब भी कोई विकल्प होता है, तुम प्रेम को हमेशा बलिदान करते रहते हो; फिर तुम पूछते हो, 'परमात्मा कहाँ है?' उसकी सीढ़ी को तो तुम काट-काट के बाज़ार में बेचते रहते हो; फिर एक दिन सीढ़ी टूट जाती है, तुम्हारे और

आकाश के बीच कोई सम्बंध नहीं रह जाता, तब तुम चिल्लाते हो कि परमात्मा कहाँ है! तब तुम्हें डर लगता है। तब उस भय में तुम यह भी कहते हो कि कोई परमात्मा नहीं है, ताकि यह भरोसा आ जाए कि न कोई परमात्मा है, न किसी सीढ़ी की ज़रूरत है, न मुझे कहीं जाना है, मैं जैसा हूँ ठीक हूँ। ऐसी सांत्वना खोजने के लिए तुम परमात्मा को इनकार भी करते हो।

फ्रेडरिक नीत्शे ने घोषणा की है कि परमात्मा मर गया है। किसी ने पूछा, 'यह घोषणा क्यों?' तो नीत्शे न कहा, 'अगर वह जीवित है तो चैन से बैठना संभव न होगा।'

अगर परमात्मा है तो फिर तुम चैन से कैसे बैठोगे? उसे बिना पाए चैन कहाँ! तो एक ही उपाय है : कह दो कि है ही नहीं। नास्तिक यही उपाय करता है; वह कहता है, परमात्मा है ही नहीं। वह यह कह रहा है कि कहीं जाने की अब हिम्मत नहीं है, पैर थक गये हैं, यात्रा करने का और अब उपाय नहीं है; अगर यह मानूं कि मंजिल है तो बेचैनी होगी; यही उचित है, समझा लेता हूँ अपने को कि मंजिल है ही नहीं।

नास्तिक का एक उपाय है परमात्मा से बचने का। और जिसको तुम आस्तिक कहते हो, उसका भी एक उपाय है परमात्मा से बचने का—वह कहता है, 'तुम हो, खोजने का सवाल कहाँ? मंदिर में पूजा कर आते हैं, मस्जिद में तुम्हारी प्रार्थना कर लेते हैं, अब और क्या चाहिए? इतने से राजी हो जाओ। हर रविवार को चर्च में हो आते हैं। इतना उपकार कुछ तुम पे कम है? राजी हो जाओ। फंदा छोड़ो! हमारा गला छोड़ो!

तो आस्तिक सस्ते उपाय खोजता है—खिलौने; धर्म के नाम पर खिलौने! वह जैसे परमात्मा कोई बच्चा हो, असली कार न लाए, खिलौने की कार ले आए; उसे कहा, 'देख, यह कार है, रेलगाड़ी है, हवाई जहाज है।' परमात्मा जैसे कोई बच्चा हो, तुम अपने मंदिरों-मस्जिदों से उसे भुलाना चाहते हो। तुम कहते हो, 'देखो, तुम्हारे लिए मंदिर बना दिया, अब और क्या चाहते हो? तुम्हारी सोने की मूर्ति बना दी, अब और ज्यादा माँग न करो। अब हमें चैन से जीने दो हम जहाँ हैं। अब और न पुकारो। अब और न आवाहन दो। अब और चुनौती न भेजो। हम थक गये हैं।'

मेरे देखे, आस्तिक और नास्तिक में बहुत फर्क नहीं दिखायी पड़ता। आस्तिक की एक तरकीब है उसी परमात्मा से बचने की, नास्तिक की भी उसी परमात्मा से बचने की दूसरी तरकीब है। दोनों बच रहे हैं।

धार्मिक आदमी वह है जो कहता है, 'तब तक चैन न लेंगे, जब तक तुम्हें पा न लें। अगर तुम्हें बनाने को, तुम्हारी सीढ़ी बनाने को सारा जीवन निछावर करना होगा तो करेंगे। प्रेम के ऊपर सब कुछ गँवा देंगे, लेकिन प्रेम को न गँवाएँगे।'

'यह प्रेम गुण-रहित है, कामना-रहित है, प्रतिक्षण बढ़ता है ।'

यह प्रेम की परिभाषा है, लक्षण है । प्रेम गुण-रहित ही होता है । प्रेम न तो राजसिक होता है, न सात्त्विक होता है, न तामसिक होता है । प्रेम गुणातीत है । प्रेम संसार के पार है । प्रेम ऐसे ही संसार के पार है जैसे कमल सागर के पार, सरोवर के पार होता है, दूर खड़ा ! उठता है सरोवर से, उसी कीचड़ से, फिर भी पार होता है—सरोवर-अतीत । प्रेम ऐसे ही संसार के तीनों गुणों से अतीत है ।

....कामना-रहित है । प्रेम की कोई और कामना नहीं है । प्रेम यह नहीं कहता कि मुझे कुछ दो । प्रेम कहता है, बस प्रेम काफी है; इसके पार और कोई माँग नहीं है । प्रेम बस प्रेम से ही तृप्त है । अगर प्रेम ने कुछ और माँगा तो वह प्रेम नहीं, कुछ और होगा—कामना होगी, वासना होगी, लोभ-मोह होगा । प्रेम तो बस प्रेम से तृप्त है । प्रेम के पार कोई गंतव्य नहीं है ।

...प्रतिक्षण बढ़ता है । जो प्रेम घटने लगे वह काम रहा होगा । काम प्रतिक्षण घटता है । काम का स्वरूप है : जब तक तुम्हें अपना काम-पात्र न मिले, बढ़ता हुआ मालूम होता है । तुम एक स्त्री को चाहते हो, वह न मिले तो कामवासना बढ़ती जाती है, उबलने लगती है, सौ डिग्री पर ज्वर चढ़ जाता है, भाप बनने लगते हो, सारा जीवन दाँव पे लगा मालूम पड़ता है; मिल जाए, उसी दिन से घटना शुरू हो जाती है ।

काम का लक्षण यह है : जब तक न मिले तब तक बढ़ता है; मिल जाए, घटता है । प्रेम का लक्षण यह है : जब तक न मिले तब तक तुम्हें पता ही नहीं कि बढ़ना क्या है; जब मिलता है तब बढ़ता है । प्रेमी पात्र जैसे ही मिलता है वैसे ही बढ़ता ही जाता है । प्रेम सदा दूज का चाँद है, पूर्णिमा का चाँद कभी होता ही नहीं; बढ़ता ही रहता है; ऐसी कोई घड़ी नहीं आती जब घटे । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रेम सतत वर्द्धमान है, सतत विकासमान है, सतत गतिमान है, कहीं ठहरता नहीं, प्रवाहरूप है ।

...'प्रतिक्षण बढ़ता है, विच्छेद-रहित है ।' डाइवोर्स, विच्छेद कभी होता ही नहीं । मिलन हुआ—सदा को हुआ । मिलन हुआ—शाश्वत हुआ । जब तक मिलन नहीं हुआ तब तक विच्छेद है । मिलन होते से फिर कोई विच्छेद नहीं है ।

...'सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है ।' प्रेम से ज्यादा सूक्ष्म और कुछ भी नहीं ।

वैज्ञानिक कहते हैं : परमाणु परम सूक्ष्म है ।

एक बड़ी अनूठी घटना इस सदी में घटी, इतिहास में आगे कभी उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन होगा । एक जर्मन विचारक था—विल्हेम रेक, वैज्ञानिक चिंतक—अनूठा चिंतक । जब अणु-ऊर्जा की खोज चल रही थी, तभी वह प्रेम-ऊर्जा की खोज में लगा था । उस ऊर्जा को उसने नाम दे रखा था—आर्गान, प्रेम-ऊर्जा । उसका कहना था कि अणु-ऊर्जा की खोज से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रेम की ऊर्जा की खोज है; क्योंकि अणु तो पदार्थ का टुकड़ा है, प्रेम हमारी आतमा का परम अंश है । स्वभावतः उसने

खतरा मोल लिया । जगह-जगह से उसे हटाया गया, जर्मनी से भगाया गया । जिस मुल्क में गया वहीं से हटाया गया । क्योंकि प्रेम के खोजी कहीं भी स्वीकृत नहीं हैं । सारा समाज घृणा पे जी रहा है, हिंसा पर जी रहा है । लोगों ने समझा, पागल है । अंततः उसे पागल करार दे के अमरीका में उसे पागलखाने में बंद भी रखा । वह पागलखाने में ही मरा । यद्यपि अल्बर्ट आइंसटीन ने उससे मुलाकात ली थी, और जब आइंसटीन को उसने अपना एक छोटा-सा आविष्कार बताया तो आइंसटीन चकित हो गया था । वह आविष्कार था, वह कहता था कि इस तरह के यंत्र बनाये जा सकते हैं जिनमें प्रेम-ऊर्जा संग्रहीत हो सके । और उसका कहना था कि विश्व में अणु की ऊर्जा से इतना विध्वंस होने के करीब है कि अगर हमने इसके समतुल प्रेम की ऊर्जा न बनाई तो पृथ्वी नष्ट हो जाएगी ।

तो उसने इस तरह के यंत्र बनाये थे । यंत्र कुछ विशेष न थे, कुछ विशिष्ट धातुओं से बनायी हुई पेटियाँ थीं । उन पेटियों के भीतर मनुष्य को अँधेरे में बिठा दिया जाता है, सब तरफ से बंद । कोई पन्द्रह-बीस मिनट शांत बैठने के बाद अचानक ऊर्जा का प्रवाह शुरू होता है, रोएँ-रोएँ में एक पुलक छा जाती है, एक लालिमा आ जाती है; बैठा हुआ साधक भीतर अनुभव करता है, कुछ घट रहा है; सारे शरीर में लहरें होने लगती हैं, जिसको योगियों ने कुंडलिनी कहा है, जिसको तांत्रिकों ने परम संभोग कहा है, वह घड़ी आ जाती है ।

जो उसने यंत्र बनाया है वह बड़ा सीधा-सरल है । उसमें ऐसी धातुओं का उपयोग किया है जिनसे ऊर्जा भीतर तो आ सकती है, बाहर नहीं जा सकती । ऊर्जा-संवर्धक धातुओं का उपयोग किया है, जिनसे ऊर्जा भीतर की तरफ तो आ जाती है, लेकिन बाहर की तरफ नहीं जा सकती । तो वह पेटी चारों तरफ से ऊर्जा को भीतर खींचती है और भीतर बैठे व्यक्ति के ऊपर बरसाने लगती है ।

वस्तुतः तीस-चालीस मिनट तक अँधेरे में बैठना ध्यान का एक प्रयोग है । और ध्यान की अवस्था में पेटी की भी कोई ज़रूरत नहीं, संसार की जीवन-ऊर्जा तुम पर बरसने लगती है । यह तो भक्तों का बहुत प्राचीन अनुभव है । कहीं कोई ज़रूरत नहीं है । कहीं भी तुम बैठ जाओ शांत हो कर । प्रेम के लिए द्वार खुला हो, प्रतीक्षा हो—तुम अचानक पाओगे थोड़ी देर के बाद : जैसे-जैसे तुम्हारा मन शांत होने लगता है, वैसे ही वैसे तरंगें उठने लगती हैं अलौकिक की, तुम पुलकित होने लगते हो—किसी लहर पर सवार हो गये, चले किसी दूर की यात्रा पर ! यह तो ध्यान का पुराना प्रयोग है ।

लेकिन विल्हेम रेक को पागल करार दे दिया । उसकी पेटियों को जालसाजी करार दे दिया । जालसाजी करार देना आसान हुआ, क्योंकि कोई प्रमाण क्या है कि इनके भीतर ऐसा होता है ? यह प्रेम की ऊर्जा को तोलने का थर्मामीटर कहाँ है ? इनके भीतर बैठे हुए व्यक्ति कहते हैं, लेकिन क्या पक्का सबूत है कि इन्होंने

भ्रम नहीं कर लिया खुद ही खड़ा, तीस मिनट चुपचाप बैठे रह के कोई भ्रम खड़ा नहीं कर लिया, आत्मसम्मोहन नहीं कर लिया ? इनकी बात का भरोसा क्या है ? वैज्ञानिक बुद्धि तो कहती है, प्रमाण चाहिए ठोस । व्यक्ति क्या कहते हैं, यह कोई प्रमाण थोड़े ही है । ठोस प्रमाण चाहिए यंत्र के द्वारा ।

अनेक लोगों ने उसकी पेटियों में बैठ के अनुभव किया, लेकिन वह प्रमाण नहीं । उसने अनेक बीमारों को ठीक किया उन पेटियों के भीतर, क्योंकि वह कहता है, प्रेम की ऊर्जा रोग से मुक्त करवा देती है, स्वास्थ्य लाती है । पर उसकी कोई सुन न सका । वह भक्ति का और प्रेम का बड़ा अनूठा प्रयोग कर रहा था ।

भक्त सदा से ही इस प्रयोग को करते रहे हैं । वे कहते हैं, तुम्हें चारों तरफ से प्रेम न घेरा हुआ है । वही परमात्मा है । तुम ज़रा शांत हो के बैठो । तुम ज़रा मगन हो के बैठो । तुम ज़रा चिंता-रहित हो के बैठो । तुम ज़रा द्वार खोल के, ग्राहक हो के बैठो । स्वीकार करने की तैयारी से बैठो, और वह बरसने लगेगा । इसी ग्राहकता और स्वीकृति का पुराना नाम प्रार्थना है । प्रार्थना का कुछ और अर्थ नहीं होता । उसका यह मतलब नहीं कि तुम बड़ा शोरगुल मचाओ, चिल्लाओ परमात्मा को । उस सबसे कोई अर्थ नहीं है । हृदय खुला हो, तुमने पात्र उसके सामने कर दिया है, तुम प्रतीक्षारत, धैर्य, शांति से बैठे हो—आयेगा ! इस आस्था, श्रद्धा से उतरेगा । उतरता है । उतरा ही हुआ है, तुम्हारा संबंध भर जोड़ने की बात है ।

...'विच्छेद-रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, अनुभवस्वरूप है ।'

लेकिन जीवन को तुमने जिस ढांचे में ढाला है, वह प्रेम के विपरीत है । और तुम्हारे तथाकथित धार्मिक तुम्हें प्रेम के विपरीत ही शिक्षण देते रहते हैं ।

सुनो—

जिन नयनों का प्रेम-निमंत्रण
तुमने था ठुकराया
उन नयनों में, सजल स्नेहमय
एक नयन था मेरा ।

किसी दिन परमात्मा तुमसे कहेगा—

जिन नयनों का प्रेम-निमंत्रण
तुमने था ठुकराया
उन नयनों में, सजल स्नेहमय
एक नयन था मेरा ।
तुम समाधि के भ्रम में खोये
मुझे नहीं पहचाना
यह असंग यदि ताना है तो
संग उसी का बाना

जिन सुमनों का विनत समर्पण
तुमको नहीं सुहाया
उन सुमनों में मदिर सुरभिमय
एक सुमन था मेरा ।
दिव्य गंध को मात्र वासना
कह कर तुमने टाला
बना सहज को सूली
ऋत का पथ विकृत कर डाला
जिन सपनों का सुरधनु जीवन
तुम्हें लगा छल छाया
उन सपनों में रुचिर रंगमय
एक सपन था मेरा ।
तुम अभंग के पीछे भूले
भंगुर की गुरु गरिमा
रटा-रटाया ज्ञान बन गया
चेतन की जड़ सीमा
जिन रत्नों का मंगल कंकण
फेंका कह कर माया
उन रत्नों में ज्योतित चिन्मय
एक रत्न था मेरा ।

इस संसार में, परमात्मा सभी जगह समाविष्ट है । फूल से भी उसी ने पुकारा है, ठुकरा के पीठ फेर के चले मत जाना, अन्यथा किसी दिन पछताओगे । जहाँ से भी तुम्हें आकर्षण मिला है, उस आकर्षण में उसका ही आकर्षण छिपा है । तुमने व्याख्या गलत कर ली होगी । तुम्हारे पंडितों ने तुम्हें कुछ और समझा दिया होगा, भरमा दिया होगा । तुमने माया, छाया, छल, भ्रम कह के पीठ फेर ली होगी । लेकिन वही है । माया भी अगर है तो उसी की है और अगर छाया भी है तो उसी की है और अगर भ्रम है तो उसने ही दिया है, स्वीकार योग्य है ।

भक्त का अर्थ है : जिसने उसे उसकी सर्वांगीणता में स्वीकार किया; जो कहता है, 'हम चुनाव न करेंगे । हम कौन ? हम कैसे जानेंगे कि तू कौन है और तू कौन नहीं है ? हम कहाँ रेखा खींचें ?'

जड़ और चेतन की रेखा सब आदमी की खींची हुई है । ऐसा कोई जड़ नहीं है जिसमें चेतन न छिपा हो और ऐसा कोई चेतन नहीं है जो जड़ में आविष्ठ न हो, जड़ में जिसने घर न बनाया हो । चट्टान से चट्टान में भी वही सोया है । चैतन्य से चैतन्य में भी वही जागा है ।

ऐसा अगर तुम्हारे जीवन का दृष्टिकोण हो तो तुम प्रेम के लिए तैयार बनोगे, पात्र बनोगे।

'इस प्रेम को पा कर प्रेमी प्रेमी को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है, प्रेम का ही चिंतन करता है, प्रेम ही प्रेम, प्रेममय हो जाता है।'

फिर वृक्ष नहीं दिखायी पड़ते—वही वृक्षों की हरियाली में दिखायी पड़ता है! फिर पक्षी नहीं गीत गाते—वही गाता है; पक्षियों के कंठ उधार लेता है। उसके पास बहुत गीत हैं—बहुत कण्ठों की ज़रूरत है! उसके पास बहुत रंग हैं—इन्द्रधनुषों की ज़रूरत है। उसके पास बहुत रूप हैं, बहुत आकृतियाँ बनती हैं, तो भी चुकता नहीं है।

उपनिषद कहते हैं, पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। इतना विराट अस्तित्व बनता है, बिखरता है; सृष्टि होती है, प्रलय होती है—लेकिन उसकी क्षमता में कोई कमी नहीं आती।

'इस प्रेम को पा कर प्रेमी प्रेमी को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है, प्रेम का ही चिंतन करता है।'

सबको हम भूल गये जोशो-जुनूं में लेकिन
इक तिरी याद थी ऐसी जो भुलायी न गयी।

प्रेमी पागल हो जाता है, जुनून में आ जाता है, सब भूल जाता है—'इक तिरी याद थी ऐसी जो भुलायी न गयी!' बस एक बात नहीं भूलती। स्वयं को भी भूल जाता है। बस एक बात भुलायी नहीं भूलती—उस प्रेमी की याद भुलाये नहीं भूलती।

'भक्ति गुण-भेद से तीन प्रकार की होती है, उनमें उत्तर-उत्तर क्रम से पूर्व-पूर्व क्रम की भक्ति कल्याणकारिणी होती है।'

ऐसे तो भक्ति एक है। भक्ति यानी प्रेम; ऊर्ध्वमुखी प्रेम। भक्ति यानी दो व्यक्तियों के बीच का प्रेम नहीं, व्यक्ति और समष्टि के बीच का प्रेम। भक्ति यानी सर्व के साथ प्रेम में गिर जाना। भक्ति यानी सर्व को आलिंगन करने की चेष्टा। और भक्ति यानी सर्व को आमंत्रण, कि मुझे आलिंगन कर ले!

भक्ति तो मूलतः एक है, लेकिन व्यक्तियों के भेद से तीन प्रकार की हो जाती है, उनकी हम आगे के सूत्रों में व्याख्या करेंगे।

आज इतना ही।

दिनांक १४ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना
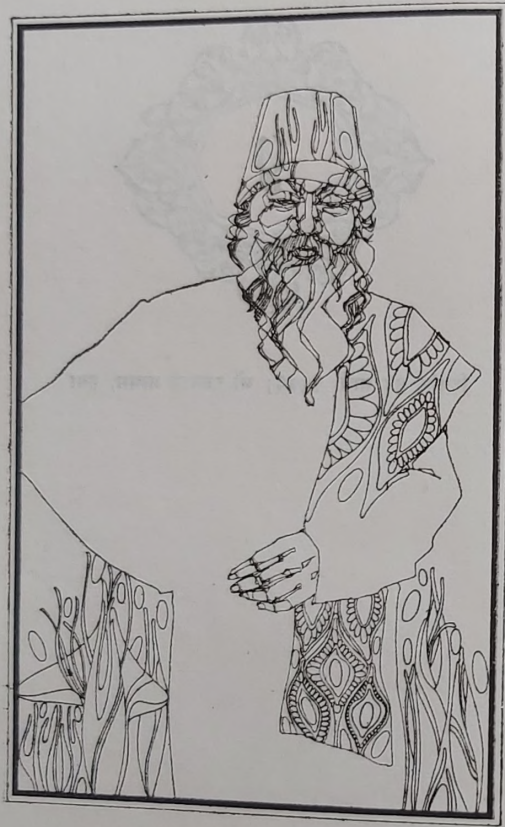
प्रश्न-सार

भगवान ! सामर्थ्य तो कुछ है नहीं और प्यास उठी अनंत की। मिलन होगा ?

क्या प्रेम और मृत्यु के बीच कोई आंतरिक संबंध है ?

बहुतेरे आपके संन्यासी ध्यान नहीं करते; कहते हैं, समझ काफी है। क्या उनकी यह समझ काफी है ?

भगवान ! मैं आपसे संन्यस्त नहीं हुआ; फिर भी क्या आप मृत्यु के क्षण में मुझे धक्का देने आएँगे ?

कब किस घड़ी में संन्यासी शिष्य के भीतर से अपेक्षा का भाव गिर जाता है ?

असहाय हृदय की आह है प्रार्थना

पहला प्रश्न : भगवान ! सामर्थ्य तो कुछ है नहीं और प्यास उठी अनंत की ! चल पड़ी हूँ डगमगाती, क्या मिलन होगा नहीं ?.

पूछा है वृद्ध संन्यासिनी सीता ने ।

पहली बात : सामर्थ्य से कोई कभी परमात्मा से मिला नहीं । सामर्थ्य तो अकड़ है। सामर्थ्य ही तो बाधा है । सामर्थ्य यानी अहंकार । सामर्थ्य यानी दावा । दावे से कभी कोई मिला है ? दावे में कभी प्रेम पाया ? दावेदार तो हार ही गया; पहले ही कदम पे मंजिल चूक गयी ।

अगर पता है कि सामर्थ्य नहीं है तो मिलन निश्चित है । असहाय अवस्था में होता है मिलन—जहाँ तुम्हें लगता है, मेरे किये कुछ भी न होगा; जहाँ तुम्हारी हार पूरी-पूरी है; जहाँ तुम्हें लगता है, मेरे किये होगा कैसे; जहाँ तुम्हारा अहंकार सब भाँति धूल-धूसरित हो के गिर पड़ा है; जहाँ तुम्हें अपनी तरफ से श्वास लेने की भी सामर्थ्य न रही; यात्रा दूर की बात, जहाँ उठते भी नहीं बनता; जहाँ पैर भी उठाना चाहो तो नहीं उठता । जहाँ ऐसा असहाय भाव तुम्हें घेर लेता है, वहीं प्रार्थना का जन्म होता है।

प्रार्थना असहाय हृदय की आह है ।

परम असामर्थ्य में ही प्रभु को पाने की सामर्थ्य है ।

असहाय भाव को गहरा होने दो !

परमात्मा को कोई जीत के थोड़े ही जीतता है—हार के जीतता है । वहाँ हार ही विजय है । वहाँ जो अकड़ के गया, उसने अपने ही हाथ अपनी गर्दन काट ली । वहाँ जो गर्दन काट के गया, पहुँच ही गया ।

पूछा है : 'सामर्थ्य तो कुछ है नहीं और प्यास उठी अनंत की ।'

यह भाव शुभ है ।

अनंत की प्यास के उठने के लिए अनंत को पाने की सामर्थ्य थोड़े ही चाहिए । जो सामर्थ्य में आ जाए वह तो अनंत होगा भी नहीं । सामर्थ्य की सीमा में जो समा जाए, वह सान्त ही होगा, अनंत नहीं; उसकी सीमा होगी, असीम नहीं ।

प्यास तुमसे बड़ी है । प्यास इतनी बड़ी है कि तुम उसे अपने भीतर समा न पाओगे, तुम उसमें समा जाओगे । तभी प्यास अनंत की प्यास है । अनंत की प्यास भी अनंत ही है । और परमात्मा को पाने के लिए प्यास काफी है । इससे ज्यादा कुछ भी नहीं चाहिए । यही भक्ति का सार-सूत्र है ।

योग कहता है, प्यास चाहिए – कुछ और भी चाहिए । भक्ति कहती है, प्यास बस काफी है । बस प्यास चाहिए—इतनी प्यास चाहिए कि तुम प्यास में खो जाओ; तुम प्यास हो जाओ; तुम्हारे भीतर कुछ भी न बचे प्यास के अतिरिक्त; बिलखती-रोती प्यास बचे; शून्य में टकराती, उभरती प्यास बचे; तुम्हें पता ही न चले कि तुम हो । और प्यास ही परमात्मा बन जाती है ।

अनंत प्यास अनंत का ही भाग है । और अनंत प्यास को जिसने पा लिया, दूर नहीं है, पहुँच ही गया ।

स्वभावतः मन को बड़ा डर लगता है : सामर्थ्य तो बड़ी कम है, न के बराबर है; इतने बड़े को पाना चाहा है, परमात्मा को पाना चाहा है ! सिर्फ अहंकारी को इसमें कोई भूल नहीं दिखायी पड़ती ।

मेरे पास दोनों तरह के लोग आ जाते हैं । अहंकारी कहता है, 'क्या करूँ जिससे परमात्मा को पा लूं ?' जोर उसका करने पर है । जैसे परमात्मा भी उसके कृत्य का फल होगा ! जैसे परमात्मा भी उसकी व्यवस्था में फँसेगा ! जाल फेंकना है, मछली फँसेगी—कैसे जाल फेंकूं ! निश्चित ही जाल फेंकने वाला मछली से बड़ा है । निश्चित ही जाल मछली से बड़ा है । मछली असहाय, फँसेगी ।

अगर तुम परमात्मा की तरफ मछुए की तरह गये हो तो भूल हो गयी—तुम परमात्मा की तरफ गये ही नहीं, परमात्मा ने तुम्हें पुकारा ही नहीं, उसकी प्यास उठी ही नहीं ।

एक दूसरे तरह का खोजी है—असली खोजी ! वह कहता है कि मेरे किये कुछ भी नहीं होता ! मैं तो हार गया ! क्या फिर भी वह मुझे मिलेगा ? उसके पैर डगमगाते हैं । जाल फेंकने की बात दूर रही, उसे अपने अहंकार पर जरा भी भरोसा नहीं है कि मेरे किये कुछ होगा ।

जिस क्षण अहंकार पर भरोसा नहीं होता उसी क्षण अहंकार की मौत होनी शुरू हो गयी ।

तुम्हें अपने पे बहुत ज्यादा भरोसा है—वही तुम्हारा अपराध है । वही पाप है । जिस क्षण तुम्हें अपने पे भरोसा हट जाएगा और तुम देख पाओगे कि मेरे किये क्या होगा ! इतनी छोटी सीमा है मेरी, मेरे जाल क्या हैं ? किसको फाँसने चला हूँ ? विराट को ! अनंत को ! जिस दिन तुम जाल फेंक दोगे, असहाय गिर पड़ोगे पृथ्वी पर, आँखें आँसुओं से भरी होंगी—मंजिल पूरी हो गयी ! यह मंजिल कुछ ऐसी नहीं

है कि चल के जाना पड़ता है; यह मंजिल कुछ ऐसी है कि तुम गिरो कि पास आ जाती है !

'सामर्थ्य तो कुछ भी नहीं है और प्यास उठी अनंत की !

चल पड़ी हूँ डगमगाती, क्या मिलन होगा नहीं ?'

भक्त सदा कँपता रहता है। इसलिए नहीं कि शक है कि परमात्मा है या नहीं–नहीं वैसा तो कोई सन्देह नहीं है–सन्देह यह है कि मेरी कोई योग्यता है या नहीं !

इस भेद को समझना।

अहंकारी चलता है, अगर परमात्मा न फँसे उसके जाल में तो सोचता है, होगा ही नहीं। अहंकारी यात्रा करता है, व्यवस्था करता है, आयोजन जुटाता है, अगर परमात्मा नहीं पास आता लगता है तो सोचता है, है ही नहीं, आएगा कहाँ से ! निरहंकारी के परमात्मा पास आता हुआ नहीं लगता, तो यह सवाल नहीं उठता कि परमात्मा नहीं है–यही सवाल उठता है कि मैं बहुत छोटा हूँ, पात्र नहीं हूँ; मैं बहुत सीमित हूँ; मैंने ज़रूरत से ज्यादा की माँग कर ली है; मैं ऐसी पुकार को सुन लिया जहाँ तक उठ पाना मेरे सामर्थ्य में नहीं है।

लेकिन यहीं समझने की बात है।

तुम्हारे गिरने में ही उसका अवतरण है। तुम्हारे मिटने में ही उसका होना है। परमात्मा मिला ही हुआ है–तुम गिरो तो ! यह मंजिल दूर नहीं है। तुम्हारे और परमात्मा के बीच फासला नहीं है। अगर कोई फासला है तो वह तुम्हारे दम्भ का है और अहंकार का है।

बच्चन की कुछ पंक्तियाँ हैं... बहुत प्यारी हैं :

तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा
एक सुरभित साँस आती थी कहीं से
धूल से, वनफूल से, नभतारकों से
चाँद-सूरज से, गगन-अन्तःकरण से
या कि मेरी ही शिराओं से, रगों से ?
इत्र की कुछ शीशियों को खोलते ही
मूँदते ही उम्र मेरी कट गयी है।
तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा !
एक झिलमिल जोत आती थी कहीं से
सरवरों, नद-निर्झरों, सागरों से
बादलों से, बिजलियों की पायलों से
या कि मेरे ही दृगों के दायरों से ?

मृतिका के कुछ दियों को जलाते
ओ' बुझाते उम्र मेरी कट गयी है।
एक हीरक से हृदय में तुम जड़े थे
और मैंने ही न देखा !
तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा
एक अस्फुट गूंज आती थी कहीं से
मधुकरों से, वनविहंगों के परों से
घन-पवन से, पावसी रिमझिम झरन से
या कि मेरे आँसुओं के सीकरों से ?
छंद की बहु शृंखलाओं को जोड़ते ही,
तोड़ते ही उम्र मेरी कट गयी है
किन्तु ढाई अक्षरों में मुक्ति का गुरु-
मंत्र अभिमत गुनगुनाते तुम पड़े थे
और मैंने ही न देखा !
तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा !

ढाई अक्षरों में – बस प्रेम के ढाई अक्षरों में सारा शास्त्र है भक्ति का !

तुम छोड़ो फिक्र परमात्मा की ! आए न आए, छोड़ो उत्तरदायित्व उसी पर ! प्यास के अतिरिक्त हमारी सामर्थ्य क्या है ? पुकार के अतिरिक्त हम क्या कर सकेंगे ? सुने न सुने, जुम्मेवारी उसकी है। तुम पुकारो भर हृदय से ! तुम आँसुओं में कंजूसी मत करना ! तुम रोने में रुकावट मत डालना ! तुम्हारी प्रार्थना इधर पूरी हुई कि तुम अचानक पाओगे : परमात्मा दूर न था, तुममें ही छिपा था। आँसू आँखों को साफ कर गये – दिखाई पड़ने लगा। प्रार्थना हृदय को झकझोर गयी, धूल को उड़ा गयी–अनुभव होने लगा।

तुम्हारा होना परमात्मा के होने का हिस्सा है; इसलिए तो प्यास है। अनजान की, अपरिचित की, अज्ञेय की तो प्यास भी कैसे होगी ? जिसने कभी तुम्हारे कंठ को छुआ ही न हो उसकी आकाँक्षा भी कैसे जगेगी ? कहीं किसी गहरे तल पर उसने तुम्हारे कंठ को छू ही लिया है। जिसे हमने जाना ही न हो कभी, जाने-अनजाने, सोये-जागे जिसे हमने पहचाना ही न हो कभी, उसकी पुकार भी कैसे उठेगी ? तुम उस हीरे को खोजने कैसे निकल पड़ोगे, जिस हीरे की झलक ने तुम्हें आकर्षित न कर लिया हो ?

इजिप्त के सूफी कहते हैं, तुम खोजने तभी निकलते हो जब वह तुमसे पहले तुम्हें खोजने चल पड़ा होता है। तुम उसे पुकारते तभी हो जब उसने तुम्हें पुकार ही

लिया होता है; अन्यथा तुम कैसे पुकारोगे ?

उनका वक्तव्य बिलकुल सही है। वे कहते हैं, परमात्मा तुम्हें जब चुन लेता है, तभी तुम उसे चुनते हो, उसके पहले तुम चुन ही न सकोगे।

तो मैं सीता को कहूँगा, चली चल—डगमगाते सही ! और चलने का कोई ढंग ही नहीं है, डगमगाते ही चला जा सकता हैं। राह बड़ी विराट है ! आकाश बहुत बड़ा है, पंख हमारे पास बहुत छोटे हैं। लेकिन दो छोटे-से पंखों से भी तो आकाश पार हुआ जाता है। कोई आकाश जैसे बड़े पंख थोड़े ही चाहिए; इतने बड़े पंख होते तो उड़ना ही मुश्किल हो जाता। आकाश होगा विराट, हमारे पास पंख छोटे सही, हर्ज क्या है !

लाओत्सु ने कहा है, एक-एक कदम से हज़ारों मील का रास्ता पार हो जाता है। कदम बड़े छोटे हैं। अगर कोई गणितज्ञ बैठ जाए, हिसाब लगाने लगे—हज़ारों मील का रास्ता है, एक-एक कदम उठता है एक बार में—घबड़ा जाएगा, छाती बैठ जाएगी, हिम्मत ही टूट जाएगी ! पर हम जानते हैं, एक-एक कदम से हजारों मील का रास्ता पूरा हो जाता है, और एक-एक बूंद से सागर भर जाता है। फिर चिन्ता क्या !

भक्त को चिन्ता नहीं है। यही तो भक्ति का चमत्कार है। ज्ञानी चिंतित है। योगी चिंतित है। क्योंकि इन्तजाम बिठाना है, भार अपना है। भक्त निश्चित है। भक्त कहता है, 'हमने पुकार दिया, अब तुम सुन लो ! न सुनो, तुम जानो !' अखीर में, भक्त यह कह रहा है कि अगर तुम न मिले तो तुम्हीं जानो, जुम्मेवारी तुम्हारी है। मिल गये तो तुम्हारी कृपा, न मिले तो कसूर तुम्हारा है; हम कर भी क्या सकते थे ? पुकार दिया था !

छोटा बच्चा है। पड़ा है अपने झूले में। चिल्ला रहा है। रो रहा है माँ के लिए! क्या करेगा और ? आ जाए, माँ की अनुकंपा है; न आए, कठोरता है। लेकिन सारा जुम्मा माँ का है। आए तो भी, उसका प्रसाद ! न आए, तो भी उसकी कठोरता। उस छोटे रोते बच्चे का अपना क्या है, दावा क्या है ?

भक्ति की महिमा है कि सब छोड़ दिया परमात्मा पर। भक्त चुपचाप जिये चला जाता है, जैसे वह जिलाता है। और भक्त डगमगाते-डगमगाते भी पहुँच जाता है; और ज्ञानी बड़ी मजबूती से पैर रखते हैं और कहीं नहीं पहुँच पाते। यह रास्ता मजबूरी से पैर रखने का नहीं है। यहाँ डगमगाने वाले पहुँचते हैं।

दूसरा प्रश्न : आप जब भी प्रेम का गीत गाते हैं तब मृत्यु की महिमा भी बताते हैं, मृत्यु की महिमा बताने से भी नहीं चूकते। क्या प्रेम और मृत्यु के बीच कोई आन्तरिक संबंध है ?

संबंध ही नहीं, प्रेम और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक ही घटना के

दो नाम हैं; एक ही चीज को देखने के दो ढंग हैं, दो दृष्टियाँ हैं। बहुत मुश्किल होगा तुम्हें यह समझना, क्योंकि तुमने तो अक्सर उलटा माना है। तुम तो मृत्यु से बचने को प्रेम की शरण में गये हो। तुमने तो मृत्यु से बचने के लिए प्रेम की सुरक्षा माँगी है—और प्रेम मृत्यु का ही रूप है। और तुमने तो प्रेम की बहुत माँग की है, लेकिन फिर भी तुम मृत्यु की गोद में जाने से डरे हो। और मृत्यु तो प्रेम की ही गोद है। इसलिए तो तुम्हारे जीवन में प्रेम की माँग बहुत है, प्रेम की वर्षा कभी नहीं होती। चीखते हो, चिल्लाते हो, रोते हो, बुलाते हो, खोजते हो—लेकिन कहीं तुम्हारे भीतर ऐसा विरोधाभास है कि प्रेम की तुम बात तो करते हो, लेकिन घटने नहीं देते।

गौर से देखना अपने प्रेम को तो तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाएगी : तुम प्रेम माँगते भी हो और प्रेम से डरते भी हो। तुमने बहुत गहरे में झाँका ? प्रेम का बड़ा गहरा भय है ! तुम भयभीत हो प्रेम से। ऊपर-ऊपर माँगते भी हो, भीतर-भीतर डरे भी हो, भागे हुए भी हो। ऊपर-ऊपर प्रेम की तरफ चलते हो, भीतर-भीतर किसी विपरीत दिशा में कदम रखते हो। एक कदम प्रेम की तरफ उठाते हो तो एक कदम प्रेम के विपरीत तत्क्षण उठा लेते हो।

प्रेम में खतरा मालूम होता है। खतरा है। मैं नहीं कहता कि खतरा नहीं है। बड़ा खतरा है। प्रेम से बड़ा कोई खतरा ही नहीं है। क्योंकि प्रेम का अर्थ है : तुम्हें मिटना होगा। प्रेम का अर्थ है : तुम तुम ही न रह जाओगे; तुम वही न रह जाओगे जो प्रेम करने के पहले थे; वह तुम्हारी इकाई, वह अकड़, वह अस्मिता डूबेगी, गलेगी, जलेगी, राख होगी। तुम्हारे राख हो जाने से ही तो प्रेम का फूल खिलेगा। इसलिए तो भय है।

हम प्रेम की बातें करते हैं, प्रेम के गीत भी गाते हैं। प्रेम की कहानियाँ पढ़ते हैं, कहानियाँ कहते हैं—ये सब तरकीबें हैं प्रेम से बचने की।

प्रेम का बड़ा प्रगाढ़ भय है। मनस्विदों से पूछो। वे कहते हैं कि प्रेम का बड़ा प्रगाढ़ भय हैं। हम प्रेमी से दूर-दूर रहते हैं, फासला बना के रहते हैं। इतने करीब नहीं आते कि सीमाएँ मिल जाएँ और खो जाएँ। इतने पास आने में बड़ा भय लगता है कि फिर लौट सकें न लौट सकें। इसलिए तो हमने बहुत तरह के इंतजाम कर लिये हैं प्रेम के विपरीत। विवाह भी प्रेम के विपरीत एक इन्तजाम है, ताकि प्रेम करना न पड़े। तो जा के विवाह कर लाते हैं एक स्त्री को या एक पुरुष से विवाह कर लेते हैं। विवाह एक आयोजन है। माँ-बाप कर लेते हैं इन्तजाम। जिनका हो रहा है विवाह, उनसे तो पूछने की ज़रूरत ही नहीं होती। ज्योतिषी से पूछते हैं जिसका कोई लेना-देना नहीं है। और सब बातों का इन्तजाम कर लेते हैं जिनका प्रेम से कोई संबंध नहीं है, कि कुलीन घर है, कि सम्पन्न घर है, सुसंस्कृत लोग हैं, जाति-धर्म-कुल क्या है—यह सब पता कर लेते हैं। इससे प्रेम का कोई भी लेना-देना नहीं है। न तो प्रेम जाति को जानता, न कुल को जानता, न कुलीनता को जानता, न धन को जानता। प्रेम

का धन से सम्बंध क्या है ? न रंग को जानता । हड्डी-माँस-मज्जा से प्रेम का सम्बंध क्या है ? तुम हिन्दू हो कि मुसलमान कि जैन कि ईसाई, प्रेम को लेना-देना क्या है ?

लेकिन हमने विवाह का इन्तजाम किया है—सारी दुनिया में । यह इन्तजाम बड़ी कुशलता थी । यह इस बात की खबर है कि प्रेम का बड़ा भय है । इसलिए हमने बाल-विवाह किये, क्योंकि इसके पहले कि प्रेम अपना सिर उठाए, विवाह कर देना जरूरी है । अगर प्रेम एक बार सिर उठा ले तो फिर विवाह कठिन हो जाएगा । और एक बार प्रेम की धुन पकड़ जाए, दीवानगी आ जाए, तो विवाह बहुत रूखा-सूखा मालूम पड़ेगा । विवाह प्रेम से हो तो समझ में आता है; हमने उलटी व्यवस्था की : विवाह कर दो और प्रेम करो !

अब प्रेम के साथ एक नियम है कि हो तो हो, न हो तो किया नहीं जा सकता । हाँ, ढोंग कर सकते हो । दिखावा कर सकते हो । अपने को समझा लेते हो, दूसरे को समझा देते हो कि है, सब ठीक है । लेकिन प्रेम हो तो हो, न हो तो न हो ।

प्रेम ऐसी घटना है कि परमात्मा की तरफ से है, तुम्हारे हाथ में नहीं है ।

तीन घटनाएँ परमात्मा के हाथ में हैं—जन्म, प्रेम और मृत्यु । और बाकी घटनाओं का कोई मूल्य नहीं है जो तुम्हारे हाथ में हैं । तुम किस तरह की दुकान करते हो, किस दफ्तर में बैठते हो, किस राजनीतिक पार्टी के सदस्य हो—इन बातों का कोई मूल्य नहीं है । यह सब बीच का भरावा है । जीवन का सब महत्त्वपूर्ण परमात्मा के हाथ में है । परमात्मा यानी समग्र । व्यक्ति के हाथ में नहीं है, समष्टि के हाथ में है । होता है तो होता है ।

प्रेम, इसलिए मैं कहता हूँ, जन्म और मृत्यु का ही हिस्सा है । प्रेम एक मृत्यु है और एक जन्म भी—पुराना मरता है, नया आविर्भूत होता है; अहंकार गलता है, आत्मा का आविर्भाव होता है । तो हमने प्रेम के लिए इन्तजाम कर लिये हैं और धोखे कर दिये हैं । इसलिए दुनिया में इतने लोग प्रेम करते मालूम पड़ते हैं, लेकिन प्रेम की सुगंध कहाँ है ? जीवन तो दुर्गंध से भरा है घृणा की, युद्ध और रक्तपात, कलह और वैमनस्य । शत्रुता जीवन का आधार मालूम पड़ती है । तुम जीते ही हो लड़ने के लिए, जीते ही हो लड़ते हुए । प्रेम के गीत गाते हो—वे गीत शायद भ्रम हैं । शायद जीवन में जो नहीं मिला, गीत गा के अपने को समझा लेते हो । गीतों में भरोसा कर लेते हो ।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक अनूठी घटना घट सकती थी, वह घट नहीं पाती । लेकिन इसमें समाज का ही कसूर हो, ऐसा नहीं है—व्यक्ति डरा है, इसलिए समाज के हाथ में सूत्र दे दिया है । भय भीतर है । इसलिए मैं जब भी प्रेम की बात करता हूँ, मृत्यु की भी बात करता हूँ; और जब भी मृत्यु की बात करता हूँ तब प्रेम की भी बात करता हूँ । मेरे लिए दोनों एक ही ऊर्जा के ढंग हैं ।

तुम समझने की कोशिश करो ।

प्रेम में तुम्हारा होना डूबता है, वैसे ही जैसे मृत्यु में डूबता है । मृत्यु से थोड़ा ज्यादा ही डूबता है, कम नहीं । क्योंकि मृत्यु में शरीर तो मिट जाता है, मन नहीं मिटता, अहंकार नहीं मिटता; फिर नया जन्म हो जाता है, अहंकार का नयी यात्रा शुरू हो जाती है । सिर्फ वस्त्र बदल लिये जाते हैं मृत्यु में ।

प्रेम बड़ी मृत्यु है मृत्यु से—महामृत्यु है । शरीर तो वही रहता है, मन बदल जाता है, अहंकार गिर जाता है । तुम मिट जाते हो और किसी नये का जन्म होता है, जो तुमसे अपरिचित है, जिसे तुमने पहले कभी जाना ही न था । कोई और ही तुम में आविष्ठ हो जाता है । क्षण भर पहले और क्षण भर बाद में ज़मीन-आसमान का भेद हो जाता है । तुम्हारी आँख में किसी और ही ऊर्जा की लहर होती है । तुम्हारे पैर में किसी और ही नृत्य की गति होती है । तुम्हारे हृदय में किसी और ही गीत की गुनगुन होती है । क्षण भर पहले जहाँ रेगिस्तान था, क्षण भर बाद वहाँ अनंत-अनंत कमल खिल जाते हैं । यह क्षण में घटता है । यह क्रांति है । यह इतनी बड़ी क्रांति है कि तुम घबड़ाते हो । यह इतना बड़ा रूपान्तरण है कि तुम डरते हो । तुम भी चाहोगे, इसे अगर मात्रा-मात्रा में घटे, अगर कदम-कदम घटे, थोड़ा-थोड़ा घटे, होमियोपैथी की मात्रा में घटे । थोड़ा-थोड़ा करके घटे तो तुम भी सोचोगे चलो ठीक है । लेकिन यह है आकस्मिक । यह है क्रान्ति । इसका कोई क्रमिक हिसाब नहीं है, सीढ़ियाँ-सीढ़ियाँ नहीं घटता, विस्फोट है; इधर पुराना गया, इधर नये का आविर्भाव हुआ । और दोनों का कहीं मिलन नहीं होता ।

जो प्रेम के लिए तैयार है वह परमात्मा के लिए तैयार है ।

भक्ति का आधार प्रेम है । भक्ति का सन्देश सिर्फ इतना ही है कि अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम घटा; अगर तुमने प्रेम को घटने दिया, बाधा न डाली; अगर तुमने द्वार-दरवाजे बंद न किये भयभीत हो कर; और अगर तुमने प्रेम को आने दिया, तुमने स्वागत किया—तो ज्यादा देर न लगेगी, तुम प्रेम के पीछे ही परमात्मा की पगध्वनि सुनोगे, उसे आता हुआ पाओगे । परमात्मा की तुम्हें पूजा करनी पड़ती है, मंदिर-मस्जिद खोजने पड़ते हैं, क्योंकि तुम प्रेम से चूक गये हो । इसलिए तुम्हें नकली मंदिर बनाना पड़ता है, नकली मस्जिद बनानी पड़ती है; नहीं तो प्रेम असली मंदिर है, असली मस्जिद है । प्रेम ही गुरुद्वारा है । बाकी तो सब तरकीबें हैं । असली से चूक गये हो तो नकली को बना लेते हो । मन को समझाते हो, बुझाते हो, सांत्वना करते हो ।

प्रेम मिटायेगा । प्रेम तुम्हें निखारेगा । प्रेम तुम्हें जलायेगा अग्नि की तरह । प्रेम की बड़ी पीड़ा है और बड़ा आनंद भी । प्रेम ठीक मृत्यु जैसा है—लेकिन सिर्फ मृत्यु जैसा नहीं, जीवन जैसा भी है : एक छोर पर मृत्यु घटती है, दूसरे छोर पर जीवन घटता है; इधर पुराना मरा, उधर नया जन्मा; इधर रात गयी, सुबह हुई; इधर तारे ढले, उधर सूरज निकला; एक द्वार बंद हुआ, दूसरा खुला ।

तो तुम प्रेम के लिए सोचते मत रहो—द्वार-दरवाजे खोलो ! भयभीत किससे हो ? यह शरीर तो जाएगा। तुम इसे बचा के भी रखो तो भी जाएगा। यह अहंकार धूल-धूसरित होगा। यह खोपड़ी गिरेगी मिट्टी में। यह तो मरघट बनने ही वाला है। तुम बचा किसके लिए रहे हो ? तुम सम्हाल किसके लिए रहे हो ? यह कृपणता कैसी ? इसके पहले कि सब छीन लिया जाए, बाँट दो ! फिर तुमसे कोई छीन न सकेगा। इसके पहले कि तुम मिटो, मिट जाओ ! फिर तुम्हें कोई मिटा न सकेगा। इसके पहले कि मौत तुम्हारे द्वार पे दस्तक दे, तुम प्रेम का आमंत्रण स्वीकार कर लो ! फिर तुम्हारी कोई मौत नहीं है।

अब मैं तुमसे एक विरोधाभासी बात कहूँ। मैं कहता हूँ, प्रेम मृत्यु है; और मैं तुमसे यह भी कहना चाहूँगा कि प्रेम में ही पता चलता है अमृत का। प्रेम में ही पता चलता है कि कुछ है तुम्हारे भीतर जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। मर के ही पता चलता है अमृत का। कूड़ा-कर्कट जल जाता है, सोना बच जाता है। जो मर सकता था, मर जाता है। जो नहीं मर सकता, जो अविनाशी है, उसका साक्षात्कार हो जाता है।

मनुष्य ने अपने भय के आधार पर प्रतीक चुने हैं। इसलिए आमतौर से तुम्हें लोग प्रेम के साथ मृत्यु का संबंध जोड़ते हुए नहीं दिखायी पड़ेंगे। क्योंकि मृत्यु से तो तुम भयभीत हो और तुम सोचते हो प्रेम को तुम चाहते हो। मैं तुमसे कहता हूँ : जो प्रेम को चाहता है वह मृत्यु को भी चाहता है। क्योंकि जिसने प्रेम को जाना या चाहा, उसने मृत्यु का सुख भी जाना, मृत्यु का रस भी जाना। क्योंकि मृत्यु में ही अमृत का आविर्भाव है।

तुम मौत से भयभीत हो, इसलिए तुम प्रेम से भी भयभीत हो। तुम्हारी सारी चिंतन की व्यवस्था तुम्हारे भय को प्रतिबिंबित करती है। जैसे शास्त्रों में लिखा है, परमात्मा प्रकाश है; क्योंकि आदमी अंधकार से डरा हुआ है। परमात्मा दोनों है, अन्यथा अंधकार होगा कैसे ? लेकिन सब शास्त्र कहते हैं—कुरान, उपनिषद, वेद—परमात्मा प्रकाश है। फिर अंधकार, फिर रात किसकी ? फिर रात का राजा कौन ? तब फिर शैतान को गढ़ना पड़ता है, क्योंकि रात का भी कोई राजा होना चाहिए। फिर अँधेरे का एक मालिक बनाना पड़ता है, क्योंकि अँधेरे की भी तो व्यवस्था जमानी होगी। अँधेरे का साम्राज्य किसका है ?—परमात्मा का ही है। तुम्हारे भय के कारण उपद्रव खड़ा कर रहे हो।

तुम्हारे भय ने परमात्मा को भी दो में बाँट दिया। भय तुम्हें ही नहीं बाँट रहा है, तुम्हारे परमात्मा तक को विभाजित कर देता है। तुम कहते हो, दिन उसका। रात ? रात से तुम डरे हो ! अँधेरा तुम्हें घबड़ाता है। इस घबड़ाहट के कारण तुम जीवन के बहुत-से राज न जान पाओगे, क्योंकि बहुत-से राज अँधेरे में छिपे हैं। तुम शांत न हो सकोगे, क्योंकि शांति का स्वभाव अँधेरे जैसा है, प्रकाश जैसा नहीं।

अब तुम्हें बड़ी कठिनाई होगी।

शांति अंधकार जैसी है, क्योंकि शांति विराम है, विश्राम है। समाधि, पतंजलि ने कहा है, निद्रा जैसी है। तो निश्चित ही शांति अंधकार जैसी होगी, रात्रि जैसी होगी। प्रकाश में उत्तेजना है, यह तो तुमने अनुभव किया ही है। इसलिए तो अगर तुम सो रहे हो और बहुत बड़े-बड़े प्रकाश के बल्ब लगा दिये जाएँ तो सो न सकोगे; प्रकाश तुम्हारी आँखों को उत्तेजित रखेगा, तना हुआ रखेगा, विश्राम न लेने देगा। इसलिए तो दिन में सोना मुश्किल है। इसलिए तो सारी प्रकृति रात में सोती है।

विश्राम के लिए अंधकार चाहिए। प्रकाश में एक तनाव है। अगर तुम प्रकाश ही प्रकाश में रहो, जल्दी पागल हो जाओगे। ज़रा सोचो, एक महीने सो न सको—बहुत लम्बा कह रहा हूँ, तीन दिन में ही विक्षिप्त होने की हालत आनी शुरू हो जाती है। तीन दिन अगर ज़रा भी नींद न आ सके, तो बस सब रुग्ण होना शुरू हो जाता है। अँधेरा रोज-रोज चाहिए। अँधेरा भोजन है।

यह बड़े मजे की बात है कि तीन दिन तुम सो सकते हो, कोई खास नुकसान न होगा; लेकिन तीन दिन अगर जागे तो नुकसान हो जाएगा।

मैं एक महिला को देखने गया। वह नौ महीने से बहोश है। सो रही है ! पागल नहीं हो गयी है। चिकित्सक कहते हैं, जग भी सकती है, न भी जगे। जग सकती है, क्योंकि मैंने एक घटना सुनी है कि अमरीका में एक महिला बारह साल तक सोयी रही, बारह साल के बाद जगी। बिलकुल ठीक, ताजी ! जैसी सोयी थी उतनी ही ताजी ! वस्तुतः बारह साल में उसके संगी-साथी बूढ़े हो गये, वह नहीं हुई, क्योंकि ताजी की ताजी रही। बारह साल जैसे आए ही नहीं उसके लिए। जैसे समय बीता ही नहीं। जैसे घड़ी में काँटे चले ही नहीं, सब ठहरा रहा। वह गहन निद्रा में रही, विश्राम में रही। उसके चेहरे पे सलवटें न आयीं। लेकिन बारह साल जागे नहीं रह सकते। खुद तो पागल हो ही जाते, और न मालूम कितनों को पागल कर दिया होता। जिसको काटते वही पागल हो जाता।

परमात्मा को प्रकाश ही प्रकाश कहा है, अंधकार नहीं ! आदमी अपने भय से अपने शब्द बनाता है। तुम अँधेरे से भयभीत हो तो तुम्हें लगता है कि परमात्मा अँधकार – नहीं नहीं ! प्रकाश !

तुमने कभी खयाल किया, प्रकाश तोड़ता है, चीज़ों को अलग-अलग कर देता है। अभी देखो, सुबह हुई है, तो हर वृक्ष अलग-अलग हो गया; रात अँधेरा होगा, सब एक हो गया। फिर भेद न रहे। कौन आम है, कौन नीम है—फर्क न रहा। नीम और आम भी एक हो गये। सब बराबर हो गया।

अँधकार जोड़ता है, प्रकाश तोड़ता है। प्रकाश भेद खड़े करता है, अंधकार अभेद है।

सूरज का उंगना निश्चित है
एक दिशा में

किन्तु तिमिर के लिए खुली हैं
दशों दिशाएँ ।

सूरज तो सीमित ही है – एक दिशा से उगता है, पूरब से उगता है तो पूरब से उगता है । अंधकार कहाँ से उगता है, कभी खयाल किया ? सब तरफ से आता है, दसों दिशाओं से आता है । कभी विचार किया ? प्रकाश तो कभी होता है, फिर खो जाता है । अँधकार सदा है, सदा-सदा है । दीया जलाते हो, टिमटिमाने लगती है रोशनी; अँधेरा मिटता नहीं । दीया गया, अँधेरा वापस अपनी जगह है । कौन दीया अँधेरे को मिटा पाया है ! कितनी बार सूरज उगा है, कितनी बार डूबा है । रात पर रेखा भी खिंची ? अँधेरे को कोई ज़रा-सी भी परेशानी हुई ?

प्रकाश घटना है; अंधकार शाश्वतता है । कुछ करो तो प्रकाश बुझ जाएगा । ईंधन चाहिए । तुमने देखा, तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा ! सूरज का दीया भी बुझेगा – उसका तेल भी, वे कहते हैं, चुक रहा है ! चार हज़ार साल और लगेंगे । लम्बा है समय, लेकिन समय की अनंतता में चार हज़ार साल क्या हैं ? बुझ जाएगा । ईंधन चाहिए ।

दीया बुझता है–तेल के चुक जाने से । अंधकार बिना ईंधन के है, इसलिए बुझ न सकेगा । कभी न बुझेगा । कितने ही सूरज आएँगे और जाएँगे, कितने ही दीय जलेंगे और बुझेंगे–अंधकार रहेगा और रहेगा !

मृत्यु जीवन से बड़ी है, जैसे प्रकाश से अंधकार बड़ा है । जीवन तो थोड़ी-सी चहल-पहल है । जैसे सागर में उठी लहर, नाची, गायी, उमड़ी – खो गयी ! ऐसा ही जीवन है ।

उठती है लहर, नाचे, कूदे, शोरगुल मचाया –मैं हूँ, तू है, न मालूम कितनी चर्चा, वार्ता, संघर्ष, युद्ध – खो गयी लहर !

अगर गौर से देखो तो परमात्मा अँधेरे जैसा ज्यादा है, प्रकाश की बजाय । और प्रेम मृत्यु जैसा ज्यादा है, बजाय जीवन जैसे । पर हम मृत्यु से भयभीत हैं, तो हम कहते हैं, प्रेम जीवन है । हम जीवन को पकड़ना चाहते हैं । हम जीवन को ग्रस लेना चाहते हैं । हम जीवन को सब भाँति छाती से चिपटा लेना चाहते हैं । तो हम कहते हैं, प्रेम जीवन है । लेकिन यह कोई सत्य की प्रतीति नहीं है । जीवन बड़ा छोटा है; मृत्यु बड़ी विराट है !

आँखों को अपने पक्षपातों से मुक्त करो । सत्यों को देखो–जैसे हैं । पुनः आज की रात अँधेरे में बैठ के देखना; शायद अँधेरे का सौंदर्य तुमने देखा ही नहीं अब तक भय के कारण । अँधेरा बड़ा मखमली है । उसका स्पर्श बड़ा गुदगुदा है । उसके स्पर्श की कोमलता प्रकाश क्या पाएगा ! प्रकाश तो उत्तप्त है । अँधेरा बड़ा शीतल है !

अँधेरे को फिर से विचार करना । विचार नहीं करना–ध्यान करना । आज की रात आँख खोल कर अँधेरे में बैठ जाना और अँधेरे को ज़रा अनुभव करना । अँधेरे

की अनुभूति तुम्हें मृत्यु की अनुभूति को भी सुखद बना देगी ।

मृत्यु और अँधेरे को तुम अगर अहोभाव से स्वीकार कर पाओ तो तुम प्रेम के राज को समझ पाओगे, क्योंकि प्रेम भी अँधेरे की तरह सुखद है, शीतल है ।

मगर हमारे सब शब्द हमारे भय से आंदोलित हैं । अगर हम किसी का स्वागत करते हैं तो हम कहते हैं, गर्म स्वागत ! ठंडा स्वागत नहीं । वार्म वैलकम । अब अगर किसी का ठंढा स्वागत करो तो बात ही खराब हो गयी । ठंढक में ऐसी खराबी है ? तो फिर तुम्हारा असली स्वागत नरक में ही होगा । वार्म वैलकम !

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमार थी और उसके चिकित्सक ने कहा कि इसे गरम स्थान पर भेजना पड़ेगा । गरम आब-हवा की जरूरत है । तो उसने कहा कि 'ठीक है, तो कहाँ भेज दें ? अफ्रीका भेज दें ?' चिकित्सक ने कहा कि नहीं, उतनी गरमी से भी काम न चलेगा । तो मुल्ला ने कहा, 'कहाँ भेज दें फिर ?' तब उसे तत्क्षण खयाल आया । उसने कहा कि समझ गये, मगर गोली आपको ही मारनी पड़ेगी, मैं नहीं मार सकता । फिर नरक ही जगह है जहाँ एकदम उबलती हुई गरमी है ।

तुम्हारा भय तुम्हारी भाषा में प्रविष्ट हो गया है, तुम्हारे सोचने के ढंग में प्रविष्ट हो गया है । तुम्हारे प्रतीकों को ग्रसित कर लिया है उसने ।

फिर से विचारो !

मृत्यु से डर ! किस बात का डर है ? तुम्हारे पास क्या है जिसके खो जाने से तुम डरे हो ? है क्या ? कभी ऐसा सोचो कि मेरे पास है क्या, जो मृत्यु छीन लेगी ! तुम्हारे पास कुछ भी तो नहीं है, सिर्फ एक दम्भ है । बस वही छीन लेगी, और तो क्या छीनने को होगा ? और दम्भ भी कितनी कोरी चीज़ है–हवा का गुब्बारा है ! इसलिए तो ज़रा-ज़रा कोई छेड़ दे तो टूट जाता, फूट जाता । ज़रा-सा कोई काँटा चभा दे तो प्राण निकल जाते हैं । ज़रा कोई हँस दे कि पीड़ा पैदा हो जाती है, घाव पर चोट लग जाती है ।

दम्भ के अतिरिक्त और क्या है तुम्हारे पास जो मौत तुमसे छीन लेगी ?

प्रेम कहता है, अगर ऐसा ही है, अगर यही डर है, तो दम्भ तो प्रेम में ही छोड़ा जा सकता है, यह अहंकार तो प्रेम में ही डुबाया जा सकता है । फिर तो मौत का कोई डर ही न रह जाएगा । फिर तो तुम्हारे पास कुछ भी न बचेगा ।

जिसने प्रेम को जाना उसने मृत्यु को जाना–और उसने यह भी जाना कि मृत्यु के पार कुछ है ! यह अहंकार ही तुम्हें जानने नहीं देता, जागने नहीं देता ।

पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं
तम ने धोया नभ पथ
सुवासित हिमजल से

सूने आँगन में दीप
जला दिये झिलमिल से
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं ।
मैं प्रिय पहचानी नहीं ।

वही है जीवन में भी, मृत्यु में भी, जलने में भी, बुझने में भी, प्रकाश में भी, अंधकार में भी ! विभाजन मत करो ! अन्यथा रोओगे । कहोगे—मैं प्रिय पहचानी नहीं । उसी के हाथ हैं— बायाँ भी, दायाँ भी ! जो तुम्हें उठाता है वही तुम्हें वापस बुला लेता है । जन्म और मृत्यु के बीच में जो थोड़ा-सा अवसर है, लहर के उठने और गिरने के बीच में जो थोड़ी-सी सुविधा है, अवकाश है, उस अवकाश को तुम प्रेम से भर जाने दो ! अन्यथा अवसर खो गया ! अन्यथा तुम्हें किसी दिन कहना पड़ेगा आँसूभरी आँखों से—

पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं ।
अपरिचित, जानी नहीं ।
आ प्रात बुझा गया कौन
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

वही जलाता रात तारों को, वही सुबह बुझाता । हाथ बस उसी के हैं । जिसने ऐसा देखा—शुभ में, अशुभ में; सुन्दर में, असुन्दर में; सत्य में, असत्य में; साधु में, असाधु में—जिसने ऐसा देखा कि हाथ उसी के हैं, उसी ने बस देखा, उसी ने बस प्रिय को पहचाना ।

तीसरा प्रश्न : भगवान, आपके कहे-कहे भी बहुतेरे आपके संन्यासी ध्यान नहीं करते; कहते हैं, समझ काफी है । क्या उनकी यह समझ काफी है ?

अक्ल बारीक हुई जाती है
रूह तारीक हुई जाती है !

सुनते-सुनते मुझे समझ बढ़ती हो, ऐसा तो पक्का नहीं है, समझदारी बढ़ती है, समझ का खयाल बढ़ता है, सोचना पैना होता जाता है । अक्ल बारीक हुई जाती है !

लेकिन ध्यान रखना, यह अक्ल महँगा सौदा हो जाएगी, अगर साथ में यह खयाल न रहा कि 'रूह तारीक हुई जाती है, कि भीतर आत्मा अँधेरे में खोयी जाती है, होश मिटा जाता है, बेहोशी छायी जाती है ।

ध्यान रखना, निश्चित ही समझ काफी है । मगर समझ हो तब ! ध्यान की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि समझ ध्यान है । उससे बड़ा कोई ध्यान नहीं । लेकिन

समझ हो, तब । अपनी-अपनी परख अपने-अपने भीतर कर लेना । किसी दूसरे का सवाल भी नहीं कि कोई दूसरा चिंतित हो । अगर किसी की समझ जग गयी है, बात खत्म हो गयी । किसी दूसरे को फिक्र भी क्यों हो कि वह ध्यान करता है या नहीं ? यह उसके ही अपने ही भीतर सोचने-समझने की बात है । अगर उसे लगता है समझ जग गयी, दीया जल गया—बात खत्म हो गयी । अब न उसके जीवन में कोई दुख होगा न उदासी होगी । अब उसके जीवन में न कोई बेचैनी होगी, न कोई अशांति होगी । अगर बेचैनी अभी भी हो, अशांति अभी भी हो, दुर्गंध अभी भी उठती हो, नरक की लपटें अभी भी पास आती मालूम पड़ती हों, तो फिर धोखा किसको दे रहे हो ? तो फिर जान लेना कि समझ नहीं है । तो फिर ध्यान से बचने की कोशिश मत करना । क्योंकि ध्यान की चोट से ही समझ पैदा होगी । हो गयी हो, तब कोई ज़रूरत नहीं है ।

अगर स्वर्णकार की आग से तुम गुजर गये हो, सोना निखर गया हो, तो फिर अब कोई ज़रूरत नहीं है; लेकिन अगर न गुज़रे होओ तो बचाव मत करना यह कह के कि मैं गुजर चुका, नहीं तो कचरा ही बचेगा हाथ में । और कचरा भी रुकता नहीं, बढ़ता है । हर चीज़ बढ़ती है । जिसे बचाओगे, वह धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा, धीरे-धीरे सोने को ढक लेगा ।

अगर समझ न हो तो इस भ्रांति में मत पड़ना कि समझ है ।

कसौटी क्या है ? तुम्हारे पास जाँचने के लिए उपाय क्या है ? जाँचने का उपाय है : आनंद, शांति, समस्वरता, संगीत, संतुलन, सम्यक्त्व । भीतर तुम देख लेना । अगर भीतर सन्तुलन है, कोई चीज़ डँवाती नहीं, डुबाती नहीं; हवा के झोंके आते हैं, निष्कंप तुम बने रहते हो—बात खत्म हो गयी । फिर लाख दुनिया कहे कि ध्यान करो, प्रार्थना करो, पूजा करो—क्यों तुम करोगे ! सिर में दर्द हो तो औषधि लेना, बीमारी हो तो औषधि लेना ।

ध्यान औषधि है । किसी के कहने से लेने की ज़रूरत नहीं है । क्योंकि लोग कह रहे हैं, क्योंकि और लोग ले रहे हैं, इसलिए करने की कोई ज़रूरत नहीं है । पर यह प्रत्येक का निपटारा उसके ही भीतर होगा ।

यह प्रश्न किसी दूसरे ने पूछा है, यह भी बात ठीक नहीं । दूसरे को पूछने का हक ही नहीं है । तुम्हें दूसरे की समझ पर सन्देह करने की भी क्या ज़रूरत है ? अगर दूसरा कहता है, समझ जग गयी है, इसलिए ध्यान की ज़रूरत नहीं—जग गयी होगी । यह उसकी बात है । अगर न भी जगी होगी तो भी पछतावा उसे होगा कल, तुम क्यों परेशान हो ?

लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि जो ध्यान करता है वह चाहता है बाकी भी ध्यान करें । जिसकी पूँछ कटी, वह चाहता है औरों की भी कटे । स्वभावतः वह यह मान नहीं सकता कि 'हमारी हालत अभी ऐसी है कि ध्यान करना पड़े, तुम्हारी ऐसी है

कि ध्यान की जरूरत नहीं रही ! करवा के रहेंगे ! जरूर तुम धोखा दे रहे हो । हम नहीं पहुँचे अभी, तुम पहुंच गये ? ' यह मानने का मन नहीं होता । इसलिए जो ध्यान करता है वह दूसरों को भी करवाएगा । मगर वह बात दुष्टता की है । उसमें सज्जनता ज़रा भी नहीं ।

यह प्रश्न ही दूसरे के पूछने का नहीं है । कोई कहता है, समझ जग गयी है, इसलिए अब ध्यान की ज़रूरत नहीं रही—जग गयी होगी । सौभाग्य उसका ! तुम प्रार्थना करो भगवान से कि तुम्हारी भी जगे, तुम्हें भी जरूरत न रह जाए । यह तो उसके ही सोचने की बात है कि कहीं धोखा तो नहीं दे रहा है ! धोखा किसको दे रहा है ? यह किसी और का सवाल नहीं है । लेकिन धोखा देने वाले लोग हैं ।

भय होता है ध्यान करने से । लगता है, ' यह पागलपन और हम करें ! यह नाच-कूद हम करें ! ' हरेक अपने को समझता है कि हमारी बड़ी प्रतिष्ठा है संसार में । हम जैसा प्रतिष्ठित आदमी, और नाचे, गाये, कूदे—यह शोभा नहीं देता ! लेकिन यह भी कहने की हिम्मत नहीं होती कि हम भयभीत हैं, डर लगता है । हम कमजोर हैं । चाहते हैं करें, लेकिन नहीं कर पाते । इतने लोगों के सामने बेपर्दा होने की हिम्मत नहीं होती । एक झूठ को सिरताज बनाये हुए हैं । उघड़ने की, तथ्य को प्रगट करने की हिम्मत नहीं होती । इस तरह कूद के, चीख-पुकार के हम जाहिर न करना चाहेंगे कि हमारे भीतर भी चीख-पुकार है । सारे संसार में लोग जानते हैं कि हम बड़े शांत हैं । लोग हमें सज्जन मानते हैं । लोग सोच भी नहीं सकते कि हमारे भीतर भी ऐसा पागलपन छिपा पड़ा हो सकता है । भय लगता है, कहीं प्रगट न हो जाएँ, उघड़ न जाएँ, कहीं नग्नता पता न चल जाए । वस्त्रों के भीतर नग्न हैं, लेकिन वस्त्रों में ढांका हुआ है ।

भय, लोकलाज, प्रतिष्ठा, अहंकार की प्रतिमाएँ—वे सब बाधाएँ हैं । मगर उनको तो स्वीकार करना ठीक नहीं; क्योंकि उनको जो स्वीकार कर ले, उसका तो ध्यान शुरू हो ही गया । जो यह कह दे कि मैं भयभीत हूँ, इसलिए नहीं कर पा रहा हूँ—इसके जीवन में तो समझ की शुरुआत आ ही गयी । इसने एक तथ्य तो देख लिया कि मैं भयभीत हूँ । इसने झूठा दम्भ तो न किया । इसने सत्य को स्वीकृति दी । इसके जीवन में अब प्रामाणिकता प्रारम्भ हुई । यह ज्यादा दूर नहीं है, यह जल्दी ही आ जाएगा; समझ भी आएगी, ध्यान भी आ जाएगा । लेकिन यह कहता है, हमें ज़रूरत ही नहीं है.....!

मेरे पास लोग आते हैं । वे कहते हैं कि दूसरों को करते देखते हैं ध्यान, लगता है कुछ हो रहा है; मगर हम नहीं कर पाते, संकोच है । एकांत में नहीं कर सकते हैं ? जो मूल बात है कि दूसरों से छिपाना है, उसको ही तो तोड़ना है । तुम एकान्त में भी न कर सकोगे, क्योंकि वहाँ भी डर लगा रहेगा : कर तो रहे हैं, कोई पड़ोसी न सुन ले; कहीं पत्नी बीच में न आ जाए और कहे, यह तुम क्या कर रहे हो — पति और परमेश्वर हो के ! यह तुम क्या कर रहे हो— हू-हू-हू ! दिमाग तो दुरुस्त है कि डाक्टर को बुलाएँ ?

वहाँ भी डर समाया रहेगा । कहीं बच्चे न आ जाएँ—पिताजी ! जो सभी कुछ जानते हैं, अब ऐसे अबोध हो रहे हैं ।

डर लगता है । डर के कारण न करते होओ तो कम-से-कम स्वीकार तो करो कि डर है ।

कुछ आते हैं, वे कहते हैं कि हमें तो शांत ध्यान बता दीजिए । शांत ध्यान तुमसे अभी हो न सकेगा । शांति बहुत दबी पड़ी है, उसे निकालना है । वे कहते हैं, ये हमें जँचते नहीं ।

' तुमने किये ? '

' नहीं, किये भी नहीं हैं । '

' तो जँचता क्यों नहीं है ? '

भीतर दावानल है । भीतर ज्वालामुखी है । तुम डरते हो कि फूट जाएगा, निकल जाएगा बाहर । किसी तरह अपने को सम्हाले रहे । किसी तरह प्रतिष्ठा बनायी है, प्रतिमा बना ली है ।

जैन मुनि मेरे पास आते हैं । कुछ तेरापंथी जैन साधु आए । प्रतिष्ठित साधु हैं । सारे देश में उनका नाम है । वे कहने लगे कि ध्यान तो करना है, लेकिन किसी को पता न चले — श्रावकों को पता न चले ! मैंने उनको कहा कि ' श्रावकों से तुम डरते हो ! श्रावक तुमसे डरें, समझ में आता है । तुम श्रावकों से डरते हो ?' हँसने लगे । कहने लगे, आप बात तो ठीक कहते हैं, लेकिन हम उन पे निर्भर हैं । और वैसे तो वे इस पक्ष में भी नहीं हैं कि हम आपके पास आएँ । हम चोरी-छिपे आये हैं । एक श्रावक आपका भक्त है, वह ले आया है । उसके घर गये थे । यहाँ का तो किसी को पता नहीं है; कहीं का और बता के बीच में आ गये हैं । लेकिन ध्यान करना है ।

उनकी पीड़ा मैं समझता हूँ ।

मैंने उनको कहा कि कोई बात नहीं, चलो, एकांत कमरे में ध्यान कर लो । जाते वक्त कहने लगे, पर एक खयाल रखना कि कोई फोटो न ले ले । मैंने कहा, ' यह तो होगा । फोटो तो ली जाएगी । इतना तो करने दो । ' उनकी फोटो ले ली है । बाद में मुझे मिलने आये थे । कहने लगे, आप किसी को बताना मत ! मैंने कहा कि मैं किसी को बताऊँ तो भी आप रोक न सकोगे, फोटो है ।

इतना भय है—साधु-संन्यासी जिसको कहते हैं, उसको ! गृहस्थ की तो बात ही छोड़ दो ।

भय के कारण अगर तुम समझदारी की बातें कर रहे हो तो तुम धोखा अपने को दे रहे हो । और निश्चित ही तुम समझदारी की बातें करना चाहो तो खूब कर सकोगे । मुझे सुनते-सुनते समझ तो नहीं आए, समझदारी तो आ ही जाती है ।

समझदारी समझ का धोखा है । समझदारी खोटा सिक्का है ।

सुहबते-रिंदा से वाइज कुछ न हासिल कर सका
बहका-बहका-सा मगर तर्जेकलाम आ ही गया ।

शराबियों के साथ भी रहे–

सुहबते-रिंदा से वाइज कुछ न हासिल कर सका–

वह धर्मोपदेशक शराबियों के साथ भी रहा, मस्तों के साथ भी रहा, कुछ हासिल तो न कर सका । क्योंकि मस्ती हासिल करने के लिए तो पहले कुछ खोना पड़ता है; वह तो महँगा सौदा है । वह तो हिम्मतवरों का काम है । वह जुआरियों का मामला है, दुकानदारों का नहीं ।

सुहबते-रिंदा से वाइज कुछ न हासिल कर सका
बहका-बहका-सा मगर तर्जेकलाम आ ही गया ।

–लेकिन शराबियों की बातें सुनते-सुनते कहने का बहका-बहका ढंग तो आ ही गया ।

बस उतना ही हो रहा है – बहुतों को । इधर शराब की चर्चा चलती है, उधर 'तुम्हें बहका-बहका तर्जेकलाम आ ही गया', उधर तुम ऊँची बातें करने लगते हो । बात में तुमसे कोई जीत न सकेगा, यह बात पक्की है । मगर ध्यान रखना, कहीं बात ही बात में तुम अपने को मत गँवा बैठना ! तो यह बात फिर महँगी हो जाएगी ।

चौथा प्रश्न : भगवान, मैं आपका एक साधक हूँ, लेकिन संन्यस्त नहीं हुआ । फिर भी क्या मेरी मृत्यु के क्षण में आप धक्का देने आएँगे ? यदि हाँ, तो मुझे उस क्षण की तैयारी के लिए क्या करना चाहिए ?

संन्यास...!

क्योंकि जो तुम जिंदगी में न पा सकोगे उसे मर के पा सकोगे, इसकी संभावना कम है । अगर तुम जिंदगी में मेरे साथ न हो सके तो मुझसे तुम आशा रखो कि मौत में तुम्हारे साथ रहूँगा–ज़रा ज़रूरत से ज्यादा आशा कर रहे हो । नहीं कि मेरी तरफ से कोई बाधा है । मैं कोशिश करूँगा । लेकिन जब जिंदगी में तुम साथ न हो सके तो मृत्यु में तुम मेरे साथ को ले सकोगे ? जब होश में थे तब मेरे साथ को न ले सके तो जब तुम बेहोशी में खोने लगोगे, तुम तब सहयोग कर सकोगे ? कठिन होगा तुम्हारी तरफ से । मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है । मेरी तरफ से आश्वासन है । लेकिन मैं भी कुछ कर न पाऊँगा । मैं चिल्लाऊँगा और तुम न सुनोगे । मैं हाथ पकड़ूँगा, और तुम हाथ छुड़ाओगे । मैं तुम्हें धक्का दूँगा और तुम मुझे दुश्मन जानोगे ।

जब जिंदगी में तुम हिम्मत न जुटा सके, जब होश था, जब थोड़ी समझ थी, जब

थोड़ा प्रकाश था–जब तुम प्रकाश में मुझे न पहचान सके तो अँधेरे में तुम मुझे पहचान लोगे ? कठिन हो जाएगा ।

करेंगे मर के बका-ए-दवाम क्या हासिल
जो जिंदा रह के मुकामे हयात पा न सके ।

मर के, सोच रहे हो कि जीवन का लक्ष्य मिलेगा ! जीवन का लक्ष्य जब जीवित रहते न मिल सका....।

नहीं, ऐसी भूल मत करो । अभी समय है । देर हुई, पर बहुत देर कभी भी नहीं हुई है । अब यहाँ आ ही गये हो तो रीते मत लौट जाओ ।

पनघट तक आ कर भी गागर
रीती लौट रही है !
इसे शीश पर धर कर लायी
पनिहारिन बेचारी
सींचूँगी तुलसी का चौरा
आँगन की फुलवारी
पर माटी की इस काया में
ओझल छेद कहीं है
पनघट तक आ कर भी गागर
रीती लौट रही है !

साधक हो, अब संन्यस्त हो कर ही लौटो !

संन्यास का अर्थ क्या है ? इतना ही अर्थ है कि तुम्हें मुझ पे भरोसा है । और क्या अर्थ है ? इतना ही अर्थ है कि तुम अपना हाथ मेरे हाथ में देने को राजी हो–बेहिचिक । पागलपन भी करवाऊँ तो भी तुम भरोसा रखोगे कि कुछ मतलब होगा ।

भरोसे के अतिरिक्त संन्यास का कोई और अर्थ नहीं है । इस भरोसे में ही तुम्हारे खो जाने का उपाय होने लगता है ।

मेरे पास लोग आते हैं । वे कहते हैं, हम संन्यास के लिए तैयार हैं, लेकिन दो बातें हम न कर सकेंगे–माला और गेरुआ न पहनेंगे । तो मैं उनसे पूछता हूँ, 'तो फिर तैयारी क्या है ? आपकी माला बना के मुझे पहनाएँगे ? संन्यास का फिर अब क्या मतलब है ? फिर मुझे आपके हिसाब से चलना पड़ेगा–क्या करना, यह साफ-साफ कर लें, नहीं तो पीछे झंझट हो, अदालत जाना पड़े । सोचा क्या है तुमने ?'

जानता हूँ मैं भी कि कपड़ों से क्या होता है, माला से क्या होता है ! यह मुझे भी पता है । कुछ कपड़े और माला पहनने से तुम स्वर्ग पहुँच जाओगे, ऐसा भी नहीं है । लेकिन कपड़ा और माला तो सिर्फ इंगित है तुम्हारी तरफ से कि पागल होने की तैयारी है, कि अब हम राजी हैं, कि अगर दीवाना बनाओगे तो उसके लिए भी राजी हैं ।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बैठा था अपने घर के द्वार पर । एक कार रुकी ।

आदमी रास्ता भूल गया था और उसने पूछा कि बम्बई की तरफ जाने का रास्ता. . . । तो मुल्ला ने उसे ठीक-ठीक सूचनाएँ दीं, कि पहले बाएँ जाओ, फिर चौरस्ते से दाएं मुड़ना, फिर. . . . . । कोई दो घंटे बाद वह आदमी फिर वापस आया । वहीं मुल्ला बैठा था । उसने पूछा, 'हद हो गयी ! तुम्हारी एक-एक सूचना का ठीक-ठीक पालन किया, वहीं के वहीं आ गये ।' मुल्ला ने कहा, 'अब तुमको ठीक सूचना दूंगा । यह तो केवल परीक्षा थी कि तुम्हें सूचनाएँ पालन करने की अक्ल भी है या नहीं ।'

यह माला और गेरुआ—यह तो तुम घूम के यहीं आओगे । इससे कहीं तुम परमात्मा तक नहीं पहुँच जाने वाले । मगर यह तो केवल सूचना थी कि देखें पालन कर सकते हो, फिर कुछ आगे की बात करें । यह ही न सँभलती हो तो फिर भैंस के सामने बीन बजाना ठीक नहीं ।

संन्यास का कुल इतना अर्थ है कि तुम कह सको—

यह कौन छा गया है दिलो-दीदा पर कि आज
अपनी नजर में आप है नाआशना से हम !

तुम अपनी ही नजर में अपने प्रति ऐसा अनुभव करने लगो कि खुद से अजनबी हो गये हो । तुम्हें तुमसे दूर करना है । मेरे पास तुम्हें करने के उपाय का और कोई अर्थ नहीं है, तुम्हें तुमसे दूर करना है । मेरे पास तुम हो जाओ, यह तो केवल विधि है, ताकि तुम अपने से दूर हो जाओ ।

ये कौन छा गया है दिलो-दीदा पर कि आज—यह कौन हृदय पर और आँखों पे छा गया है, अपनी नजर में आप हैं नाआशना से हम—कि अपनी ही नजर में अपने से दूर हुए जाते हैं । बस इतना ही अर्थ है ।

पाँचवाँ प्रश्न : एक पुरानी धारणा है कि महानुभाव और श्रेष्ठजन यदि अपने से छोटों को प्रणाम करें तो उससे छोटों को पाप लगता है । स्पष्टतः इससे उनके अहंकार को पोषण मिलेगा । फिर क्यों आप प्रतिदिन प्रवचन के लिए आने पर और फिर विदा लेते हुए भी हाथ जोड़ कर हमें प्रणाम करते हैं ?

—ताकि तुम्हें याद बनी रहे कि तुम छोटे नहीं हो; ताकि तुम्हें याद बनी रहे कि तुम भूल भला गये होओ, तुम्हारा स्वरूप भगवान का है; ताकि तुम्हें याद बनी रहे कि भगवत्ता तुम्हारी संपदा है । हाँ, अगर तुम अपना अहंकार बढ़ा लो तो भूल हो जाएगी । और अगर तुम अपनी भगवत्ता को जगा लो तो पुण्य हो जाएगा ।

पाप और पुण्य तो तुम्हारी दृष्टि पर निर्भर हैं । मेरे लिए कोई उपाय नहीं है सिवाय इसके कि तुममें भगवान को देखूँ । जैसे ही जो अपने में देखा, वही सब में दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है ।

सीधी-तिरछी हर रेखाएँ
तेरा रूप उभर आता है
चाहा कितनी बार कि कोई
अन्य दूसरा चित्र बनाऊँ
तेरी आकृति की कारा से
अपने मन को मुक्त कराऊँ
पर हर दर्पण में तेरा
प्रिय प्रतिबिम्ब उतर आता है ।

तुम्हें देखता हूँ ज़रूर, पर तुम दिखायी नहीं पड़ते वहाँ; जो दिखायी पड़ता है उसी को प्रणाम करता हूँ । तुम भी धीरे-धीरे मेरे प्रणाम के सहारे उसकी खोज करो । इस भूल में मत पड़ना कि तुम्हें प्रणाम किया है। तो अहंकार बढ़ेगा। तो भूल हो जाएगी। तो तुमने फूलों को भी काँटा बना लिया ।

तुम्हें प्रणाम किया है—तुम्हें नहीं, तुम्हारे स्वभाव को; तुम्हारी धारणा को नहीं कि तुम कौन हो—तुम्हारे सत्य को कि वस्तुतः तुम कौन हो । तुम भी उसी की याद करना । उसकी याद उठने लगे तो मेरे प्रणाम से तुम्हारी खोज को बड़ी गति आ जाएगी ।

आखिरी प्रश्न : कब, किस घड़ी में संन्यासी शिष्य के भीतर से अपेक्षा का भाव पूर्णतया गिर जाता है ?

अपेक्षा तब तक रहेगी जब तक तुम्हें अनुभव नहीं हुआ कि जीवन में कुछ भी मिलने को नहीं है । जीवन केवल आश्वासन देता है, पूरा नहीं करता । जीवन एक धोखा है । दूर से लगते हैं बड़े मरूद्यान, पास आने पे मरुस्थल सिद्ध हो जाते हैं । दूर से लगता है बड़ा सौंदर्य । दूर के ढोल बड़े सुहावने ! पास आने पे सब कुरूप हो जाता है ।

जितना तुम्हारा यह अनुभव गहरा होने लगेगा कि सब सौंदर्य दूरी का है, और जीवन का सारा रस भविष्य में है, वर्तमान में कभी भी नहीं है; लगता है मिला, मिला, मिला, मिलता कभी नहीं; पास आते मालूम पड़ते हो, पहुँचते कभी नहीं । यह मंजिल कुछ ऐसी है कि दूर हटती चली जाती है । जैसे क्षितिज है, आकाश छूता है पृथ्वी को, लगता है यह दस-पाँच मील के फासले पर छू रहा है; बढ़ो, बढ़ता जाता है—दूरी सदा उतनी ही रहती है । जिस दिन तुम्हें यह प्रतीति होगी जीवन की सर्वांगीण दिशाओं से कि यहाँ सब सिर्फ निमंत्रण है, आशा है, पूरा कुछ भी नहीं होता, उसी दिन तुम्हारी अपेक्षा गिर जाएगी । अपेक्षा गिरते ही संसार तिरोहित हो जाता है । क्योंकि अपेक्षा में ही संसार है । आशा में ही संसार है । और जैसे ही संसार तिरोहित हो जाता है, तुम अचानक पाते हो : तुम परमात्मा से घिरे हो ।

मैं तुमसे यह कह रहा हूँ,–यह बड़ा मुश्किल होगा समझना – मैं तुमसे यह कह रहा हूँ कि जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि यह पृथ्वी आकाश को क्षितिज पर छूती ही नहीं, उसी दिन तुम अचानक पाते हो कि तुम्हारे भीतर से आकाश ने पृथ्वी को छुआ है; यहीं छुआ है, कहीं जाने की जरूरत न रही।

सुधा कल्पना मात्र, गरल का
दावा सोलह आने सच है
सुधा कल्पना मात्र, गरल का
दावा सोलह आने सच है
कभी किसी ने चखा न देखा
केवल नाम चला आता है
पर विष बिकता चौराहे पर
जो खाता है, मर जाता है।
सुधा कल्पना मात्र, गरल का
दावा सोलह आने सच है।

जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ेगा कि संसार में सुधा तो केवल कल्पना मात्र है, अमृत तो केवल बातचीत है, सपना है; जहर सत्य है–उसी दिन हाथ रुक जाएँगे; उसी दिन तुम गरल को पीने से रुक जाओगे। रोकना पड़ेगा, ऐसा भी नहीं – बस रुक जाएंगे हाथ। जान के कोई गरल को पी सका है? जहर को जान के कोई पी सका है? पीते हो तुम इसी आशा में कि जहर नहीं है, अमृत है। होगा जहर, मानते हो अमृत, इसलिए पीते हो।

जहाँ-जहाँ तुमने अब तक सुख चाहा था, वहाँ-वहाँ सुख मिला? जब मिलता है तब दुख मिलता है। लेकिन अद्भुत हो तुम! फिर-फिर तुम आगे उसी-उसी में फिर सुख माँगने लगते हो। तुम पाठ लेते ही नहीं।

महाभारत में कथा है कि पांडव वन में भटक रहे हैं, अज्ञातवास के समय। प्यास लगी है। एक भाई झील पर गया है। झुका ही था पानी भरने को.........स्वच्छ, स्फटिक जैसी झील, उत्तप्त कंठ, भाई प्यासे मर रहे हैं, कि अचानक एक आवाज आयी। यक्ष, कोई प्रेतात्मा झील की, बोली, 'रुक! जब तक मेरे प्रश्नों का उत्तर न देगा तब तक अगर पानी छुआ तो मर जाएगा। मेरे प्रश्नों का उत्तर दे, दे फिर पानी ले जा सकता है।

पूछा, 'क्या प्रश्न हैं?' प्रश्न ऐसे थे कि उत्तर भाई न दे पाया और पानी ले जाने की कोशिश की, गिर पड़ा। पहला प्रश्न यह था कि मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है! ऐसे चार भाई आए और गिर गये, फिर युधिष्ठिर का आना हुआ। वही सवाल। यक्ष ने कहा, 'ये चार मरे पड़े हैं। यही गति तुम्हारी भी होगी। मेरे प्रश्नों का पहले उत्तर दे दो, क्योंकि मैं यहाँ उलझन में पड़ा हूँ। मेरी

उलझन यह है कि मुझे अभिशापित किया गया है कि जब तक मैं इन पांच प्रश्नों के उत्तर न लाऊँगा तब तक मुझे इसी प्रेमात्मा में आबद्ध रहना पड़ेगा। मैं पूछ-पूछ मरा जा रहा हूँ; सदियाँ बीत गयीं, कोई उत्तर नहीं देता। मेरे छुटकारे का क्षण दूर हटा जाता है। अगर तुम उत्तर दोगे, तो ही इस झील से पानी पी सकोगे। यह झील तरकीब है मेरी और इस झील के आसपास दूर-दूर तक मैंने सूखा फैला रखा है, कि जो भी आए, प्यासा हो, जल की तलाश में झील तक आए, मेरे जाल में फँसे। तुम उत्तर दे दो। मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है?

युधिष्ठिर ने कहा कि मनुष्य अनुभव से भी सीखता नहीं। और कहते हैं, यक्ष राजी हो गया। यही उत्तर है।

मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी बेबूझ घटना यही है कि तुम रोज सुख माँगते हो, रोज दुख पाते हो, फिर वही सुख माँगते हो। सोचते हो, अमृत पी रहे हैं, कंठ में जाते ही गरल हो जाता है। रोज-रोज यह होता है। फिर-फिर रोज वही प्याली भर लेते हो। रोज-रोज उसी रस से भर लेते हो जिससे कल भी दुख पाया था, परसों भी दुख पाया था, पिछले जन्मों में भी दुख पाया था। जिस क्षण तुम्हें यह बोध हो जाएगा, उसी क्षण अपेक्षा गिर जाती है, प्याली हाथ से छूट जाती है।

संन्यास इस परम प्रज्ञा का नाम है।

आज इतना ही।

दिनांक १५ मार्च १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना
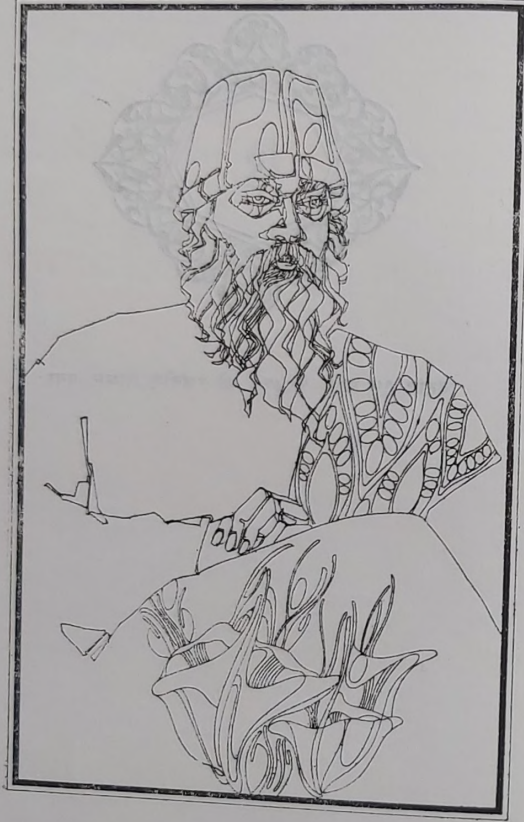
अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ।। ५८ ।।

प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयंप्रमाणत्वात् ।। ५९ ।।

शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ।। ६० ।।

लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्म-लोकवेदत्वात् ।। ६१ ।।

न तदसिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ।। ६२ ।।

स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ।।६३।।

अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ।। ६४ ।।

तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमाना-दिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ।। ६५ ।।

हृदय-सरोवर का कमल : भक्ति

भक्ति तो एक है ।

बुद्ध ने कहा है, जैसे सागर को कहीं से भी चखो, खारा है : ऐसा ही सत्य भी है—एकस्वाद है, एकरस है। फिर भी नारद ने भक्ति के तीन विभाजन किये हैं। पराभक्ति के वे विभाजन नहीं हैं, गौणी भक्ति के विभाजन हैं ।

तो पहला विभाजन : पराभक्ति मुख्याभक्ति; वह तो एकस्वरूप है । फिर गौणी-भक्ति : दोयम, नीची, मनुष्यों के अनुसार । चूंकि मनुष्य तीन प्रकार के हैं, इसलिए स्वभावतः उनकी भक्ति भी तीन प्रकार की हो जाती है ।

प्रकाश का तो एक ही रंग है, लेकिन काँच के टुकड़े से प्रकाश निकल जाए तो सात रंग का हो जाता है—काँच उसे सात रंगों में विभाजित कर देता है । ऐसे ही तो इन्द्र-धनुष बनता है । वर्षा के दिनों में, हवा में, वायुमण्डल में छोटे-छोटे पानी के कण झूलते होते हैं; उन पानी के कणों से निकलती सूरज की किरण सात हिस्सों में टूट जाती है । तो वर्षा के दिन हों, सूरज निकला हो, इन्द्रधनुष बन जाता है । किरण तो एकरंगी है, लेकिन सप्तरंगी हो जाती है ।

भक्ति तो एकरंगी है, लेकिन मनुष्य तीन तरह के हैं; इसलिए गौण अर्थ में भक्ति तीन तरह की हो जाती है । उन्हें भी समझ लेना ज़रूरी है, क्योंकि बड़ी बहुमूल्य बात उनमें छिपी है ।

सत्त्व, रज, तम – ऐसे तीन मनुष्य के विभाजन हैं । स्वभावतः आदमी जो भी करेगा, उसका कृत्य उससे प्रभावित होता है । सात्त्विक भक्ति करेगा तो सत्त्व के हस्ताक्षर होंगे । राजसी भक्ति करेगा तो भक्ति में भी राजस गुण समाविष्ट हो जाएगा । तामसी भक्ति करेगा तो तमस से बचा न सकेगा अपनी भक्ति को ।

सात्त्विक भक्ति का अर्थ होता है : व्यक्ति पापों के विमोचन के लिए, अँधकार से मुक्त होने के लिए, मृत्यु से पार जाने के लिए भक्ति कर रहा है । भक्ति में आकाँक्षा है सात्त्विक पुरुष की भी, इसलिए वह पराभक्ति नहीं । पराभक्ति में तो कोई भी आकांक्षा नहीं है – सत्त्व की भी नहीं है । पराभक्ति में तो परमात्मा को पाने की

आकांक्षा भी नहीं है । क्योंकि जहाँ आकांक्षा है, वहाँ मनुष्य आ गया । तुम्हारी आकाँक्षा तुम्हारी है । तुम्हारी आकांक्षा से जो भी गुज़रेगा, तुम्हारी आकाँक्षा के रूप को ले लेगा । तुम्हारी आकांक्षा उसे विकृत कर देगी । तुम्हारी आकांक्षा उसे शुद्ध न रहने देगी । उसका कुआँरापन खो जाएगा ।

आकांक्षा भ्रष्ट करती है । तो सत्त्व की आकांक्षा भी यद्यपि बड़ी ऊँची आकांक्षा है, पर कितनी ही ऊँची हो, गौरीशंकर की चोटी कितनी ही ऊँची हो, ऐसे पृथ्वी का का ही हिस्सा है । आकाश में कितनी भी ऊपर उठ जाए तो भी आकाशरूप नहीं हो गयी है । तो सात्त्विक की भक्ति बड़ी ऊँची उठती है, गौरीशंकर बन जाती है, लेकिन फिर भी जुड़ी तो पृथ्वी से ही रहती है । आकांक्षा के जाल से संबंध बना रहता है । अभी भी मन में कुछ पाने का खयाल होता है—परमात्मा सही, मोक्ष सही; लेकिन पाने का खयाल होता है । और जहाँ तक पाने का खयाल है, वहाँ तक संसार है ।

तुम अगर मोक्ष को भी चाहोगे तो तुम्हारा मोक्ष तुम्हारे संसार का ही फैलाव है । तुम मोक्ष की भी कल्पना क्या करोगे ? तुम्हारे काँच के टुकड़े से, तुम्हारी आकाँक्षा के टुकड़े से गुज़र के मोक्ष भी मोक्ष न रह जाएगा । तुम मोक्ष में भी अगर माँगोगे तो फिर-फिर संसार को ही माँग लोगे, थोड़ा सुधार कर, थोड़ा रंग - रोगन बदल कर । लेकिन तुमसे ही जुड़ा रहेगा तुम्हारा मोक्ष । इसीलिए तो तुम्हारा मोक्ष स्वर्ग के रूप में प्रगट होता है, मोक्ष के रूप में नहीं ।

मनुष्य की आकाँक्षा से गुज़र के मोक्ष पतित हो जाता है, स्वर्ग बन जाता है । स्वर्ग, मोक्ष का पतन है । स्वर्ग का अर्थ है कि तुमने संसार में जो चाहा था और न पा सके थे, उसे तुम अब परलोक में चाहते हो । सुन्दर स्त्रियाँ चाही थीं, न मिल सकीं; मिलीं, सुन्दर सिद्ध न हुईं । जिन्हें नहीं मिलीं वे भी तड़फ के मरे; जिन्हें मिलीं, वे और भी तड़फ के मरे । सुन्दर पुरुष चाहे थे, न मिल सके; जो मिला, उसी को कुरूप पाया; जो मिला, उसी को क्षुद्र में ग्रसित पाया । आकाँक्षा शेष रह गयी, मरी न । मन तड़फता रह गया, प्यास बुझी न । बहुत घाटों से पानी पिया, लेकिन कोई पानी मन को न भाया, कोई पानी रास न आया । घाट तो बहुतेरे मिले, लेकिन ऐसा कोई घाट न मिला कि घर बन जाता ।

तो तुम्हारे स्वर्ग में अप्सराएँ पैदा हो जाएँगी । वह तुम्हारी ही वासना का विस्तार है । तो तुम स्वर्ग में रच लोगे उन स्त्रियों को जो तुम यहाँ न पा सके । चूंकि स्वर्ग के सारे चित्र पुरुषों ने बनाये हैं, इसलिए अप्सराएँ हैं । अगर स्त्रियाँ बनातीं तो स्वभावतः सुन्दर पुरुषों को रचतीं । अप्सराएँ ऐसी कि सोलह वर्ष पे उनकी उम्र ठहर जाती है, फिर बढ़ती नहीं । उर्वशी अभी भी सोलह ही साल की है, सदियों पहले भी सोलह साल की थी, सदियों बाद भी सोलह साल की रहेगी । मनुष्य की आकाँक्षा थी कि स्त्री सोलह पे ठहर जाती । कोई स्त्री वहाँ ठहरती नहीं, हालाँकि स्त्रियाँ ठहरने की कोशिश भी करती हैं । सोलह के बाद बड़ी मुश्किल से बढ़ती हैं, बड़ी बेचैनी

से बढ़ती हैं, दो-दो तीन-तीन चार-चार साल में एक-एक साल बढ़ती हैं—फिर भी बढ़ना तो पड़ता ही है । समय किसी को क्षमा नहीं करता । मौत को पीछे हटाने का कोई उपाय नहीं है । युवावस्था को सदा पकड़े रखने की कोई सुविधा नहीं । यहाँ तो सभी हाथ से खोया चला जाता है ।

तो फिर स्वर्ग तो है; वहाँ तो हमारे स्वप्न ही साकार हुए हैं । वहाँ तो कोई समय बाधा देने को नहीं है । वहाँ तो कोई मौत द्वार पर नहीं दस्तक देती । वहाँ तो बुढ़ापा आ के खड़ा नहीं हो जाता । स्वर्ग में स्त्रियों के शरीर से पसीने की बदबू नहीं आती, सुगंध आती है, सुवास आती है । चाहा हमने यहाँ था, हो न सका । बहुत इत्र-फुलेल छिड़के, बहुत सुगंधियाँ खोजीं, फिर भी पसीने की बू छिपाये छिपती नहीं, प्रगट हो ही जाती है । शरीर की गंध, कितना ही भुलाओ, भूलती नहीं ।

स्वर्ग में, पहली तो बात, पसीना निकलता ही नहीं । शीतल समीर ! सुबह ही बना रहता है, दोपहर नहीं होती । और शरीर से सुगंध आती है । स्वर्ण-कायाएँ हैं स्वर्ग में । और सोने में सुगंध है ।

मुसलमानों के स्वर्ग में शराब के चश्मे हैं । बड़े मजे की बात है । यहाँ धर्मगुरु कहते हैं, शराब छोड़ो—और स्वर्ग में शराब के झरनों का भरोसा दिलाते हैं । आदमी का मन तो देखो ! छोड़ता भी है तो पाने के लिए ही छोड़ता है । यह भी कोई छोड़ना हुआ ? एक हाथ से छोड़ा नहीं, दूसरे हाथ से पकड़ लिया । और यहाँ प्यालियाँ छोड़ता है, शराब यहाँ प्यालियों में मिलती है, झरने और नदियों नहीं बहतीं— स्वर्ग में नदियाँ बहाता है । यहाँ तो शराब तुम्हें अपने में उतारनी पड़ती है, वहाँ तुम शराब में उतर जाओगे । डुबकियाँ लेना, तैरना !

उमरखय्याम ने कहा है कि धर्मगुरुओ, अगर यह बात सच है कि स्वर्ग में शराब है तो थोड़ा हमें यहाँ अभ्यास कर लेने दो । तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे; न तुम्हें पीना आता है, न पिलाना आता है । तुम वहाँ करोगे भी क्या ? तुम्हारा अभ्यास विपरीत है ।

उमरखय्याम ने ठीक ही मजाक की है । उमरखय्याम एक सूफी संत था, कोई शराबी नहीं । शराब तो उसका प्रतीक है परमात्मा के लिए । वह यह कह रहा है कि अगर परमात्मा उस लोक में मिलता है तो हमें उसका स्वाद यहीं लेने का अभ्यास करना होगा । अगर यहाँ अभ्यास न किया तो वहाँ पहुँच के भी उसका स्वाद न ले सकोगे, भोग न कर सकोगे । छोड़ो वहाँ की फिक्र ! यहाँ उसके स्वाद में रमो । तब जब उसके झरने बहने लगें तो तुम डुबकी भी ले सको । अगर यहाँ डरे शराब से, हाथ-पैर कँपे, तौबा-तौबा करते रहे, तो वहाँ जब झरने देखोगे बहते तो तुम्हारे तो प्राण सूख जाएँगे । तुम्हें तो जगह न मिलेगी बचने की ।

लेकिन शराब छोड़ी है यहाँ बड़े बेमन से, इसलिए स्वर्ग में उसका इन्तजाम कर लिया है ।

हिन्दुओं ने कल्पवृक्ष बना रखा है स्वर्ग में । यहाँ जो-जो नहीं मिलता, सब कल्पवृक्ष के नीचे मिल जाएगा । कल्पवृक्ष का अर्थ ही यह होता है कि उसके नीचे बैठते से ही वासना पूरी हो जाती है । वासना पूरी करने को कोई कृत्य नहीं करना पड़ता । यहाँ संसार में तो बड़ा दौड़ो, फिर भी नहीं पहुँचते—यह हमारा अनुभव है सभी का । कितना श्रम करो, फिर भी फल क्या हाथ लगता है ! राख रह जाती है हाथों में ! सिकंदर भी खाली हाथ मरते हैं । धूल भरी रह जाती है मुँह में । कब्र प्रतीक्षा कर रही है । कितने ही दौड़ो, कितनी ही चेष्टा करो, अन्ततः कब्र में ही गिर जाते हो । छोटे गिरते वहीं, बड़े गिरते वहीं, भिखारी और सम्राट गिरते वहीं, गरीब और अमीर गिरते वहीं, ज्ञानी और मूढ़ गिरते वहीं—सब मौत में गिर जाते हैं, सब धूल-धूसरित हो जाते हैं । कितना श्रम करो, मिलता क्या है ?

यह हमारा संसार का अनुभव है, तो हमने स्वर्ग में कल्पवृक्ष बनाया । वहाँ श्रम नहीं करना पड़ता । इधर तुमने सोचा उधर पूरा हुआ । सोचने और पूरे होने में क्षण का भी फासला नहीं होता । इधर उठा भाव उधर फल हुआ । जीवन का अनुभव यह है कि जिंदगी भर भाव करो, दौड़ो, श्रम करो, उपाय करो, आयोजन करो—सब निष्फल, सब निष्फल ! इसके विपरीत हमने स्वर्ग में कल्पवृक्ष बनाये । कुछ भी न करो, सिर्फ सपना उठे, सिर्फ लकीर उठे भाव की, इधर भाव उठ नहीं पाया, तुम जान भी न पाओगे, तुम जाग भी न पाओगे कि भाव उठा कि बाहर फल उपस्थित हो जाएगा । यह सांसारिक मन की ही आकाँक्षा है ।

इसलिए सारी दुनिया के स्वर्ग अलग-अलग हैं, क्योंकि हर मुल्क के रहने वाले के जीवन के दुख-सुख के अनुभव अलग हैं ।

तिब्बत का स्वर्ग सूर्य-प्रदीप्त है, रोशनी ही रोशनी है, उत्तप्त है, क्योंकि तिब्बत बर्फ की पीड़ा से पीड़ित है । हिन्दुओं का स्वर्ग, शीतल बहार, सुबह की ठंढी हवा, वातानुकूलित है । हिन्दू परेशान हैं सूरज से । आग-वगैरह का इन्तजाम तो नरक में किया है दूसरों के लिए । स्वभावतः जो हमारा दुख है यहाँ, वह हमने नरक में; और जो हमने चाहा था, जो सुख था, हमारी कामना था, उसे हमने स्वर्ग में . . . . . ।

स्वर्ग तुम्हारी कामना है, तुम्हारी चाह की कल्पना है, तुम्हारी चाह का काव्य है, तुम्हारा रोमांस है । नरक : तुम्हारी पीड़ा का इकट्ठा जोड़ । तुमने बाँट दिया । सारी पीड़ा नरक में रख दी और सारे सुख स्वर्ग में रख दिये—और बिना यह जाने कि सुख और दुख साथ-साथ होते हैं, अलग-अलग नहीं । जहाँ सुख वहाँ दुख । जहाँ दुख वहाँ सुख । क्योंकि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; अलग-अलग होते ही नहीं ।

सुन्दर स्त्री में ही कुरूप स्त्री छुपी है । सुन्दर पुरुष में ही कुरूप छिपा है । जीवन में ही मौत खड़ी है । जवानी में ही बुढ़ापा झाँक रहा है । जरा गौर से देखो तो जवानी में ही तुम्हें बुढ़ापा झाँकता हुआ दिखायी पड़ जाएगा । ठेठ भरी जवानी में तुम्हें झुकी

कमर, हाथ में लकड़ी टेकता हुआ बूढ़ा दिखायी पड़ जाएगा । ज़रा गौर से देखो, सुन्दरतम देह में तुम्हें अस्थि-कंकाल दिखायी पड़ जाएँगे । ज़रा गौर से देखो, जहाँ तुम्हें यौवन की विभा दिखायी पड़ती है, वहीं तुम्हें चिता की लपटें दिखायी पड़ जाएँगी । थोड़ी गहरी आँख चाहिए । ज़रा देखने की गहराई चाहिए, बस ।

सुख और दुख अलग नहीं किये जा सकते । संसार में सुख और दुख सम्मिलित हैं । मनुष्य के तर्क ने, विचार ने सुख को अलग करके स्वर्ग बना लिया; दुख को अलग करके नरक बना लिया । स्वभावतः नरक उनके लिए जिन्हें तुम पसंद नहीं करते, दुश्मनों के लिए, परायों के लिए—स्वर्ग अपने लिए, अपनों के लिए, जिन्हें तुम चाहते हो; जिन्हें तुम सुख देना चाहते थे, न दे सके, उनके लिए ।

इसलिए जो भी मरता है, सभी 'स्वर्गीय' हो जाते हैं । खयाल किया तुमने, जो भी मरता है, मरते से ही स्वर्गीय हो जाता है । क्योंकि मरने की चर्चा, मरने का दुख प्रियजन उठाते हैं; दूसरों को तो लेना-देना क्या है ! किसको पड़ी है कि नारकीय कहे कि नरक चले गये ! किसको लेना-देना है ! फिर मरे के संबंध में कोई बुरी बात कहता भी नहीं । दुश्मन भी मर जाए तो भी अब मरे से कुछ बुरा कहना शोभा नहीं देता, अशोभन लगता है । स्वर्ग गये, स्वर्गीय हो गये ! कोई शक भी नहीं उठाता कि ये स्वर्गीय हो गये, ये स्वर्गीय होने योग्य थे ! लेकिन प्रियजन हैं, वे चाहते हैं स्वर्ग जाएँ ।

भक्ति—पराभक्ति—कुछ भी नहीं माँगती—परमात्मा को भी नहीं—और परमात्मा को पा लेती है । परमात्मा को पाने का ढंग ही यही है—न माँगना । बिन माँगे मोती मिलें ! माँगा कि तुमने परमात्मा की शकल अपनी वासनाओं में ढाल ली ।

तुम जरा सोचो, तुम किस तरह का परमात्मा चाहोगे ! कभी विचार करो । तो तुम पाओगे कि तुम्हारी कामना का ही प्रतिबिम्ब होगा । किस तरह का परमात्मा चाहोगे ? तो तुम पाओगे, तुम रंग भरने लगे परमात्मा में अपने ही । किरण टूट गयी, सतरंगी हो गयी । स्वभाव खो गया । सत्य अब सत्य न रहा । तुम जब सारी वासना को, कामना को छोड़ कर देखते हो तो वह दिखायी पड़ता है जो है ।

परमात्मा की चाह भी परमात्मा के मार्ग में बाधा है । इसलिए परम भक्त सिर्फ भक्ति करता है, माँगता कुछ भी नहीं । परम भक्त सिर्फ प्रार्थना करता है, प्रार्थी नहीं होता । इसे खयाल में लेना । परम भक्त सिर्फ प्रार्थना करता है, प्रार्थी नहीं होता । उसकी प्रार्थना कुछ माँगने की नहीं होती । उसकी प्रार्थना अहोभाव की होती है, वह धन्यवाद देता है । वह कहता है, 'ऐसे ही इतना दिया, कुछ पात्रता न थी, कोई योग्यता न थी । तू भी खूब है ! लुटा रहा है ! मुझे दिया, जिसकी कोई पात्रता न थी ! न देता तो शिकायत कहाँ करते, किससे करते ! न देता तो शिकायत किस मुँह से करते ! कोई कारण न होता । इतना दिया ! पारावार दिया, विस्तार दिया ! जीवन दिया, अस्तित्व दिया ! धड़कता हुआ हृदय, प्रेम से भरे प्राण दिये ! प्रार्थना की संभावना दी ! परमात्मा की संभावना दी ! मोक्ष का द्वार दिया ! सब दिया !'

तो परम भक्त प्रार्थना करता है धन्यवाद के लिए । उसकी प्रार्थना अहोभाव है । उसकी प्रार्थना कृतज्ञता का उच्छ्वास है । वह मंदिर में धन्यवाद देने जाता है कि तेरी बड़ी कृपा है, तेरी बड़ी अनुकंपा है ! तेरे जैसा औघड़दानी नहीं देखा !

लेकिन यह पराभक्ति है । और ऐसा भक्त भगवान को पा लेता है । मुझे फिर दोहराने दें : जो माँगता नहीं, उसे मिल जाता है । जो माँगता है वह माँगने के कारण ही दूर पड़ जाता है । क्यों ? माँग का शास्त्र समझो ।

जब तुम कुछ माँगते हो तो माँगने वाला अपनी माँग पर ध्यान रखता है । जब तुम कुछ माँगते हो तो तुम परमात्मा से भी बड़ी उस चीज़ को बता रहे हो जो तुम माँगते हो । अगर तुम गये मंदिर में और तुमने कहा कि स्वर्ग मिल जाए, हे प्रभु ! बहुत दुख पा लिया, अब और दुख न दे ! अब तो सुख की छाया है !—तो तुम यह कह रहे हो कि अगर मेरे सामने तुझे पाने और स्वर्ग को पाने का विकल्प हो तो मैं स्वर्ग चुनता हूँ । तुम यह कह रहे हो कि तेरा हम उपाय की तरह उपयोग कर लेते हैं, साधन की तरह; क्योंकि तेरे बिना मिलेगा न । अपने किये तो कर लिया बहुत, कुछ पाया नहीं—अब तेरा सहारा ले लेते हैं । ऐसे तो भीतर मजबूरी है कि चाहा तो यही था कि अपने ही हाथ से पा लेते; नहीं मिल सका, चलो ठीक, माँग लेते हैं, तेरी खुशामद कर लेते हैं; तेरी स्तुति कर लेते हैं !

यह एक तरह की रिश्वत है । यह एक तरह का फुसलावा है कि चलो, तुझे राजी कर लें, तेरे हाथ में है । लेकिन भीतर बेचैनी है । और जो तुम माँगते हो, वह बताता है ।

मैंने सुना है, एक सम्राट युद्ध से घर वापस लौटता था । उसकी एक हज़ार रानियाँ थीं; उसने खबर भेजी कि मैं क्या तुम्हारे लिए ले आऊँ । किसी ने कहा, हीरों का हार ले आना । किसी ने कहा, उस देश में कस्तूरी-मृग की गंध मिलती है, वह ले आना । किसी ने कहा, वहाँ के रेशम का कोई मुकाबला नहीं, तो रेशम की साड़ी ले आना । ऐसे बहुत लोगों ने बहुत कुछ माँगा । सिर्फ एक पत्नी ने कहा, तुम घर आ जाओ, तुम बहुत हो । उस दिन तक उसने इस रानी पर कोई खयाल ही न किया था । हज़ार रानियों में एक थी, कहीं थी; नम्बर थी, कोई व्यक्ति नहीं थी; लेकिन घर लौटा तो उसे पटरानी बना दिया । और रानियों ने कहा, 'यह क्या हुआ ? किस कारण ?' उसने कहा, 'इसी ने अकेले कहा कि तुम घर आ जाओ। और कुछ नहीं चाहिए; तुम आ गये, सब आ गया ।' इसने मेरा मूल्य स्वीकारा । तुममें से किसी ने हीरे माँगे, किसी ने साड़ियाँ माँगीं, किसी ने इत्र माँगा, और हज़ार चीज़ें माँगीं—मेरा उपयोग किया । ठीक है, तुमने जो माँगा, तुम्हारे लिए ले आया । इसने कुछ भी न माँगा । इसके लिए मैं आया हूँ ।'

परमात्मा उसके द्वार पर दस्तक देता है जिसने कुछ भी न माँगा; जिसने कहा,

ऐसे ही बहुत दिया है, बस मेरा धन्यवाद स्वीकार कर लो।

तो पराभक्ति तो धन्यवाद है। उसकी हम बात छोड़ें। वह तो आत्यन्तिक है। लेकिन मनुष्यों में तो सात्त्विक मनुष्य है। वह कहता है, 'छुटकारा हो जाए संसार से, पाप से मुक्ति मिले। अंधकार में बहुत जी लिये, प्रकाश चाहिए प्रभु! तमसो मा ज्योतिर्गमय! मृत्यो मा अमृतगमय! अब मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो! असतो मा सद्गमय! असत्य से मुझे सत्य की तरफ ले चलो!' बड़ी सात्त्विक पुकार है। आदमी कल्पना कर सके, उसकी आखिरी ऊँचाई है। और क्या तुम कल्पना करोगे; उसके पार तो कल्पना के पंख कट जाते हैं। उसके पार तो शून्य का विराट आकाश है। उसके बाद तो परमात्मा ही है। तो यह सत्पुरुष की आकांक्षा है–इसको नारद ने कहा, सात्त्विकी भक्ति। मगर इसको गौणी भक्ति कहा है, याद रखना यह मुख्या नहीं है। यह परा नहीं है। यह कोई आखिरी बात नहीं है।

फिर उससे नीची भक्ति है : राजसी भक्ति। तुम माँगते हो, बड़ा राज्य मिल जाए, सत्कार मिले, सम्मान मिले, राष्ट्रपति हो जाओ कि प्रधानमंत्री हो जाओ, कि चुनाव में लड़ते तो मंदिर जाते हो। दिल्ली के सभी राजनेताओं के गुरु हैं। जैसे जीते, भूल जाते हैं, वह बात दूसरी; मगर हारे कि गुरु के पास पहुँच जाते हैं।

यश मिले, कीर्ति मिले, धन मिले, पद मिले – यह राजसी मन का लक्षण है। अहंकार की तृप्ति हो, अस्मिता बढ़े, मैं कुछ हो जाऊँ! फिर किसी भी रूप में माँगते हो। तो अगर तुम मंदिर में गये और तुमने यश, धन, कीर्ति माँगी, सुयश फैले, मेरे परिवार, मेरे कुल का नाम सदा रहे–तो तुम्हारी भक्ति और भी नीचे गिर गयी, राजसी हो गयी।

उससे भी नीचे तामसी भक्ति है। तामसी व्यक्ति राज्य भी नहीं माँगता, यश-कीर्ति भी नहीं माँगता – वह कहता है, फलाँ आदमी मर जाए; इस पे दुख का पहाड़ गिर पड़े; चाहे इसे मिटाने में मैं मिट जाऊँ, मगर इसे मिटा के रहूँगा। उसका मन क्रोध से, तमस से; उसका मन हिंसा से, ईर्ष्या से–आंदोलित होता है। विनाश से!

ये तीन गौणी भक्तियाँ हैं। इन तीन में उत्तर-उत्तर क्रम से पूर्व-पूर्व की भक्ति-कल्याणकारिणी होती है। तामसी से राजसी ज्यादा कल्याणकारिणी है। राजसी से सात्त्विकी ज्यादा कल्याणकारिणी है। और इन तीनों से पराभक्ति ज्यादा कल्याण-कारिणी है।

लेकिन एक बड़ी अनूठी बात है जो समझ लेनी चाहिए – वह यह कि भक्ति का सूत्र तीनों में है। क्योंकि ऐसे तामसी व्यक्ति भी हैं जो सीधा छुरा मार आएँगे, जो भगवान के मंदिर न जाएँगे पूछने कि आज्ञा है, कि इस आदमी को मिटाना है; जो मिटा ही देंगे, जो भगवान को बीच में भी न लेंगे, इस बुरे काम के लिए भी बीच में न लेंगे, भले काम की तो बात दूर। यह तामसी व्यक्ति कम-से-कम मंदिर तक तो

जाता है; इसके जाने का कारण गलत है, माना, मगर जाता ठीक जगह है। गलत आकांक्षा से जाता है, लेकिन जाता ठीक के पास है। इतना तो कम-से-कम ठीक है ही। आँखें इसकी धुंधली हैं, परदा है क्रोध का – कोई बात नहीं। अगर प्रार्थना करता ही रहा, रोता ही रहा प्रार्थना में, तो शायद आँख से धुंधलका हट जाएगा।

जो आदमी धन के लिए, पद के लिए माँगने गया है, कब तक माँगेगा; कभी तो जागेगा, समझेगा कि यह मैं क्या माँग रहा हूँ! माँगते-माँगते, प्रार्थना करते-करते होश भी तो सम्हलेगा; कम-से-कम पायेगा तो मंदिर में अपने को–कभी होश आ जाए। गलत कारण से ही सही, लेकिन ठीक जगह तो है – कभी झलक मिल जाए, तो शायद सात्त्विक हो जाएगा। किसी दिन पायेगा कि 'माँगा परमात्मा से धन और मिला; बड़ी भूल हो गयी, कुछ और बड़ी बात माँग लेते। धन माँगा, क्या पाया! मिल भी गया, तो भी कुछ न पाया। पर अब शिकायत भी किसकी करें, खुद ही माँगा था।' पद पा लेगा, लेकिन पद पा के पाएगा : सिवाय खींचातानी के और कुछ भी नहीं है।

कुर्सी पे कोई ठीक से बैठ थोड़े ही पाता है! कोई टाँग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है; कोई कुर्सी के नीचे बैठा है; कोई कुर्सी को उलटाने की कोशिश कर रहा है। जो कुर्सियों पे हैं, उनको ज़रा गौर से देखो! दो-चार दिन से ज्यादा भी राजधानी से बाहर रहने में घबड़ाहट लगती है : उधर कोई कुर्सी उलटा ही न दे! प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति परदेशों की यात्रा पर जाने में डरते हैं; जब तक गये तब तक, इधर लौट के आने का मौका ही न आए! बहुत बार ऐसा हो जाता है : राष्ट्रपति गये बाहर, फिर लौट ही न सके, क्योंकि तब तक यहाँ दूसरों ने उलटा दी कुर्सी, कोई और चढ़ बैठा। रात चैन से सो नहीं सकते। राजनीतिज्ञ और चैन से सो जाए तो राजनीतिज्ञ ही नहीं। करवटें बदलता रहता है, दाँव बिठाता रहता है, रात भर शतरंज की चालें चलता रहता है। बड़ा खेल है और बड़ी बेचैनी से भरा है। मिल भी गया पद तो पाओगे कि कुछ मिला नहीं, कुछ और माँग लिये होते; मौका आया और क्या माँग बैठे! अवसर मिला था, यह क्या कूड़ा-कचरा माँग के घर आ गये! देने वाला सामने खड़ा था, माँगा भी तो क्या माँगा! तो किसी दिन शायद सत्त्व की ऊर्जा उठे और तुम्हारे मन में भाव उठे : असतो मा सद्गमय! असत्य से सत्य की तरफ ले चल प्रभु!

अगर सत्त्व की प्रार्थना जारी रही, जारी रही, तो किसी न किसी दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ जाएगा : 'परमात्मा से, और सत्य को माँग रहा हूँ! परमात्मा को ही माँग लेता! जब मालिक ही मिलता हो तो फिर और क्या माँगना! किस प्रकाश को माँग रहा हूँ? जब देने वाला ही मिलता हो तो नासमझी है। जब देने वाला ही आ के हृदय में विराजमान होने को राज़ी है, तो मालिक को ही माँग लूँ। फिर और सब तो इसके साथ आ ही गया। सत्य आया, प्रकाश आया, अमृत आया – वह सब

तो इसका अनुषंग है। वे तो इसकी छायाएँ हैं। तो मैं छायाएँ माँग रहा हूँ?'

तब माँगते-माँगते माँग भी निखरती है, सुधरती है। प्रार्थना गलत भी शुरू हो तो भी शुरू तो हो।

अल्लाह अल्लाह ये तेरी तर्कोतलब की वुसअतें
रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया
अव्वल-अव्वल हर कदम पर थीं हजारों मंजिलें
आखिर आखिर इक मुकामे बेमुकाम आ ही गया।

—ये तेरे त्याग और भोग की विशाल उलझनें, हे परमात्मा! लेकिन चलते रहे: रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया!

बहुत तरह के सौंदर्यों ने घेरा है—स्त्री का सौंदर्य था, फूलों का सौंदर्य था, धन का सौंदर्य था, पद का सौंदर्य था—लेकिन रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया, उस पुण्य का सौंदर्य आ ही गया, खोजते-खोजते, टटोलते-टटोलते।

अल्लाह अल्लाह ये तेरी तर्कोतलब की वुसअतें!

—कितने भोग, कितने त्याग, कितनी उलझनें, कितनी विशालताएँ! भरा आकाश है, लेकिन फिर भी—रफ्ता-रफ्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया।

अव्वल अव्वल हर कदम पर थीं हज़ारों मंजिलें।

—पहले-पहले एक-एक कदम पे मुसीबतें खड़ी थीं, हज़ारों रास्ते खुलते थे, चुनाव करना मुश्किल था। चुनते थे, भूलें हो जाती थीं। हज़ार रास्ते खुलते हों तो जो भी चुनोगे, पछतावा बना रहेगा कि नौ सौ निन्यानवे छोड़ दिये, पता नहीं वहाँ क्या था!

और जिंदगी में कुछ तो चुनना ही होगा। धन चुनो, पद छूट जाता है। पद चुनो, धन त्यागना पड़ता है। स्त्री चुनो, पद छूट जाता है। पद चुनो, ब्रह्मचर्य धारण करना पड़ता है। कुछ न कुछ झंझट खड़ी रहती है। एक चुनो, दूसरा छूटता है; दूसरा चुनो, एक छूटता है। और मन में पछतावा बना ही रहता है कि पता नहीं दूसरा विकल्प कहीं ज्यादा सुन्दर हुआ होता। इसलिए मैं ऐसा आदमी नहीं पाता जो सुखी हो, क्योंकि नौ सौ निन्यानवे विकल्प सभी ने छोड़े हैं। एक चुनोगे तो नौ सौ निन्यानवे छूट जाते हैं।

राजनीतिज्ञ आता है। वह कहता है, 'कहाँ की झंझट में पड़ गया! इससे तो थोड़ा धन कमा लेते!' क्योंकि राजनीतिज्ञ को सदा जिसके पास धन है, उसके पैर दबाने पड़ते हैं, उसे पीड़ा बनी रहती है।

धनपति आता है। वह कहता है, 'इतनी मेहनत से धन कमाया, इससे तो इतनी मेहनत में तो राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री हो गये होते। इन लुच्चे-लफंगों की जा के खुशामद करनी पड़ती है। लाइसेंस चाहिए, यह चाहिए, वह चाहिए....!

जिसको देखो, वही दुखी है। क्योंकि तुम कुछ भी पाओगे, वह पाना किसी कीमत पे होगा. और वह कीमत तुम्हें चुकानी पड़ेगी। यहाँ मुफ्त तो कुछ मिलता नहीं।

एक चुनो, नौ सौ निन्यानवे की कीमत चुकानी पड़ती है। रास्ते पे खड़े हो, हज़ार रास्ते खुलते हैं; तुम एक पर ही जा सकते हो। मन में यह बात तुम भूलोगे कैसे कि कहीं नौ सौ निन्यानवे रास्तों पर कोई मंजिल पे ले जाने वाला रास्ता न रह गया हो। और जब तुम कहीं भी न पहुँचोगे, तब तो पछताओगे निश्चित ही कि यह रास्ता तो गलत चुन ही लिया। और चाहे ठीक न हों, एक बात तो पक्की हो ही जाएगी कि यह गलत है।

दूसरे भी ऐसे ही पछता रहे हैं।

अव्वल अव्वल हर कदम पर थीं हज़ारों मंजिलें
आखिर आखिर इक मुकामे-बेमुकाम आ ही गया।

—लेकिन फिर धीरे-धीरे जब टटोलता ही रहता है, टटोलता ही रहता है तो वह मंजिल आ जाती है जो आखिरी मंजिल है, बेमुकाम है; वह मुकाम, जिसके पार फिर कोई और मंजिल नहीं है; जो आखिरी है; जिससे फिर कोई रास्ता नहीं खुलता; जिसमें पहुँचे कि पहुँचे; जिसमें डूबे कि डूबे; जिसमें खोए तो खोए—जैसे सागर में सरिता खो जाती है।

आखिर आखिर इक मुकामे-बेमुकाम आ ही गया!

आज का पहला सूत्र: 'अन्यास्मात् सौलभ्यं भक्तौ।'

अन्य सब की अपेक्षा भक्ति सुलभ है।

अन्य सब की अपेक्षा! योग है, तन्त्र है, ज्ञान है, तप है, त्याग है—सब की अपेक्षा भक्ति सुलभ है। क्यों? सुलभता क्या है भक्ति की? सुलभता यही है कि और सब तो मनुष्य को करने पड़ते हैं—भक्ति होती है। सुलभता यही है कि और सब में तो मनुष्य को अपने ही सिर पे बोझ रख के चलना पड़ता है—भक्ति में समर्पण है; बोझ परमात्मा को दे देना है।

एक सम्राट अपने रथ से आ रहा है। राह पर उसने एक बूढ़े आदमी को अपनी गठरी ढोते देखा, दया आ गयी। रथ रोक के उसे कहा, 'आ जा, तू भी बैठ जा; कहाँ उतरना है, उतार देंगे।' वह रथ में तो बैठ गया। गरीब आदमी, रथ में कभी बैठा नहीं, सिकुड़ा-सिकुड़ा डरा-डरा..... ठीक से बैठा नहीं कि कहीं ज्यादा गरीब आदमी का वजन न पड़ जाए। और तो और, सिर से गठरी भी न उतारी। सम्राट ने कहा कि गठरी नीचे रख दे, अब गठरी क्यों सिर पे रखी है?

उसने कहा कि नहीं मालिक, इतना ही क्या कम है कि मुझको चढ़ा लिया; अब और गठरी का वजन भी आपके रथ पे रखूँ, नहीं नहीं, यह मुझसे न होगा।

और इससे क्या फर्क पड़ता है कि जब तुम ही बैठे हो, तो गठरी तुम सिर पे रखो कि नीचे रखो?

योगी की गठरी सिर पर है, भक्त की रथ में। वह कहता है, परमात्मा पे सब छोड़ दिया, 'अब तू ही सम्हाल!' एक ही कदम उठाता है भक्त। ज्ञानी को बहुत कदम

उठाने पड़ते हैं; क्योंकि ज्ञानी बड़ा कुशल है, बड़ा होशियार है । योगी को एक-एक सीढ़ी चढ़नी पड़ती है । भक्ति एक छलाँग है । भक्त कहता है कि अब हमारी समझ के बाहर है । हमारी समझ से चलेंगे तो पक्का है कि कभी न पहुँचेंगे । तुझ पे भरोसा करते हैं ।

जैसे हम कहते हैं, प्रेम अंधा है, लेकिन प्रेम के पास ऐसी आँखें हैं जो आँख वालों के पास नहीं । ऐसे ही भक्ति भी अंधी है; लेकिन भक्ति के पास ऐसी आँखें हैं कि आँख वालों के पास भी नहीं है । भक्त कहता है, सौंपा तेरे पास ! तूने दिया जन्म, तूने दिया जीवन, तू ही चला ! यह पतवार ले ! हम निश्चित सोते हैं । तू वैसे ही चला रहा है, हम नाहक बीच-बीच में आते हैं !

योगी तैरता है नदी की धारा के विपरीत । भक्त बहता है नदी के साथ । इसलिए सुगम है । भक्त कहता है, 'हम बहेंगे । अगर तुझे गलत जगह ले जाना हो तो ले जा, हम वहीं जाने को राजी हैं । यह भक्त की हिम्मत है । भक्ति बड़ा साहस है—दुस्साहस है । जुआरी जैसा दाँव लगता है भक्त अपना सारा, अपने पास कुछ भी नहीं रखता । वह कहता है, 'ठीक है, अब तुझे गलत ही ले जाना है तो स्वीकार है । अगर डुबाना है तो सही, डुबा ।'

ज़रा सोचो । ज़रा इस बात का स्वाद लो । ज़रा इसको भीतर हृदय में उतरने दो : अगर तुझे डुबाना है, सही, डुबा !—तो क्या किनारा मिल न जाएगा इसी डूबने में ? तो क्या मँझधार में किनारा उपलब्ध न हो जाएगा ? क्योंकि जो डूबने को राजी हो गया, उसे कैसे डुबाओगे ?

तुमने कभी देखा, जिंदा आदमी डूब जाता है नदी में, मुर्दा तो ऊपर आ जाता है ! ज़रूर मुर्दे को कोई तरकीब मालूम है जो जिंदा को नहीं मालूम । जिंदा आदमी डूब जाता है; चेष्टा करता था बचने की, लड़ रहा था नदी से, शोरगुल मचाता था, चिल्लाता था कि बचाओ-बचाओ, अपना सब किया था जो कर सकता था और डूब गया । मुर्दे को क्या तरकीब मालूम है ? मरते ही आदमी ऊपर आ जाता है, लाश तैरने लगती है ।

भक्त जीते-जी मर जाता है । वह कहता है, हम हैं ही नहीं, तू ही है । अगर भटकेगा तो तू भटकेगा, हम कहाँ भटकेंगे ! अगर डूबेगा तू डूबेगा, हम कहाँ डूबेंगे । अगर तुझे डूबने में मजा है तो हम कौन हैं जो बीच में बाधा डालें ! हम हैं ही कौन ! हम तो एक भ्रम हैं—सत्य तो तू है !

इसलिए भक्ति सुगम है ।

लड़खड़ा के जो गिरा पाँव पे साकी के गिरा
अपनी मस्ती के तसद्दुक ये मुझे होश रहा ।

लड़खड़ा के जो गिरा पाँव पे साकी के गिरा । भक्त लड़खड़ा के गिर जाता है । वह कोई सम्हल के खड़े रहने वालों में से नहीं है । लेकिन इतना उसकी बेहोशी में भी

होश रहता है कि वह गिरता साकी के पैरों पर है, वह गिरता परमात्मा के पैरों पर है । इतनी बेहोशी में भी इतना होश रखता है, बस कि पैर तेरे हों तो फिर क्या गिरना और क्या खड़ा होना—सब बराबर है ! क्या मिटना और क्या होना—सब बराबर है ! रात और दिन बराबर है । जन्म और जीवन, मौत और जीवन बराबर है । तेरे पैर पर !

भक्ति सुगम है । लड़खड़ा के गिरना भी अगर न हो सकेगा तो फिर और क्या होगा ? ज़रा सोचो ! ज़रा ध्यान करो ! भक्ति यह कहती है कि गिर पड़ो । योगी सम्हल के खड़ा होता है, साधता है । भक्ति कोई साधना नहीं है । हम कहते हैं, भक्ति-साधना ! भाषा बड़ी कमजोर है । भक्ति साधना नहीं है । इसलिए पुराने दिनों में फासला बहुत साफ था—भक्ति थी उपासना । और बाकी साधनाएँ हैं । योग साधो, ध्यान साधो—साधनाएँ हैं । भक्ति है उपासना ।

उपासना का अर्थ होता है : 'उसके पास होना, बस । उप + आसन = 'उसके' पास बैठ जाना, गिर जाना उसके चरणों में । और 'उसके' चरण सब जगह हैं । इसलिए तुम यह मत पूछना कि कहाँ गिरें ! इसीलिए तो बेहोशी में भी इतना होश रहा आता है । अगर 'उसके' चरण कहीं एक जगह होते, काबा में होते कि काशी में होते, तो तुम पूना में कितने ही होश से गिरो, क्या फर्क पड़ता है !

कबीर जिंदगी भर काशी रहे, मरते वक्त काशी छोड़ दी । लोग मरते वक्त काशी जाते हैं । मरने के लिए ही काशी जाते हैं—काशी-करवट ! तो काशी में रहते ही हैं मरे-खुरे लोग, मरने की तैयारी कर रहे हैं । तुम अगर काशी जाओ तो बूढ़े, बुढ़ियाएँ, विधवाएँ तैयारी में बैठी हैं, घाटों पर कि करवट कब हो जाए । क्योंकि खयाल है कि काशी मरे तो उसके चरणों में मरे । खयाल है कि काशी मरे तो स्वर्ग निश्चित है ।

कबीर हट गये । भक्तों ने कहा, 'यह क्या कर रहे हैं ? जिंदगी भर काशी रहे, अब मरते वक्त हटते हैं ? कबीर ने कहा, अगर काशी में मरने के कारण उसके पास पहुँचे तो फिर उसके चरण बड़े सीमित हो गये । तो काशी के पास एक छोटा-सा गाँव है : मगहर । जैसे काशी की कहावत है कि काशी में जो मरता है, स्वर्ग जाता है, वैसी ही कहावत मगहर के संबंध में है कि मगहर में जो मरता है, गधा होता है । मगहर में कोई मरे न, इसलिए मगहर के लोगों ने फैला दिया होगा कि मरते वक्त सब लोग काशी पहुँच जाएँ । यह होशियारों की तरकीब रही होगी । कबीर मरते वक्त मगहर पहुँच गये । उन्होंने कहा कि अगर यहाँ मर के उसके चरणों में पहुँचे तो ही कोई बात है । मगहर में ही मरे ।

पैर उसके बड़े हैं । पैर उसके सब जगह हैं । एक बार यह समझ में आ जाए कि वही है, तुम कहीं भी गिरो, साकी के पैरों में ही गिरे । यह तुम्हारे होश का इतना सवाल नहीं है जितना इस समझ का सवाल है कि उसके पैर ही सभी जगह हैं । वही

है। कण-कण में वही है। क्षण-क्षण में वही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

भक्ति सुगम है, क्योंकि भक्ति की न कोई विधि है न विधान है।

रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर के मंदिर में पुजारी रखा तो अड़चन हो गयी ट्रस्टियों को, निकालने की नौबत आ गयी। क्योंकि रामकृष्ण पुजारियों जैसे पुजारी तो न थे—पुजारी थे ही नहीं, भक्त थे। पुजारी और भक्त में बड़ा फर्क है। पुजारी यानी धंधे में लगा है, व्यवसायी है।

गुरजिएफ का कल रात में एक वचन पढ़ता था। उसके बहुत अद्भुत वचनों में एक वचन है कि अगर धर्म से छुटकारा पाना हो तो धर्मगुरुओं के पास रहो; छुटकारा हो जाएगा—देख के सारा उपद्रव, जाल, षड्यंत्र। एक बात पक्की है कि पुजारियों को भगवान पे बिलकुल भरोसा नहीं है—हो ही नहीं सकता। पुजारियों के पास तो तुम्हें भी समझ में आ जाएगा कि यह सब जाल है। रोज पूजा करते हैं, पुजारी को कुछ होता नहीं, खुद को कुछ नहीं होता, खुद भीगा ही नहीं; कर आता है पूजा, घर आ जाता है; तनखाह ले लेता है, निपटारा हो जाता है। प्रार्थना भी बेच देता है। पूजा भी बेच देता है।

रामकृष्ण पुजारी न थे, भक्त थे। वहीं मुश्किल हो गयी। तो कभी तो आधी रात पूजा शुरू हो जाती, कभी दिन भर पूजा न होती। उन्होंने कहा कि यह नहीं चलेगा, यह किस तरह की पूजा है? व्यवस्था होनी चाहिए, विधि-विधान होनी चाहिए। रामकृष्ण ने कहा, फिर सँभालो अपना मंदिर, यह हमसे न होगा। जब हृदय से ही न उठती हो तो हम कैसे करेंगे? करके क्या धोखा देंगे भगवान को? और धोखा दे के उसको हम धोखा दे कैसे पाएँगे। दुनिया को धोखा हो जाएगा कि पूजा हो रही है, लेकिन उसको थोड़े ही धोखा होगा। तुम हमको फँसाओगे, नरक भिजवाओगे। वह तो देख ही लेगा कि यह आदमी धोखा दे रहा है। यह हमसे न होगा। कभी रात दो बजे उठता है भाव। यह अपने हाथ में नहीं है। उठता है तब उठता है, जब नहीं उठता है नहीं उठता है।

कभी दिन-दिन भर पूजा चलती भूखे-प्यासे; और कभी दिन बीत जाते और मंदिर खाली पड़ा रहता और कोई दीया भी न जलता। रामकृष्ण ने कहा, जब जलेगा, प्रामाणिकता से जलेगा; जब नहीं जलेगा, नहीं जलेगा। हम क्या करें, उसकी मर्जी, जलवाना होता तो भाव जगाता। जब सभी उस पे छोड़ दिया, तब यह भी क्या हिसाब अपने पास रखना। जब उसको दीये की ज़रूरत होगी, बुला लेगा; और जब उसको घंटनाद सुनना होगा, बुला लेगा, और जब उसे गीत सुनने का रस आएगा, कहेगा, 'रामकृष्ण गाओ!' हम गाएँगे, नाचेंगे। अब जब सुनने वाला ही वहाँ नहीं है, अभी उसकी मौज ही नहीं है, शायद सोता हो विश्राम करता हो, तो हम नाहक बीच में खलल डालें? तुम हमको मत फँसा देना।

खैर, बात टली कि चलो, चलने दो; बात जँची भी कि बात तो ठीक ही है। फिर और उलझनें आने लगीं। यह भी पता चला कि यह पहले खुद ही को भोग लेता है—वहीं मंदिर में खड़े-खड़े—जो थाली भगवान के लिए आयी है, पहले खुद ही चख लेता। फिर झूठा! फिर ज़रा ज्यादा हो गयी बात। ट्रस्टियों ने कहा, 'अब ज़रा सीमा के बाहर हो गयी। इसका क्या हिसाब है?' रामकृष्ण ने कहा, 'हिसाब! मुझे पता है। मेरी माँ जब भी कुछ बनाती थी, पहले खुद चखती थी; जब खुद ही न जँचे तो मुझे नहीं देती थी। तो मैं बिना चखे नहीं चढ़ा सकता। झूठा! वही मुझसे चख रहा है। लेकिन मैं बिना चखे नहीं चढ़ा सकता; क्योंकि पता नहीं चखाने योग्य है भी! जब अच्छी चीज बनती है तो मैं चढ़ाता हूँ, जब नहीं बनती अच्छी चीज तो नहीं चढ़ाता। यह भगवान को चढ़ा रहे हैं, कोई खेल नहीं है!'

यह भक्त था, यह पुजारी नहीं था।

भक्ति सुगम है, अगर तुम उत्फुल्लित हो। भक्ति बिलकुल सरल है। अगर तुम्हारे पास हृदय हो—

क्या पूजन क्या अर्चन रे
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का कंपन रे
क्या पूजन क्या अर्चन रे!

तो कोई गंगाजल थोड़े ही चढ़ाना पड़ता है, आँसू ही उमड़े आते हैं।

पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे!

अक्षत पुलकित रोम—यह जो पुलकित रोम है, यही अक्षत है। यह जो आनंद से विभोर होती हुई भाव-दशा है, यही अक्षत है।

मधुर मेरी पीड़ा का कंपन रे! और इसी पीड़ा को चढ़ाता हूँ। जो मेरे पास है वही चढ़ाता हूँ। जो मैं हूँ वही चढ़ाता हूँ।

क्या पूजन क्या अर्चन रे!

तो भक्त की कोई विधि नहीं है, कोई विधान नहीं है। इसलिए सुगम है।

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन
अगरु धूम-सी साँस सुधिगंध-सुरभित
बनी स्नेह लौ आरती चिर अकंपित
हुआ नयन का नीर अभिषेक जलकण
हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन

प्रेम की बात है: धूलि को चढ़ा दो, चन्दन हो जाती है। और नहीं तो चंदन जिंदगी भर घिसते रहो। घिस रहे हैं लोग जिंदगी भर से चन्दन—और चंदन धूलि हो गया। धूलि को चढ़ा दो। बात, तुम क्या चढ़ाते हो, इसकी है ही नहीं—कौन चढ़ाता है, किस हृदय से चढ़ाता है!

हृदय हो तो भक्ति सुगम है। हृदय न हो तो भक्ति सबसे ज्यादा दुर्गम हो जाती है।

'अन्य सबकी अपेक्षा भक्ति सुलभ है।'

जब नारद ने ये वचन कहे थे, तब जरा भी इनको समझाने की जरूरत न रही होगी। वे लोग, वह समय और था। हृदय स्वाभाविक था। बुद्धि बड़ी दूर थी। चेष्टा करके लोग बुद्धि का उपाय करते थे, उपयोग करते थे। सहज तो हृदय का उपाय था, उपयोग था।

आज बात उलटी हो गयी है। आज सब सरल मालूम पड़ता है भक्ति को छोड़ कर। आज योग साधना हो, कोई कठिन नहीं मालूम पड़ता। इसलिए तो योग का इतना प्रचार सारी दुनिया में होता चला जाता है। आसन लगाओ, व्यायाम करो, प्राणायाम करो, शीर्षासन करो—समझ में आता है, बुद्धि की पकड़ में आता है। यह बात जरा पौदगलिक है, पार्थिव है। समझ में आता है—वैज्ञानिक की भी समझ में आता है। इसलिए बहुत-से योगी अमरीका और योरूप में जा के वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं में बैठे हैं, तार वगैरह लगवा के जाँच करवा रहे हैं। वैज्ञानिक को भी समझ में आता है कि अगर एक खास ढंग से श्वास ली जाए तो रक्तचाप कम हो जाता है; एक खास ढंग से श्वास ली जाए तो मस्तिष्क की गतिविधि अल्फा तरंगों से भर जाती है—वैसे ही जैसे गहरी नींद में होता है, शांत हो जाती है। यह तो वैज्ञानिक की भी समझ में आता है कि सारी चीज़ें शारीरिक हैं, बुद्धि इनको पकड़ पाती है।

भक्त को तुम बिलकुल न पकड़ पाओगे। रामकृष्ण की तुम कितनी ही जाँच करो, हाथ कुछ भी न आएगा। हाँ, किसी योगी को अगर प्रयोगशाला में ले जाओ, बहुत कुछ हाथ में आएगा; क्योंकि उसके उपकरण भी पौदगलिक हैं, पार्थिव हैं। श्वास की जाँच हो सकती है। रक्तचाप की जाँच हो सकती है। मस्तिष्क के भीतर चलती विद्युत-तरंगों की जाँच हो सकती है। और यह बात सिद्ध हो सकती है प्रयोग से कि एक विशेष प्राणायाम करने से शरीर और मन को लाभ होता है। लेकिन आत्मा की की क्या जाँच होगी? हृदय को कैसे पहचानोगे? अभी तक प्रेमी को पकड़ने का, प्रेमी को जाँचने का कोई उपाय नहीं मिला, तो भक्ति की तो बात ही मुश्किल है।

तो भक्ति, जब नारद ने यह सूत्र लिखा था, निश्चित ही अन्यस्यात् सौलभ्यं भक्तौ—तब भक्ति बड़ी सुलभ थी। भक्ति अब भी सुलभ है, आदमी जटिल हो गया है। आदमी बड़े कठिन हो गये। आदमी बड़े सोच-विचार में उलझ गये, खोपड़ी में जकड़ गये, हृदय तक जाने के द्वार-दरवाजे बंद हो गये। हृदय करीब-करीब भूल ही गया है।

जब मैं तुमसे हृदय की बात कर रहा हूँ, तब अगर तुम्हें ज्यादा से ज्यादा याद आएगी तो फेफड़ों की याद आएगी। जहाँ धक्-धुक् चल रही, श्वास चल रही है—वह फेफड़ा है, हृदय नहीं। वह फेफड़ा तो बदला जा सकता है, प्लास्टिक का लगाया

जा सकता है। हृदय भी प्लास्टिक का हो सकता है? फेफड़ा हो सकता है और शायद इस फेफड़े से बेहतर होगा, क्योंकि प्लास्टिक जल्दी खराब नहीं होता। और प्लास्टिक आसानी से बदला जा सकता है। जिस दिन प्लास्टिक के फेफड़े होंगे उस दिन लोग हृदय के दौरे से न मरेंगे। बदल देंगे। पार्ट ही बदलने की बात है। ले गये गैरेज में, बदलवा लाए, दूसरा लगवा लिया।

लेकिन हृदय कहीं और है। फेफड़े से हृदय का कोई सीधा संबंध नहीं है। फेफड़ा और हृदय पास-पास हैं, यह बात सच है। जहाँ फेफड़ा है, उसी के पीछे कहीं छिपा हुआ हृदय है। फेफड़ा शरीर का हिस्सा है; हृदय, आत्मा का। यहाँ बड़ी भूल हो जाती है। इसलिए तुम जब प्रेम से भरते हो तो तुम फेफड़े पे हाथ रखते हो—वस्तुतः तुम हृदय पे हाथ रखना चाहते हो, लेकिन फेफड़ा भी वहीं पास है। इसलिए जब तुम वैज्ञानिक से कहोगे कि मेरा हृदय बड़ा प्रफुल्लित हो रहा है भगवान से, तो वह कहेगा हम जाँच कर के देख लेते हैं। वह फेफड़े की जाँच करेगा, क्योंकि फेफड़े की ही जाँच हो सकती है।

योग का संबंध तो फेफड़े से है; भक्ति का संबंध हृदय से है। ज्ञान का संबंध तो खोपड़ी से है, सिर से है, विचार की व्यवस्था से है। भक्ति का संबंध भाव की व्यवस्था से है। वह बड़ी और बात है। वह दूसरा ही आयाम है। तो तुम जब सोच-विचार छोड़ोगे, जब तुम सोच-विचार का समर्पण करोगे, जब तुम उसके चरणों में रख आओगे—फूल वगैरह बहुत रख चुके, अब तो विचारों को रख आओ उसके चरणों में। चढ़ाना हो तो सिर चढ़ाओ, बाकी कुछ चढ़ाने जैसा नहीं है। सिर चढ़ जाए तो तुम एक नये केन्द्र-बिन्दु से जीने लगोगे—हृदय से। और भक्ति बड़ी सुलभ है।

हृदय सजीव हो, हृदय जीवंत हो, हृदय पुनः गतिवान हो जाए, हृदय के सरोवर में फिर तरंगें उठें, हृदय के वृक्ष पे फिर फूल-फल लगें—तो भक्ति बड़ी सुलभ है। इसलिए भक्ति का जो अनिवार्य कदम है, वह श्रद्धा है।

तर्क विचार में ले जाता है; श्रद्धा, भाव में। तर्क अगर सफल हो तो अहंकार में ले जाता है; अगर विफल हो तो विषाद में। श्रद्धा निरहंकार में ले जाती है, अगर सफल हो; अगर असफल हो तो संताप में। लेकिन श्रद्धा असफलता जानती ही नहीं। अगर श्रद्धा हो तो सफल ही होती है। तर्क की सफलता सुनिश्चित नहीं है; सफल हो तो अहंकार को प्रगाढ़ कर जाएगा; असफल हो तो अहंकार को क्षत-विक्षत कर जाएगा। श्रद्धा सफल ही होती है, अगर हो। हाँ, अगर न हो तो असफल होती है; लेकिन न होने को असफल कहना ठीक नहीं।

......'क्योंकि भक्ति स्वयं प्रमाणरूप है और इसके लिए अन्य प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं।'

तर्क प्रमाण जुटाते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'ईश्वर का प्रमाण क्या है ? वे सिर के बल ईश्वर को खोजने चले हैं। वे तर्क के सहारे ईश्वर को खोजने चले हैं। वे कहते हैं, प्रमाण क्या है ? पहले सिद्ध करें कि ईश्वर है।' उनको पता ही नहीं है कि ईश्वर को सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो तर्क ईश्वर को सिद्ध करता है वही तो उस तक पहुँचने में बाधा है। इसे थोड़ा खयाल में लेना। जिसको तुमने अमृत समझा है, वही तो जहर है वहाँ। इसलिए तर्क से अगर कोई ईश्वर को सिद्ध भी कर दे, तो ईश्वर सिद्ध नहीं होता—तर्क ही सिद्ध होता है। मुझे फिर दोहराने दें। तर्क से अगर कोई ईश्वर को सिद्ध कर दे तो इससे ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तर्क ही सिद्ध होता है। इससे तर्क ईश्वर से ऊपर हो जाता है, नीचे नहीं। और ईश्वर के ऊपर कोई चीज़ हो जाए, ईश्वर कहाँ रहा ! ईश्वर सर्वोपरि है।

थोड़ा भाव करो। ईश्वर सर्वोपरि है। इसलिए तर्क से सिद्ध नहीं हो सकता, नहीं तो तर्क उसके ऊपर हो जाएगा। फिर जब तर्क से सिद्ध हुआ तो वह तर्क के लिए मोहताज हो जाएगा। और जो तर्क से सिद्ध हो सकता है, वह तर्क से असिद्ध भी हो सकता है। तर्क दोधारी तलवार है। और तर्क वेश्या जैसा है। वह पक्ष में भी हो सकता है, विपक्ष में भी हो सकता है। वकील है तर्क। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम अगर गये वकील के पास तो वह तुम्हारे पक्ष में हो जाता है। तुम्हारा विरोधी चला जाए, वह उसके पक्ष में हो जाएगा। पैसे की बात है।

एक रास्ते पर एक बच्चा रो रहा था। और एक दूसरा बच्चा बड़े क्रोध में भुनभुनाया खड़ा था। और तीसरा बच्चा आइसक्रीम खा रहा था। राह चलते किसी राहगीर ने पूछा, क्या मामला है, यह बच्चा क्यों रो रहा है ? तो आइसक्रीम खाते बच्चे ने कहा, 'इसकी आइसक्रीम उस दूसरे लड़के ने छीन ली थी, इसलिए यह रो रहा है।' तो उसने कहा, 'लेकिन आइसक्रीम तो उस दूसरे लड़के पास नहीं है; वह क्रोध में भुनभुनाया खड़ा है ! आइसक्रीम तो तुम खा रहे हो।' उसने कहा, 'मैं इस लड़के का वकील हूँ।'

वकील को आइसक्रीम से मतलब है।

तर्क वकील है। उसकी कोई निष्ठा नहीं है। वह तुम्हारे साथ हो सकता है, वह तुम्हारे विपरीत हो सकता है। इसलिए जिन तर्कों से परमात्मा को सिद्ध किया गया उन्हीं तर्कों से उसे असिद्ध भी किया गया है। इसलिए तो नास्तिक और आस्तिक के बीच का द्वन्द्व समाप्त नहीं होता, वह कभी होगा ही नहीं। वह तो बदलता रहता है। कभी नास्तिक जीतता मालूम पड़ता है, कभी आस्तिक जीतता मालूम पड़ता है। लेकिन वस्तुतः दोनों नहीं जीतते—तर्क जीतता है; वकील जीतता है। जितने तर्क परमात्मा के लिए दिये गये हैं, ठीक वे ही तर्क परमात्मा के विपरीत दिये गये हैं; कोई फर्क नहीं है उनमें।

इसलिए जिसने तर्क के आधार पर अपनी श्रद्धा बनायी, उसने रेत पर अपना

भवन बनाया; वह खिसक जाएगी रेत। अगर तुम तर्क के कारण आस्तिक हो तो तुम नास्तिक ही हो, छिपे हुए, प्रच्छन्न, तुममें कोई आस्तिकता नहीं।

तुम मुझसे परिभाषा पूछो नास्तिक की : जिसकी तर्क में श्रद्धा है वह नास्तिक। जिसकी श्रद्धा में श्रद्धा है वह आस्तिक। इसलिए परम आस्तिकों ने कोई तर्क नहीं दिये हैं; उनके वक्तव्य सीधे वक्तव्य हैं। उपनिषद सिर्फ कहते हैं, ईश्वर है। तुम पूछो 'क्यों', वे कहते हैं, कि 'क्यों का क्या सवाल—है। जानना हो, जान लो, न जानना हो, मत जानो। चलना हो उसकी तरफ, चल पड़ो; पीठ करना हो, पीठ कर लो। लेकिन उसका होना तुम्हारे सोच-विचार पर निर्भर नहीं है। तुम्हारा सोच-विचार ही उसके होने पे निर्भर है।

विवेकानंद बहुत ज्ञानियों के पास गये। नास्तिक थे। प्रगाढ़ तार्किक थे। फिर रामकृष्ण के पास भी गये। सोचा था, वही विवाद जो दूसरी जगह कर दिया था वहाँ भी कर लेंगे। वहाँ ज़रा मुश्किल में पड़ गये। क्योंकि जा के उन्होंने शुरू किया, मण्डली साथ ले गये थे दस-पन्द्रह मित्रों की, जो देखने गये थे, और जो सब सोच के गये थे कि बड़ी फजीहत होगी इस गरीब रामकृष्ण की—गरीब ही लगता है तार्किक को भक्त तो, दीन-हीन लगता है कि बेचारे को कुछ पता नहीं; क्योंकि तर्क के सिक्के पहचानता है तार्किक और वे सिक्के इसके पास दिखायी नहीं पड़ते, इसलिए गरीब है। विवेकानंद ने अपनी पुरानी अकड़ से, पुराने ढंग से पूछा कि क्या ईश्वर है, सिद्ध कर सकते हैं ? रामकृष्ण हँसने लगे। उन्होंने कहा, 'सिद्ध करने की बात ही पूछना बेकार है। तुझे जानना है ? तुझे देखना है ? तुझे मिलना है ? अभी मिलवा दूँ ? तैयारी है ?'

यह सोचा ही नहीं था कि कोई आदमी ऐसी बात कहेगा। इसका उत्तर तैयार भी न था। क्योंकि तार्किक तो सभी चीज़ों का रिहर्सल किये होता है। उसके पास कुछ सहज उत्तर नहीं हो सकते—तैयार ही होते हैं। यह तो सोचा ही नहीं था कि कोई आदमी यह कहेगा। बहुतों के पास गये थे, वे पंडित थे; उनसे कहा कि सिद्ध करो ईश्वर है ! वे सिद्ध करने में लग गये। फिर उनके तर्क पकड़ के काट डाला। इस आदमी ने कहा कि बकवास छोड़ो, इतना समय किसके पास खराब करने को है ! तुझे देखना है ? तू हाँ कह या न !

वह मण्डली थोड़ी शंकित हो गयी कि यह मामला क्या है ! ऐसा सोचा ही नहीं था कि ईश्वर से ऐसा कुछ. . . . . । और इसके पहले कि विवेकानंद कुछ कहें, रामकृष्ण ने अपना पैर उनकी छाती से लगा दिया। अब यह कोई ढंग है ! ये कोई सज्जनता, शिष्टाचार के ढंग हैं। यह बेचारा तर्क ले के आया है, सिद्ध करने की बात ले के आया है। यह कोई बात हुई ! यह कोई व्यवहार हुआ ! और विवेकानंद बेहोश हो गये। और जब होश में आए तो सारी दुनिया बदल गयी थी। भागे, घबड़ा गये बहुत, यह क्या हो गया ! कुछ समझ में न आए। कुछ का कुछ हो गया। 'यह आदमी

कहीं और घसीट के ले गया, किसी अज्ञात लोक में। चाँद-तारों के पार कहीं! सारी सीमाएँ उखड़ गयीं। सब विचार वगैरह दूर बहुत दूर सुनायी पड़ने लगे। अपने ही विचार बहुत दूर सुनायी पड़ने लगे। अपने से ही नाता न रहा। अस्तव्यस्त, डिस-ओरियन्टिड! जड़ें उखड़ गयीं। भागने लगे। रामकृष्ण ने कहा, 'कहाँ भागता है? जब भी फिर देखना हो, आ जाना!'

नास्तिक गया! फिर विवेकानंद ने लिखा है कि बहुत चेष्टा की कि इस आदमी के पास न जाऊँ, कितना अपने को बचाया, पर कुछ खींचने लगा। कोई अदम्य, कोई अज्ञात तार! लाख उपाय करूँ, लेकिन सोते-जागते यही आदमी याद आने लगा। वह चरण छाती पे पड़ जाना! पुराना मर ही गया!

कहाँ फँस गये – विवेकानंद सोचे! अच्छे-भले थे। सब चलता था। तर्क था, बुद्धिमत्ता थी, पाँडित्य था, अकड़ थी, अहंकार था, प्रतिभा थी। लोग मानते थे। अगर न गये होते रामकृष्ण के पास तो भारत में एक बड़ा महापंडित और एक बड़ा दार्शनिक पैदा हुआ होता। हीगल और काँट की हैसियत का व्यक्ति भारत पैदा करता। लेकिन रामकृष्ण ने सब गड़बड़ा दिया। बहुत बचने कोशिश की, न बच सके; रोक-रोक के भी जाना पड़ता। और हर बार इस आदमी का सान्निध्य कुछ तोड़ देता। और हर बार यह आदमी किसी और लोक में ले जाता। इसकी मौजूदगी ने द्वार खोल दिया।

आस्तिक कोई तर्क की बात नहीं है।

'क्योंकि भक्ति स्वयं प्रमाणरूप है।'

'स्वयंप्रमाणत्वात्!' इसके लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

परमात्मा मौजूद है – तुम्हारी मौजूदगी चाहिए। सोच-विचार का कुछ लेना-देना नहीं है। परमात्मा ने सब तरफ से तुम्हें घेरा है।

तू अबोध, आग्रह-निग्रह का
भेद नहीं कर पाया
जो स्वरूप में स्थित है उसमें
स्वयं अरूप समाया
जिन चरणों का सहज आगमन
तुम्हें न क्षण भर भाया
उन चरणों में अरुण विभामय
एक चरण था मेरा।
रही चेतना बनी अहिल्या
जागी नहीं अभागी
जान-बूझ कर बधिर बन गया
अनहद का अनुरागी

जिन वचनों का नम्र निवेदन
तुम को लगा पराया
उन वचनों में दिव्य अर्थमय
एक वचन था मेरा।

जो तुमने सुना है, उसमें परमात्मा भी बोला है। जो तुमने देखा है उसमें परमात्मा दृष्य हुआ है। तुमने जो छुआ है, उसमें तुमने परमात्मा को भी छुआ है। क्योंकि वह सब जगह मौजूद है, सब तरफ से मौजूद है। वही मौजूद है। उसके अतिरिक्त और किसी चीज़ की कोई मौजूदगी नहीं है। ज़रा उतरो, अपने विचारों के परी-लोक से नीचे उतरो! ज़रा अपने विचारों के व्यर्थ उत्ताप को नीचे लाओ। ज़रा अपने ज्वर को कम करो। थोड़े शांत हो के ज़रा देखो! भाव से ज़रा भरो! वही है! उसके लिए किसी प्रमाण की कोई ज़रूरत नहीं है। वह स्वयं प्रमाणरूप है। वह स्वयंसिद्ध है।

'भक्ति शान्तिरूपा और परमानंदरूपा है।'

उसके लिए प्रमाण की कोई ज़रूरत नहीं है। तुम शांत हो जाओ–उसका प्रमाण मिल जाता है। तुम्हारे विचार में, तुम्हारी तर्कसरणी में नहीं, तुम्हारी शान्ति में उसका प्रमाण मिलता है।

'भक्ति शान्तिरूपा और परमानन्दरूपा है।'

जैसे ही तुम शान्त हुए, परमानंद उतरा। उसी परमानंद में परमात्मा का साक्षात्कार है। हमने आनंद को उसकी परिभाषा माना है, इसलिए उसको सच्चिदानंद कहा है। हमने किसी और चीज़ को उसकी परिभाषा नहीं माना। सत्, चित्त और आनंद! वह है, यानी सत्। वह चैतन्यस्वरूप है, यानी चित्त। वह आनंद स्वरूप है, यानी आनंद। सच्चिदानंद!

तुम क्या करो जिससे वह तुम्हारे पास झलक आए? तुम क्या करो, जिससे तुम्हारी आँख से घूँघट उठे?

भक्ति शान्तिरूपा है! तुम शान्त हो जाओ! इसलिए सारे ध्यान, सारी प्रार्थना, सारा पूजन-अर्चन, सब एक ही बात के पास हैं: तुम शान्त हो जाओ। तुम उसे देखना चाहते हो? शांत हो जाओ। उत्तेजित न रहो। जैसे ही तुम ठहरे, शान्त हुए–वह पास आया। जैसे ही तुम ठहरे, शान्त हुए–वह सुनायी पड़ा।

'लोकहानि की चिन्ता भक्त को नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह अपने-आप को और लौकिक, वैदिक कर्मों को भगवान के अर्पण कर चुका है।'

यह बड़ा क्रान्तिकारी सूत्र है: लोकहानि की चिन्ता! लोग क्या सोचते, अच्छा सोचते कि बुरा सोचते, तुम्हें पागल समझते कि बुद्धिमान समझते, तुम्हें दीवाना मानते हैं.... लोग क्या सोचते हैं, लोक में तुम्हारी प्रतिष्ठा बनती है भक्ति से

या खोती है—यह चिन्ता भक्त को नहीं करनी चाहिए । क्योंकि भक्त ने अगर यह चिन्ता की तो वह भक्त ही न हो पायेगा ।

लोग सदा ही ठीक को प्रतिष्ठा नहीं देते; अक्सर तो गैर-ठीक को ही प्रतिष्ठा देते हैं, क्योंकि लोग गैर ठीक हैं । लोग अक्सर ही सत्य का सम्मान नहीं करते, क्योंकि लोग झूठे हैं । लोग झूठ का ही सम्मान करते हैं । लोगों के सम्मान पर मत जाना । लोक में हानि हो कि लाभ हो, यह तुम विचार ही मत करना, अन्यथा भक्ति का कदम न उठ सकेगा । भक्त को तो इतना साहस चाहिए कि लोग अगर उसे पागल समझ लें तो वह स्वीकार कर ले कि ठीक है । परमात्मा के लिए पागल हो जाना संसार की समझदारी से बहुत बड़ी समझदारी है । परमात्मा के लिए पागल हो जाना संसार की समझदारी से ज्यादा बहुमूल्य है, चुनने-योग्य है । धन की खोज में समझदार रहना कोई बड़ी समझदारी नहीं है । पद की खोज में बुद्धिमान रहना कोई बड़ी बुद्धिमानी नहीं, धोखा है ।

बना कर कोटि सीमाएँ हृदय को बाँधती दुनियाँ
विशद विस्तार कर सकना बहुत मुश्किल हुआ जग में ।

—हज़ार सीमाएँ संसार बनाता है । हज़ार दीवालें खड़ी करता है । संसार एक बड़ा कारागृह है ।

बना कर कोटि सीमाएँ हृदय को बाँधती दुनियाँ
विशद विस्तार कर सकना बहुत मुश्किल हुआ जग में ।

—तो जिसको भी उठना है पार, उसे इन सीमाओं और इन सीमाओं के आसपास बँधे हुए जाल की उपेक्षा करनी होगी । नहीं कि तुम जान के संसार की सीमाएँ तोड़ो; नहीं कि तुम जान के उनकी मर्यादा के विपरीत जाओ—लेकिन अगर ऐसा हो जाए कि मर्यादा और परमात्मा में कुछ चुनना हो तो तुम मर्यादा मत चुन लेना । हाँ, अगर परमात्मा को चुन के भी मर्यादा सम्हलती हो, शुभ । अगर परमात्मा को खोजते हुए संसार की व्यवस्था भी सम्हलती हो, सौभाग्य । तो जान के मत तोड़ना ।

इसलिए तत्क्षण नारद दूसरा सूत्र कहते हैं : 'जब भक्ति में सिद्धि न मिले, तब तक लोक-व्यवहार का त्याग नहीं करना चाहिए, किन्तु फल त्याग कर उस भक्ति का साधन करना चाहिए ।' धीरे-धीरे, संसार न छूटे अभी, कोई ज़रूरत भी नहीं है, लेकिन संसार से कुछ फल पाने की आकाँक्षा छोड़ देनी चाहिए । अभी मर्यादा तोड़ने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन मर्यादा से जो सम्मान मिलता है, वह छोड़ देना चाहिए । कारागृह में रहने से लोग जो पूजा देते हैं उस पूजा को, कह देना चाहिए, कोई ज़रूरत नहीं; उस पूजा की आकांक्षा छोड़ देनी चाहिए । तो तुमने असली बुनियाद तो गिरा दी । फिर थोथी मर्यादा रह गयी । अगर परमात्मा को खोजते वह मर्यादा भी सम्हलती है, बड़ी अच्छी बात है । लेकिन ध्यान रखना, किसी भी कीमत पर परमात्मा का धागा न छूटे हाथ से । चाहे सारा संसार भी छूट जाए, सब

मर्यादा टूटे, सब तरह से हानि हो जाए, संसार की दृष्टि में तुम सब तरह से विक्षिप्त और पागल समझ लिये जाओ, तो भी फिक्र मत करना । क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और सब पागलपन है ।

अजां दी काबे में नाकूस दैर में फूंका
कहाँ कहाँ तेरा आशिक तुझे पुकार आया ।

उसका प्रेमी सब जगह खोजता है—मंदिर में, मस्जिद में । अजां दी काबे में नाकूस दैर में फूंका । मंदिरों में शंख फूंके, अजान दी काबे में । कहाँ कहाँ तेरा आशिक तुझे पुकार आया । सब जगह पुकार आता है, लेकिन न वह मंदिर में है न वह मस्जिद में है । जिस दिन यह दिखायी पड़ जाता है, आशिक को उस दिन न मंदिर की कोई मर्यादा है न मस्जिद की कोई मर्यादा है । नहीं कि जान के वह कोई मस्जिद-मंदिर को तोड़ेगा—तोड़ने की कोई ज़रूरत नहीं । लेकिन हिन्दू नहीं रह जाएगा, मुसलमान नहीं रह जाएगा । इसको कहने की भी कोई जरूरत नहीं कि इसकी उद्घोषणा करे कि न मैं हिन्दू हूँ न मैं मुसलमान हूँ, लेकिन नहीं रह जाएगा, नहीं रह जाएगा । भीतर कोई रेखा न रह जाएगी हिन्दू-मुसलमान की; वह मर्यादा गयी, वह सीमा गयी । भगवान का भक्त तो बस भगवान का भक्त होता है, कोई विशेषण नहीं उसका ।

न बुतकदे से काम न मतलब हरम से था
महवे खयालेयार रहे हम जहाँ रहे ।

न तो कोई मस्जिद से लेना-देना है न मंदिर से कोई संबंध है । महवे खयालेयार रहे—उसकी याद से भरे रहे—हम जहाँ रहे : मंदिर में बैठे तो, मस्जिद में बैठे तो; कुरान पढ़ी तो, बाइबिल पढ़ी तो । कोई तोड़ने की सीधी जरूरत नहीं है, लेकिन भीतर से मुक्ति हो जाए, भीतर से तुम निपट मनुष्य हो जाओ । बस धार्मिक होना । प्रार्थना तुम्हारा गुण हो जाए ।

'स्त्री, धन, नास्तिक और वैर्य का चरित्र नहीं सुनना चाहिए ।'
ऐसा ही इस सूत्र का अनुवाद किया गया है, मैं नहीं करता हूँ ।
'स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ।'

सूत्र का सीधा-सा अर्थ होता है : स्त्री, धन, नास्तिक और वैर्य का चरित्र सुनने योग्य नहीं है । दोनों में बड़ा फर्क हो जाता है । 'नहीं सुनना चाहिए'—आदेश हो जाता है । 'सुनने योग्य नहीं है'—सिर्फ तथ्य का वक्तव्य है । 'नहीं सुनना चाहिए'—इसमें तो डर मालूम होता है; जैसे घबड़ाहट है; जैसे स्त्री का चरित्र सुन के भक्त कुछ डाँवाँडोल होगा; जैसे स्त्री की बात सुन के उसका मन परमात्मा से स्त्री के पास उतर आएगा । यह तो फिर भक्ति ही न हुई, यह तो दमन हुआ । जैसे कि नास्तिक की बात सुन के उसकी आस्तिकता कंपित होने लगेगी । तो यह कोई आस्तिकता हुई ? ऐसी नपुंसक आस्तिकता का कोई मूल्य ही नहीं है । इसे तो फेंक ही दो खुद ही । जो

नास्तिक की बात सुनने से कँप जाती हो, तो जानना कि भीतर नास्तिक छुपा है, ऊपर-ऊपर आस्तिकता आरोपित कर ली है ।

आस्तिक नास्तिक की बात सुनने से डरेगा ? नास्तिक डरे, समझ में आता है । नहीं, धन की बात सुनने से आस्तिक भयभीत होगा ? तो फिर इसे परम धन का स्वाद ही नहीं मिला ।

तुमने कभी देखा ? अगर तुम्हें हीरों की परख हो तो क्या तुम कंकड़-पत्थरों से डरोगे ? क्या तुम यह कहोगे कि हीरों के पारखी को कंकड़-पत्थरों की चर्चा नहीं सुननी चाहिए । हीरों की जिसे परख है, कंकड़-पत्थरों की चलने दो चर्चा । तुम उसे थोड़े ही भुला सकोगे जिसे हीरों की परख है । हाँ, अगर परख झूठी हो, हो ही न, मान ली हो कि है, तो फिर हीरे भी लुभा सकते हैं ।

नहीं, तो मैं इस सूत्र का अनुवाद ठीक-ठीक वही करता हूँ जो नारद ने कहा है : न श्रवणीयम् ! सुनने-योग्य नहीं है । मैं नहीं कहता कि नहीं सुनना चाहिए । तुम्हें लगेगा कि थोड़ा-सा फर्क है भाषा का, लेकिन थोड़ा नहीं है—सारा गुणधर्म बदल जाता है । एक छोटा-सा शब्द सारा गुणधर्म बदल देता है । सुनने-योग्य नहीं है, यह बात समझ में आती है । व्यर्थ है । 'नहीं सुनना चाहिए', इससे तो लगता है, सार्थक है और डर है; न केवल सार्थक है, बल्कि परमात्मा से भी शायद ज्यादा बलशाली है । 'सुनने योग्य नहीं है', इससे पता चलता है, निरर्थक है, व्यर्थ समय मत गँवाना । जिसको हीरों की परख है, वह कंकड़-पत्थर की व्यर्थ चर्चा में समय न गँवाएगा, यह बात पक्की है । लेकिन अगर कोई कंकड़-पत्थर ले के आ जाए तो भाग भी न खड़ा होगा, कि आँख बंद कर लेगा, कि चिल्लाने लगेगा : 'बचाओ, बचाओ ! मारा, मारा गया ! यह कंकड़-पत्थर ले आया ।' ऐसी घबड़ाहट न दिखायी पड़ेगी । वह यह ही कहेगा, 'व्यर्थ, क्यों कंकड़-पत्थरों को यहाँ ले आए ? हीरों को पहचान चुका हूँ—कहीं और ले जाओ ।'

अगर आस्तिक के पास नास्तिक अपनी बात ले के आएगा तो प्रेम से आस्तिक कहेगा, 'अब नहीं प्रभावित कर सकेगी यह बात । वह वक्त जा चुका । वह सीमा पार हो चुकी । थोड़े दिन पहले आना था । ज़रा देर करके आए ।' नास्तिक को बिठा के उसकी बात भी सुन लेगा, क्योंकि नास्तिक में भी बोलता तो परमात्मा ही है । खेल है समझो, खूब खेल खेल रहा है ! अपना ही खंडन करता है !

ऐसा हुआ, रामकृष्ण को केशवचंद्र मिलने आए । वे बड़े प्रकाण्ड तार्किक थे; भारत में बहुत कम ऐसे तार्किक पिछली दो-तीन सदियों में हुए । उन्होंने बड़ा तर्क का विस्तार किया । वे तो रामकृष्ण से विवाद, शास्त्रार्थ करने आए थे । और रामकृष्ण उनका तर्क सुनने लगे और प्रफुल्लित हो-हो के उठ आते और उनको छाती से लगाते । ज़रा थोड़े चकित हुए : 'आदमी पागल है, बावला है ! हम खंडन कर रहे हैं ईश्वर का !' उन्होंने कहा कि 'समझे कुछ ? मैं ईश्वर का खंडन कर रहा हूँ कि ईश्वर नहीं है ।' रामकृष्ण ने कहा, 'उसी को तो समझ के तुम्हें छाती से लगाता हूँ । उसकी बड़ी महिमा है ! अपना खंडन किस मजे से कर रहा है ! तुम्हें देख कर मुझे उसके चमत्कार पे और भी बड़ा प्रेम हो आया है । क्या मजा है ! क्या खेल ! खूब धोखा देने की तरकीब है ! लेकिन मुझे धोखा न दे सकेगा । इसलिए मैं गले लगा रहा हूँ । तुमको नहीं—उसको कह रहा हूँ कि तू मुझे धोखा न दे पाएगा; पहचान चुका हूँ तुझे । तेरा सब खेल जानता हूँ !'

थके-हारे केशवचन्द्र वापस लौटे । चैन छिन गया । नींद खो गयी ! इस आदमी ने हिला दिया । खंडन न किया इनका । बात सुनने से इनकार भी न किया । बेचैन भी न हुए । उलटे प्रफुल्लित होने लगे । उलटे कहने लगे, 'तुम जैसा बुद्धिमान जब दुनिया में है तो परमात्मा होना ही चाहिए, अन्यथा इतनी बुद्धि कहाँ से होगी ! संसार पत्थर ही नहीं हो सकता, केशव ! तुम जैसा बुद्धिमान यहाँ दुनिया में है । इसमें चैतन्य छिपा है । तुम कहते हो कि परमात्मा नहीं है; मैं तुम्हारी मानूँ कि तुमको देखूँ और तुम्हें पहचानूँ ? तुम्हें देखता हूँ तो उसका सबूत, उसकी खबर मिलती है । तुम्हें सुनूँ कि तुम्हें समझूँ ?'

नहीं, आस्तिक न तो स्त्री से परेशान होता, न धन से, न नास्तिक से, न वैर से । ये भी कोई बातें हुईं ! हाँ, लेकिन एक बात पक्की है कि सुनने-योग्य नहीं हैं । न श्रवणीयम् ! फिजूल है । इसमें कोई रस नहीं लेता । कोई सुनाने आ जाए तो सुन लेगा, लेकिन भयभीत नहीं है ।

'अभिमान, दम्भ आदि का त्याग करना चाहिए ।'

बड़ा अनूठा सूत्र है : 'सब आचार भगवान के अर्पण कर चुकने पर यदि काम, क्रोध, अभिमान आदि हों, तो उन्हें भी उसके प्रति ही समर्पित करना चाहिए ।'

क्या करोगे अगर हों फिर भी ? छोड़ चुके सब, लेकिन फिर भी न छूटते हों तो क्या करोगे ? भक्त क्या करेगा ? भक्त कहेगा, 'अब इनको भी तू सम्हाल ! तूने ही दिये, तू ही वापस ले ले ।' यही तो भक्ति की सुगमता है और परम ऐश्वर्य है । भक्ति की महिमा है कि भक्ति किसी तरह का द्वन्द्व खड़ा नहीं करती । वह यह भी नहीं कहती कि अपने अहंकार से लड़ो । चढ़ा दो भगवान के चरणों में—उसी का दिया है ! त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव समर्पये ! तेरी चीज है, तू ही ले ले ! गोविंद ने दी है, गोविंद को ही लौटा दो ! अहंकार भी उसी ने दिया है । होगा कुछ खेल उसी का । होगा कुछ राज़ इसमें । उसी को लौटा दो । अगर फिर भी न छूटता हो तो भी क्या करोगे, स्वीकार कर लो कि तेरी जैसी मर्जी ! अगर तू क्रोध करवाता है तो क्रोध करते रहेंगे ! अगर तुझे अहंकार ही करवाना है तो अहंकार करते रहेंगे ।

लेकिन ज़रा समझो इस बात को । अगर तुमने उस पे छोड़ दिया तो क्रोध कर सकोगे ? क्रोध करने के लिए 'मैं हूँ' यह अकड़ होनी ही चाहिए, नहीं तो क्रोध होगा ही कैसे ? 'मैं' पर ही चोट लगती है तभी तो क्रोध होता है । अहंकार समर्पण के

बाद हो ही कैसे सकता है ? समर्पण का अर्थ ही यह होता है कि तू सम्हाल, और अगर तू कहे कि ठीक, अभी तुम ही रखो थोड़ी देर तो रखे रहेंगे !

ऐसा हुआ, गुरजिएफ के पास कैथरिन मैन्सफील्ड, एक बड़ी लेखिका, आई। सिगरेट पीने की उसे लत थी—शृंखलाबद्ध ! एक सिगरेट से दूसरी सिगरेट जला ले। गुरजिएफ ने कहा, 'सिगरेट पीना बंद ! थोड़ा अपना संकल्प जगाओ !' साल भर बीत गया, मैन्सफील्ड ने सिगरेट न पी। साल भर बाद वह बड़ी प्रसन्न हुई कि अद्भुत हो गया, मै भी अद्भुत हूँ कि जो छूटे न छूटती थी, वह भी छोड़ दी ! साल भर बाद वह गुरजिएफ के पास आयी। उसने कहा, 'साल भर हो गया, मैं सिगरेट नहीं पीती हूँ।' गुरजिएफ ने उसकी तरफ देखा और कहा, 'करोड़ों लोग हैं जो सिगरेट नहीं पीते। इसमें कुछ गौरव नहीं है। ले, सिगरेट पी !' खीसे से सिगरेट निकाली, 'यह ले पी, सिगरेट पी !' वह थोड़ी झिझकी। उसने कहा, 'झिझकना क्या ! थोड़ा संकल्प जगा ! पी ! एक दिन कहा था, छोड़. . . थोड़ा संकल्प जगा।'

समझ गई कैथरिन, बात ठीक है। पहले सिगरेट पकड़ी थी; अब सिगरेट नहीं पीती, इस बात ने पकड़ लिया। तो गुरजिएफ का वचन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसने कहा, 'करोड़ों लोग हैं जो सिगरेट नहीं पीते, इसमें बात ही क्या ? ले पी ! यह न पीना कोई गुण है ? पहले पीने में जकड़ी थी, अब न पीने में जकड़ गयी !'

तो गुरजिएफ के पास अगर गैर-माँसाहारी आते तो माँस खिला देता; माँसाहारी आते तो छुड़वा देता; शराबी आते तो शराब छीन लेता; गैर-शराबी आ जाते तो उनको डट के पिलवा देता कि छोड़, यह क्या पकड़े बैठा है !

वह जो थोड़ी-सी झिझक आ गयी कैथरिन मैन्सफील्ड को, गुरजिएफ ने कहा, यह तेरी झिझक डर है।

इसको ऐसा समझो कि तुम भगवान के पास गये, अहंकार चढ़ाया और भगवान ने कहा, अभी थोड़ी देर रखो, तो क्या करोगे ? भगवान की मानोगे कि अपनी ही धुनोगे ? कि कहोगे कि नहीं, हम तो छोड़ के रहेंगे ? कि हमने तो चढ़ा दिया ! तो उस 'हम' में ही तो अहंकार रह जाएगा। और अगर उसकी मान ली, कहा, 'ठीक तेरी मर्जी !' ले आए कंधे पे रख के वापस। उसी रखने में छूट गया। क्योंकि बात ही क्या रही अब, जब उस पे ही छोड़ दिया, और उसने कहा कि रखो। तो अपनी मानें कि उसकी मानें !

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, हम तो सब आपके लिए छोड़ते हैं। एक युवती आयी। उसने कहा, 'मैं सब आपके लिए छोड़ती हूँ, जो आप कहेंगे वह करूँगी।' मैंने कहा, अच्छी बात है। उसने कहा, मगर मुझे यहाँ से जाना नहीं है; यहीं इसी आश्रम में रहना है। मैंने कहा कि नहीं, जाना पड़ेगा। उसने कहा, कि मैं जा ही नहीं सकती; अब तो आप जो कहेंगे वही करूँगी। अब बोलो, क्या करना है। मैंने कहा, 'तू मेरी सुनती है कि अपनी ?' वह कहती है कि बिलकुल मैं सब छोड़ ही

चुकी, अब तो मैं यही रहूँगी। अब तो मैं जो आप कहेंगे वही करूँगी।

वह यह दोहराए चली जा रही है। उसे बात दिखायी ही नहीं पड़ रही की मैं कह रहा हूँ कि तू जा। अगर सच में वह छोड़ चुकी है तो वह कहेगी, 'ठीक, आप कहते हैं तो जाती हूँ; आप कहेंगे तो आ जाऊँगी।' अगर वह इतना कह देती तो उसी वक्त मैं उसे रोक लेता, लेकिन वह न कह सकी। उसका यह कहना कि सब छोड़ती हूँ, छोड़ना नहीं है। उस तरकीब से वह मुझे भी चलाना चाहती है अपने हिसाब से।

तुम जाते हो भगवान को चढ़ाने, लेकिन चढ़ाते तुम इस बात से हो कि 'ध्यान रखना, एहसान किया है, भूल न जाना ! सब चढ़ा दिया है।' जैसे उसे तुम कुछ नया दे आये हो जो उसका नहीं था !

नारद का यह सूत्र समझ लेना : 'सब आचार भगवान को अर्पण कर चुकने पर यदि काम, क्रोध, अभिमान आदि हों तो उन्हें भी उसके प्रति ही समर्पित मानना चाहिए।'

परमात्मा सदा तुम्हारे पास है। एक बार तुम उसके हाथों में अपने को छोड़ो — सर्व, समग्र, पूर्ण भाव से। रत्ती भर भी पीछे मत बचाना। यह आग्रह भी मत बचाना कि मैंने सब छोड़ा। इतना भी 'मैं' पीछे मत बचाना।

इतने दिन था बंद, आज ही
वातायन खोला है
कहता रहा वसंत, गंध को
यों ही मत लौटाओ
चिंतित रहा अनंत, स्वयं को
सीमित नहीं बनाओ
अब तक था हत्चेत, आज ही
हृद्-चिंतन बोला है।
अपने रुग्ण विमूर्छित मन को
प्राणवायु पहुँचाओ
तिमिरग्रस्त लोचन को फिर से
परम विभा दिखलाओ
जीवन-रण के इस क्षण में फिर
नारायण बोला है
छिपा हुआ जो द्वन्द्व, उसे ही
परमानंद बनाओ
बिछुड़ गई जो बूंद, उसे ही
महा समुंद बनाओ

बन कर फिर प्रारम्भ स्वयं ही
पारायण बोला है ।

परमात्मा चारों तरफ बोल रहा है, सन्देश दे रहा है, इंगित-इशारे । प्रतिपल तुम्हें ले चलना चाहता है वापस घर । तुम सुनते ही नहीं हो । तुम अपनी ही कहे चले जाते हो । सब छोड़ो उस पर । छोड़ना भी उसी पर छोड़ो ।

इतने दिन था बंद, आज ही
वातायन खोला है ।

खोलो खिड़की ! आने दो उसकी हवाओं को भीतर !

कहता रहा वसंत, गंध को
यों ही मत लौटाओ !

बहुत बार लौटाया है । कितनी बार कितने अनंत कालों में, कितनी अनंत बार लौटाया है !

कहता रहा वसंत, गंध को
यों ही मत लौटाओ
चिंतित रहा अनंत, स्वयं को
सीमित नहीं बनाओ
अब तक था हत्चेत, आज ही
हृद्-चिंतन बोला है ।

एक तो सिर का विचार है, और एक हृदय का चिंतन है, वह बड़ी अलग बात है ।

अब तक था हत्चेत !

—खोपड़ी बोलती रही, हृदय सोता रहा !

अब तक था हत्चेत, आज ही
हृद्-चितन बोला है
अपने रुग्ण विमूछित मन को
प्राणवायु पहुँचाओ
तिमिरग्रस्त लोचन को फिर से
परम विभा दिखलाओ
जीवन-रण के इस क्षण में फिर
नारायण बोला है ।

प्रतिपल जहाँ भी जीवन है, वहीं उसकी गूंज है । हर कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र है ।

जीवन-रण के इस क्षण में फिर
नारायण बोला है
छिपा हुआ जो द्वंद्व, उसे ही
परमानंद बनाओ ।

वही ऊर्जा, जिससे तुम दुखी हो रहे हो, वही आनंद बन जाती है; वही दुर्गंध से भरी हुई खाद फूलों में सुगंध बन जाती है; वही कीचड़-कर्कट कमल बन जाता है ।

छिपा हुआ जो द्वन्द्व, उसे ही
परमानंद बनाओ
बिछुड़ गयी जो बूंद, उसे ही
महा समुंद बनाओ ।

फिर से डाल दो बूंद को वापस समुद्र में । कुछ बिछुड़ा थोड़े ही है । गिरते ही बूंद फिर महासागर हो जाती है । दूर-दूर मत रखो, अलग-अलग मत रहो ।

बिछुड़ गयी जो बूंद, उसे ही
महासमुंद बनाओ
बन कर फिर प्रारम्भ स्वयं ही
पारायण बोला है ।

आज इतना ही ।

दिनांक १६ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना
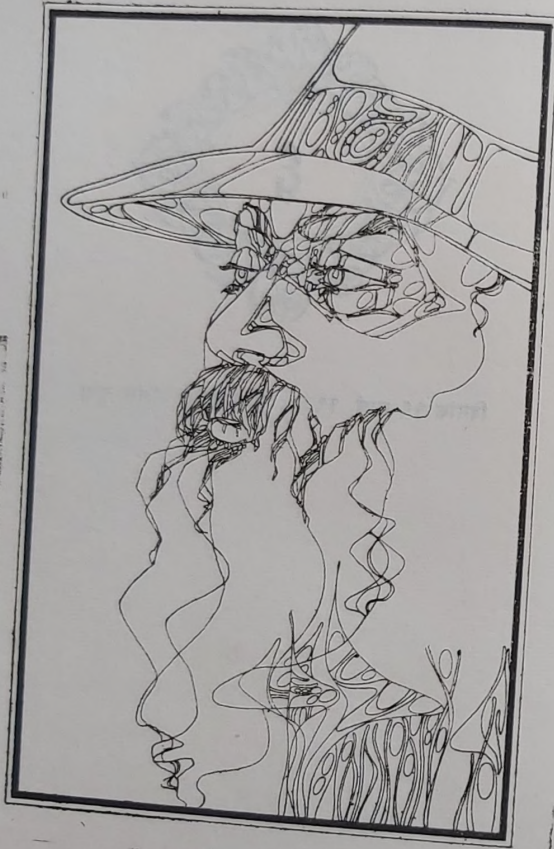
प्रश्न-सार

राजा हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद की पुराणकथा तथा होली उत्सव पर प्रकाश डालें।

यारी करके देखा यार नहीं मिलता
बेवफा मिलता है लेकिन बावफा नहीं मिलता।

भगवान इस समय हमारे और आपके बीच क्या करवाता है ?

जो अनुभव आपके सान्निध्य और प्रवचन में होता है, वह कैसे अधिक समय तक रहे ?

संन्यास क्या बिना गैरिक वस्त्रों और माला के नहीं हो सकता ?

भक्ति उत्सव है–उदासी नहीं

पहला प्रश्न : पुराण-कथा है, प्रह्लाद नास्तिक राजा हिरण्यकश्यप के यहाँ जन्म लेता है, और फिर हिरण्यकश्यप अपनी नास्तिकता सिद्ध करने के लिए प्रह्लाद को नदी में डुबोता है, पहाड़ से गिरवाता है, और अन्त में अपनी बहन होलिका से पूर्णिमा के दिन जलवाता है। और आश्चर्य तो यही है कि वह सभी जगह बच जाता है, और प्रभु के गुणगान गाता है। और तब से इस देश में होली जला कर होली का उत्सव मनाते हैं, रंग गुलाल डालते हैं, आनंद मनाते हैं। कृपा करके इस पुराण-कथा का मर्म हमें समझाइये।

पुराण इतिहास नहीं है। पुराण महाकाव्य है। पुराण में जो हुआ है, वह कभी हुआ है, ऐसा नहीं, वरन् सदा होता रहता है। तो पुराण में किन्हीं घटनाओं का अंकन नहीं है, वरन् किन्हीं सत्यों की ओर इंगित है। पुराण शाश्वत है।

ऐसा कभी हुआ था कि नास्तिक के घर आस्तिक का जन्म हुआ, ऐसा नहीं; सदा ही नास्तिकता में ही आस्तिकता का जन्म होता है। सदा ही; और होने का उपाय ही नहीं है। आस्तिक की तरह तो कोई पैदा हो ही नहीं सकता; पैदा तो सभी नास्तिक की तरह होते हैं। फिर उसी नास्तिकता में आस्तिकता का फूल लगता है। तो नास्तिकता आस्तिकता की माँ है, पिता है। नास्तिकता के गर्भ से ही आस्तिकता का आविर्भाव होता है।

हिरण्यकश्यप कभी हुआ या नहीं, मुझे प्रयोजन नहीं है। व्यर्थ की बातों में मुझे रस नहीं है। प्रह्लाद कभी हुए या न हुए, प्रह्लाद जानें। लेकिन इतना मुझे पता है, कि पुराण में जिस तरफ इशारा है, वह रोज होता है, प्रतिपल होता है, तुम्हारे भीतर हुआ है, तुम्हारे भीतर हो रहा है। और जब भी कभी मनुष्य होगा, कहीं भी मनुष्य होगा, पुराण का सत्य दोहराया जाएगा। पुराण सार-निचोड़ है; घटनाएँ नहीं, इतिहास नहीं, मनुष्य के जीवन का अन्तर्निहित सत्य है।

समझो। पहली बात–

साधारणतः तुम समझते हो कि नास्तिक आस्तिक का विरोधी है। वह गलत

है। नास्तिक बेचारा विरोधी होगा कैसे ! नास्तिकता को आस्तिकता का पता नहीं है। नास्तिकता आस्तिकता से अपरिचित है, मिलन नहीं हुआ। लेकिन आस्तिकता के विरोध में नहीं हो सकती नास्तिकता, क्योंकि आस्तिकता को नास्तिकता के भीतर से ही आविर्भूत होती है। नास्तिकता जैसे बीज है और आस्तिकता उसी का अंकुरण है। बीज का अभी अपने अंकुर से मिलना नहीं हुआ। हो भी कैसे सकता है ? बीज अंकुर से मिलेगा भी कैसे ? क्योंकि जब अंकुर होगा तो बीज न होगा। जब तक बीज है तब तक अंकुर नहीं है। अंकुर तो तभी होगा जब बीज टूटेगा और मिटेगा और भूमि में खो जाएगा। तब अंकुर होगा। जब तक बीज है तब तक अंकुर हो नहीं सकता। यह विरोधाभासी बात समझ लेनी चाहिए।

बीज से ही अंकुर पैदा होता है, लेकिन बीज के विसर्जन से, बीज के खो जाने से, बीज के तिरोहित हो जाने से। बीज अंकुर का विरोधी कैसे हो सकता है ? बीज तो अंकुर की सुरक्षा है। वह जो खोल बीज की है, वह भीतर अंकुर को ही सम्हाले हुए है–ठीक समय के लिए, ठीक ऋतु के लिए, ठीक अवसर की तलाश में। लेकिन बीज को अंकुर का कुछ पता नहीं है। अंकुर का पता हो भी नहीं सकता। और इसी अज्ञान में बीज संघर्ष भी कर सकता है अपने को बचाने का–डरेगा, टूट न जाऊँ, खो न जाऊँ, मिट न जाऊँ ! भयभीत होगा। उसे पता नहीं कि उसी की मृत्यु से महाजीवन का सूत्र उठेगा। उसे पता नहीं, उसी की राख से फूल उठने वाले हैं। पता ही नहीं है। इसलिए बीज क्षमा-योग्य है, उस पे नाराज मत होना। दया-योग्य है। बीज बचाने की कोशिश करता है। यह स्वाभाविक है अज्ञान में।

हिरण्यकश्यप पिता है। पिता से ही पुत्र आता है। पुत्र पिता में ही छिपा है। पिता बीज है। पुत्र उसी का अंकुर है। हिरण्यकश्यप को भी पता नहीं कि मेरे घर भक्त पैदा होगा। मेरे घर और भक्त–वह सोच भी नहीं सकता। मेरे प्राणों से आस्तिकता जन्मेगी–इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन प्रह्लाद जन्मा हिरण्यकश्यप से। हिरण्यकश्यप ने अपने को बचाने की चेष्टा शुरू कर दी। घबड़ा गया होगा। डरा होगा। यह छोटा-सा अंकुर था प्रह्लाद, इससे डर भी क्या था ? फिर यह अपना ही था, इससे भय क्या था ! लेकिन जीवन भर की मान्यताएँ, जीवन भर की धारणाएँ दाँव पर लग गयी होंगी।

हर बाप बेटे से लड़ता है। हर बेटा बाप के खिलाफ बगावत करता है। और ऐसा बाप और बेटे का ही सवाल नहीं है–हर आज कल के खिलाफ बगावत है, बीते कल के खिलाफ बगावत है। वर्तमान अतीत से छुटकारे की चेष्टा है। अतीत पिता, है, वर्तमान पुत्र है। बीते कल से तुम्हारा आज पैदा हुआ है। बीता कल जा चुका, फिर भी उसकी पकड़ गहरी है; विदा हो चुका, फिर भी तुम्हारी गर्दन पे उसका फाँस है। तुम उससे छूटना चाहते हो : अतीत भूल-जाए;, विस्मृत हो जाए। पर अतीत तुम्हें ग्रसता है, पकड़ता है।

वर्तमान अतीत के प्रति विद्रोह है । अतीत से ही आता है वर्तमान; लेकिन अतीत से मुक्त न हो तो दब जाएगा, मर जाएगा ।

हर बेटा बाप से पार जाने की कोशिश है ।

तुम प्रतिपल अपने अतीत से लड़ रहे हो—वह पिता से संघर्ष है ।

ऐसा समझो—

सम्प्रदाय अतीत है, धर्म वर्तमान है । इसलिए जब भी कोई धार्मिक व्यक्ति पैदा होगा, सम्प्रदाय से संघर्ष निश्चित है । होगा ही । सम्प्रदाय यानी हिरण्यकश्यप; धर्म यानी प्रह्लाद । निश्चित ही हिरण्यकश्यप शक्तिशाली है, प्रतिष्ठित है । सब ताकत उसके हाथ में है । प्रह्लाद की सामर्थ्य क्या है ? नया-नया उगा अंकुर है । कोमल अंकुर है । सारी शक्ति तो अतीत की है, वर्तमान तो अभी-अभी आया है, ताजा-ताजा है । बल क्या है वर्तमान का ? पर मजा यही है कि वर्तमान जीतेगा और अतीत हारेगा; क्योंकि वर्तमान जीवन्तता है और अतीत मौत है ।

हिरण्यकश्यप के पास सब था—फौज-फांटे थे, पहाड़-पर्वत थे । वह जो चाहता, करता । जो चाहा उसने, करने की कोशिश भी की, फिर भी हारता गया । शक्ति नहीं जीतती, जीवन जीतता है । प्रतिष्ठा नहीं जीतती, सत्य जीतता है । सम्प्रदाय पुराने हैं ।

जीसस पैदा हुए, यहूदियों का सम्प्रदाय बहुत पुराना था, सूली लगा दी जीसस को । लेकिन मार के भी मार पाए ? इसीलिए पुराण की कथा है कि फेंका प्रह्लाद को पहाड़ से, डुबाया नदी में—नहीं डुबा पाए, नहीं मार पाए । जलाया आग में—नहीं जला पाए । इससे तुम यह मत समझ लेना कि किसी को तुम आग में जलाओगे तो वह न जलेगा । नहीं, बड़ा प्रतीक है । जीसस को मारा, मर गये । लेकिन मर पाए ? मार के भी तुम मार पाए ?

इसलिए मैं कहता हूँ, पुराण तथ्य नहीं है, सत्य है । तुम अगर यह सिद्ध करने निकल जाओ कि आग जला न पायी प्रह्लाद को, तो तुम गलती में पड़ जाओगे, तो तुम भूल में पड़ जाओगे, तो तुम्हारी दृष्टि भ्रान्त हो जाएगी । तुम अगर यह समझो कि पहाड़ से फेंका और चोट न खायी, तो तुम गलती में पड़ जाओगे । नहीं, बात गहरी है, इससे कहीं बहुत गहरी है । यह कोई ऊपर की चोटों की बात नहीं है । क्योंकि हम जानते हैं, जीसस को सूली लगी, जीसस मर गये । सुकरात को जहर दिया, सुकरात मर गये । मंसूर को काटा, मंसूर मर गया । लेकिन मरा सच में या प्रतीत हुआ कि मर गये । जीसस अब भी जिंदा है—मारने वाले मर गये । सुकरात अभी भी जिंदा है—जहर पिलाने वालों का कोई पता नहीं ।

सुकरात ने कहा था—जिन्होंने उसे जहर दिया—कि ध्यान रखो कि तुम मुझे मार के भी न मार पाओगे; और तुम्हारे नाम की अगर कोई याद रहेगी तो सिर्फ मेरे साथ, कि तुमने मुझे जहर दिया था, तुम जियोगे भी तो मेरे नाम के साथ । निश्चित

ही आज सुकरात के मारने वालों का अगर कहीं कोई नाम है तो बस इतना ही कि सुकरात को उन्होंने मारा था ।

थोड़ा सोचो । हिरण्यकश्यप का नाम होता, प्रह्लाद के बिना ? प्रह्लाद के कारण ही । अन्यथा कितने हिरण्यकश्यप होते हैं, होते रहते हैं ! आज हम जानते हैं, किसकी आज्ञा से जीसस को सूली लगी थी । उस वाइसराय का नाम याद है । हज़ारों वाइसराय होते रहे हैं दुनिया में, सब के नाम खो गये, लेकिन पायलट का नाम याद है; बस इतना ही नाम है कि उसका नाम था; जीसस को सूली दी थी, जीसस के साथ अमर हो गया ।

जीसस को हम मार के भी मार न पाए—इतना ही अर्थ है । जीवन को मिटा के भी तुम मिटा नहीं सकते । सत्य को तुम छिपा के भी छिपा नहीं सकते, दबा के भी दबा नहीं सकते । उभरेगा, हज़ार-हज़ार रूपों में वह उभरेगा; हज़ार-हज़ार गुना बलशाली हो के उभरेगा । लेकिन सदा यह भ्रांति होती है कि ताकत किनके हाथ में है । ताकत तो अतीत के हाथ में होती है, समाज के हाथ में होती है, सम्प्रदाय के हाथ में होती है, राज्य के हाथ में होती है । जब कोई धार्मिक व्यक्ति पैदा होता है तो कोमल कोंपल-सा होता है; लगता है ज़रा-सा धक्का दे देंगे, मिट जाएगा, लेकिन अखीर में वही जीतता है । उस कोमल-सी कोंपल की चोट से महासाम्राज्य गिर जाते हैं ।

क्या बल है निर्बल का ? निर्बल के बल राम ! कुछ एक शक्ति, जो व्यक्ति की नहीं है, परमात्मा की है । वही तो भक्त का अर्थ है । भक्त का अर्थ है : जिसने कहा, 'मैं नहीं हूँ, तू है ! ' भक्त ने कहा, 'अब जले तो तू जलेगा; मरे तो तू मरेगा; हारे तो तू हारेगा; जीते तो तू जीतेगा । हम बीच से हटे जाते हैं ।'

भक्त का इतना ही अर्थ है कि भक्त बाँस की पोंगरी की भाँति हो गया; भगवान से कहता है, 'गाना हो गा लो, न गाना हो न गाओ—गीत तुम्हारे हैं ! मैं सिर्फ बाँस की पोंगरी हूँ । तुम गाओगे तो बाँसुरी जैसा मालूम होऊँगा; तुम न गाओगे तो बाँस की पोंगरी रह जाऊँगा । गीत तुम्हारे हैं, मेरा कुछ भी नहीं है । हाँ, अगर गीत में कहीं कोई बाधा पड़े, सुर भंग हो, तो मेरी भूल समझ लेना—बाँस की पोंगरी कहीं इरछी-तिरछी है; जो मिला था उसे ठीक-ठीक बाहर न ला पायी; जो पाया था उसे अभिव्यक्त न कर पायी । भूल अगर हो जाए तो मेरी समझ लेना । लेकिन अगर कुछ और हो, सब तुम्हारा है ।'

भक्त का इतना ही अर्थ है ।

नास्तिकता में ही आस्तिक पैदा होगा । तुम सभी नास्तिक हो । हिरण्यकश्यप बाहर नहीं है, न ही प्रह्लाद बाहर है । हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद दो नहीं हैं—प्रत्येक व्यक्ति के भीतर घटने वाली दो घटनाएँ हैं । जब तक तुम्हारे मन में सन्देह है—हिरण्यकश्यप है—तब तक तुम्हारे भीतर उठते श्रद्धा के अंकुरों को तुम पहाड़ों से

गिराओगे, पत्थरों से दबाओगे, पानी में डुबाओगे, आग में जलाओगे—लेकिन तुम जला न पाओगे। उनको जलाने की कोशिश में तुम्हारे ही हाथ जल जाएँगे।

कितनी बार नहीं तुम्हारे मन में श्रद्धा का भाव उठता है, सन्देह झपट के पकड़ लेता है! कितनी बार नहीं तुम किनारे-किनारे आ जाते हो छलाँग लगाने के, सन्देह पैर में जंजीर बन के रोक लेता है, क्या कर रहे हो? कुछ घर-द्वार की सोचो! कुछ परिवार की सोचो! कुछ धन-प्रतिष्ठा, पद की सोचो! कुछ संसार की सोचो! क्या कर रहे हो?' पैर रुक जाते हैं। सोचते हो, कल कर लेंगे, इतनी जल्दी क्या है!

क्रांति कितनी बार तुम्हारे भीतर नहीं उन्मेष लेती! कितनी बार नहीं तुम्हारे भीतर क्रांति का झंझावात आता है—और तुम बार-बार सन्देह का साथ पकड़ के रुक जाते हो! यह तुम अपने भीतर खोजो। यह कथा कुछ पुराण में खोजने की नहीं है। यह तुम्हारे प्राण में खोजने की है। यह पुराण तुम्हारे प्राणों में लिखा हुआ है।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि भाव तो उठा है, लेकिन बड़े सन्देह भी हैं। मैं उनसे कहता हूँ, भाव भी है, सन्देह भी है; अब तुम किसके साथ जाने की सोचते हो? निर्णय तो तुम्हें करना पड़ेगा। क्या तुम सोचते हो, उस दिन तुम जाओगे जिस दिन कोई सन्देह न होगा? तब तो तुम कभी जा ही न सकोगे। सन्देह भी है तुम्हारे भीतर, भाव भी है तुम्हारे भीतर, दोनों ही द्वार खुले हैं। सन्देह भी है तुम्हारे भीतर, श्रद्धा भी है तुम्हारे भीतर, दोनों ही द्वार खुले हैं। हिरण्यकश्यप, प्रह्लाद दोनों ने तुम्हें पुकारा है—किसकी सुनोगे? कारण क्या है कि तुम सन्देह की ही सुन लेते हो बार-बार? क्योंकि सन्देह बलशाली मालूम होता है। सारा समाज, संसार साथ मालूम होता है। श्रद्धा निर्बल करती मालूम होती है—अकेले जाना होगा।

सन्देह के राजपथ हैं; वहाँ भीड़ साथ है। श्रद्धा की पगडंडियाँ हैं; वहाँ तुम एकदम अकेले हो जाते हो, एकाकी। वही एकाकी हो जाना संन्यास है। अकेले होने का साहस ही श्रद्धा में ले जा सकता है।

हिरण्यकश्यप बलशाली है—वही उसकी निर्बलता सिद्ध हुई। प्रह्लाद बिलकुल निर्बल है—वही उसका बल सिद्ध हुआ। लेकिन वह चलता रहा। उसका गीत न रुका, उसका भजन न रुका। बाप के विपरीत भी चलता रहा!

सन्देह श्रद्धा का पिता है, शत्रु नहीं है। सन्देह से ही श्रद्धा जन्मती है। और सन्देह हज़ार चेष्टा करेगा कि श्रद्धा जन्मे न, क्योंकि श्रद्धा अगर जन्मी तो सन्देह को खोना पड़ेगा, मिटना पड़ेगा। तो सन्देह लड़ेगा आखिरी दम तक। उसी लड़ाई में वह विध्वंस करता है।

अब यह भी समझ लेना ज़रूरी है कि सन्देह की क्षमता सिर्फ विध्वंस की है, सृजन की नहीं है। सन्देह मिटा सकता है, बना नहीं सकता। सन्देह के पास सृजनात्मक

ऊर्जा नहीं है। वह कह सकता है, नहीं; लेकिन हाँ, हाँ उसके प्राणों में उठती ही नहीं। और बिना हाँ के जगत में कुछ निर्मित नहीं होता। सारा सृजन हाँ से है, सारा विध्वंस नहीं से है। तो नहीं हिंसात्मक है, हाँ अहिंसात्मक है। सन्देह कहे चले जाता है, नहीं; मिटाने के उपाय सुझा देता है। कहता है, 'यह छोटा-सा बालक श्रद्धा का—गिरा दो पहाड़ से! समाप्त करो यह झंझट बीच की! डुबा दो पानी में! आग में जला दो!'

मगर ध्यान रखना, जब भी सृजन और विध्वंस का संघर्ष होगा, विध्वंस हारेगा, सृजन जीतेगा। क्योंकि सृजन परमात्मा की ऊर्जा है। जब भी हाँ और ना में संघर्ष होगा, हाँ जीतेगी, ना हारेगी। ना में बल ही क्या है? कितनी ही बलशाली दिखायी पड़ती हो, लेकिन सारा बल नपुंसकता का है। बल है नहीं, झूठा दावा है।

तुमने कभी खयाल किया? तुम जब भी किसी बात पर नहीं कहते हो तो बड़ी शक्ति मालूम पड़ती है—नहीं के साथ शक्ति मालूम पड़ती है। और जब भी तुम हाँ कहते हो, ऐसा लगता है, कहनी पड़ी। छोटा बच्चा कहता है माँ से कि ज़रा बाहर खेल आऊँ—'नहीं'! बाहर खेलने के लिए कह रहा था, कुछ 'नहीं' कहने की बात भी न थी। पति कहता है, छुट्टी का दिन है, ज़रा नदी पे मछली मार आऊँ—'नहीं'। क्या अड़चन थी? घर बैठे-बैठे मक्खी मारेगा! मछली ही मार लेता। कम-से-कम नदी के किनारे बैठने का थोड़ा सुख ले लेता। लेकिन 'नहीं' त्वरित आती है। 'नहीं' के साथ बल है।

खड़े हो तुम स्टेशन की खिड़की पर, टिकट माँगते हो। वह जो टिकटबाबू है, काम भी न हो तो रजिस्टर उलटने लगता है। वह कह रहा है, 'खड़े रहो! कोई बड़े साहब, लाटसाहब नहीं हो। खड़े रहो!' वह कह रहा है, नहीं! यह मौका उसको भी 'नहीं' कहने का मिला है। इधर-उधर उलटेगा। तुमने भी बहुत बार यह किया है, खयाल करो।

जब तुम्हें 'नहीं' कहने का मौका मिलता है तो तुम छोड़ते नहीं। क्योंकि 'नहीं' कहने से लगता है, 'देखो! अटका दिया! मेरे पे निर्भर हो! अभी दूँ टिकट तो ठीक, न दूँ तो ठीक!'

'नहीं' के साथ एक नपुंसक बल की प्रतीति होती है जो कि झूठा है; वह असली बल नहीं है। अब इसे तुम खयाल करो। अगर तुम असली बलशाली हो तो तुम 'नहीं' कहने से बल इकट्ठा करोगे? अगर पत्नी के प्रेम का बल है पति पर, तो वह नहीं' कह के अपनी ताकत आजमाएगी? जरूरत ही न रहेगी। जहाँ बल है, वहाँ 'नहीं' की ज़रूरत ही नहीं है। प्रयोजन क्या है? जहाँ वास्तविक शक्ति है वहाँ तो 'हाँ' से भी शक्ति ही प्रगट होती है। लेकिन तुम्हारी तकलीफ यह है कि वास्तविक शक्ति नहीं है; 'नहीं' कहते हो, तो ही थोड़ी-सी झंझट खड़ी करके शक्ति का अनुभव कर पाते हो। 'हाँ' कहते हो तो लगता है, हाँ कहनी पड़ी। 'हाँ' तुम

मजबूरी में कहते हो। तुम्हें 'हाँ' कहने का लुत्फ न आया। तुम्हें 'हाँ' कहने का सलीका न आया। तुम्हारे पास ताकत नहीं है।

हिरण्यकश्यप प्रल्हाद के सामने कमज़ोर मालूम होने लगा होगा। आनंद के सामने दुख सदा कमजोर हो जाता है—हो ही जाएगा, है ही कमज़ोर। दुख नकार है। आनंद विधायक ऊर्जा का आविर्भाव है। दुख में कभी कोई फूल खिले हैं? — काँटे ही लगते हैं। प्रह्लाद के फूल के सामने हिरण्यकश्यप का काँटा शर्मिंदा हो उठा होगा, लज्जा से भर गया होगा, ईर्ष्या से जल गया होगा। यह ताजगी, यह कुँआरापन, यह सुगंध, यह संगीत, ये प्रह्लाद के भगवान के नाम पर गाये गये गीत—उसे बहुत बेचैन करने लगे होंगे। वह घबड़ाने लगा। उसकी साँसें घुटने लगीं। उसे एकबारगी वही सूझा जो सूझता है नकार को, नास्तिक को, निर्बल-दुर्बल को—वही सूझा उसे। मिटा दो इसे! विध्वंस सूझा।

दुनिया में दो तरह के बल हैं। या तो तुम कुछ बनाओ तो बल मालूम होता है। तुमने एक गीत लिखा....। कवियों से पूछो, जब उनका गीत पूरा हो जाता है तो वे कैसे हिमालय के शिखर पे उठ जाते हैं। कैसा आनंद तरंगायित हो उठता है! मूर्तिकार से पूछो, जब उसकी मूर्ति पूरी होती है, तो वह स्रष्टा हो जाता है! किसी माँ से पूछो, जब उसका गर्भ बड़ा होता है और जब उसके पेट में बच्चा बड़ा होने लगता है, तब उसकी पुलक, उसका आनंद पूछो!

एक स्त्री जब तक माँ न बने, साधारण स्त्री है। गरिमा नहीं होती उसमें, गौरव नहीं होता। अभी कुछ पैदा ही नहीं किया, गरिमा कैसी? अभी वृक्ष में फल ही न लगे, गौरव कैसा? तब तक बाँझपन घेरे रहता है। फिर एक बेटा हुआ, तब स्त्री में एक नया आविर्भाव होता है; तब वह साधारण स्त्री न रही, तब वह माँ हो गयी। माँ हो के वह परमात्मा की संगी-साथी हो गयी। सृजन दिया! कुछ पैदा किया! जीवन को जन्म दिया!

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष का मन स्त्री से सदा ही ईर्ष्या से भरा है, क्योंकि वह जन्म नहीं दे सकता। गर्भ रखने की उसके पास सुविधा नहीं है। इसीलिए पुरुष और हज़ार चीज़ों को जन्म देता है—परिपूरक की तरह: कविता लिखता है, मूर्ति बनाता है, चित्र बनाता है, भवन बनाता है, ताजमहल खड़े करता है। लेकिन कितने ही ताजमहल खड़े करो, एक छोटे-से बच्चे का मुकाबला थोड़े ही कर सकेंगे। कितने ही सुन्दर हों, तुम्हारी मूर्तियाँ कितनी ही कलापूर्ण हों, और तुम्हारे गीतों में कितना ही तरन्नुम हो और कितना ही छंद हो, छोटे-से बच्चे की आँखों का छंद तो न हो सकेगा। माना कि संगमरमर बहुत सुन्दर है, मगर एक जीवंत बच्चे के सौंदर्य के सामने क्या होगा? एक साधारण-सी स्त्री तुम्हारे शाहजहाँओं को मात कर देती है। बना लो तुम ताजमहल....!

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष निरंतर चेष्टा करता है कुछ बनाने की, ताकि

वह भी अनुभव कर सके, मैं भी स्रष्टा हूँ। लेकिन फिर भी तृप्ति वैसी नहीं होती जैसी स्त्री को होती है। इसलिए तो स्त्रियाँ कुछ नहीं बनातीं—न ताजमहल, न चित्र, न अजन्ता न एलोरा। न उन्होंने गीत लिखे कालीदास जैसे, न चित्र बनाये पिकासो जैसे। स्त्रियाँ कुछ भी नहीं करतीं। बड़े हैरान होओगे तुम। पाकशास्त्र भी पुरुष लिखते हैं। नयी शाक-सब्जी भी खोजनी हो तो पुरुष खोजते हैं, स्त्री उस झंझट में नहीं पड़ती। दुनिया के अच्छे और बड़े रसोइये स्त्रियाँ नहीं हैं, पुरुष हैं। रसोइये भी! हद हो गयी! घर की साज-सज्जा करनी हो, इंटीरियर डैकोरेशन करना हो, फर्नीचर जमाना हो, तो भी पुरुष विशेषज्ञ.....!

स्त्री कुछ बनाती नहीं—बनाने की ज़रूरत अनुभव नहीं करती। माँ होने में इतनी तृप्ति है: भर जाती है। सफल हो जाती है। फलवती हो जाती है, यानी सफल हो जाती है।

ध्यान रखना, दो उपाय हैं शक्ति अनुभव करने के—या तो सृजन या विध्वंस। अगर तुम सृजन के द्वारा शक्ति अनुभव न कर सके, तो फिर विध्वंस के द्वारा शक्ति अनुभव करोगे। हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन और सिकंदर, ये विध्वंस के द्वारा शक्ति अनुभव करते हैं। बुद्ध, सुकरात, जीसस सृजन के द्वारा शक्ति अनुभव करते हैं।

शायद तुम्हें पता न हो: हिटलर मूलतः चित्रकार होना चाहता था। उसने आर्ट-अकाडेमी में अर्जी भी दी थी, लेकिन स्वीकार न हुई। वह चोट उसे भारी पड़ी। वह कुछ बनाना चाहता था—चित्र, मूर्तियाँ। वह चोट उसे भारी पड़ी। सारी जीवन-ऊर्जा उसकी विध्वंस में उलझ गयी। यह भी शायद तुम्हें पता न हो कि इतने लाखों लोगों की हत्या के बाद भी रात जब उसे फ़ुर्सत मिलती थी तो वह चित्र बनाता था। डाँवाँडोल था। हिटलर ने लिखा है कि आदमी को मार के, मिटा के, भी अपने बल का अनुभव होता है।

तुम जितना बड़ा विध्वंस कर सको, उतना लगता है बलशाली हो; कोई फिक्र नहीं, बना नहीं सकता, मिटा तो सकता हूँ। 'सकने' का पता चलता है। बना नहीं सकता, कोई बात नहीं, मिटा सकता हूँ! चलो, उतनी ऊँचाई न सही बनाने की, लेकिन मिटाने की ऊँचाई तो हो ही सकती है!

नास्तिकता विध्वंसात्मक है। आस्तिकता सृजनात्मक है। और आस्तिक और नास्तिक में जब भी संघर्ष होगा, नास्तिक की हार सुनिश्चित है। हाँ, आस्तिक असली होना चाहिए। कभी अगर तुम नास्तिक को जीतता हुआ देखो तो उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि आस्तिक नकली है। नकली आस्तिकता से तो असली नास्तिकता भी जीत जाएगी, कम-से-कम असली तो है! इतना सत्य तो है वहाँ कि असली है। सत्य ही जीतता है।

तो अगर तुम पाओ कि नास्तिकता जीत रही है तो उसका एक ही अर्थ होता है

कि नास्तिकता प्रमाणिक होगी। आस्तिकता हार रही है तो उसका अर्थ है कि आस्तिकता झूठी होगी, आरोपित होगी, थोथी होगी, ऊपर से ढाँपी होगी, पहन ली होगी, प्राणों से निकली न होगी, आचरण में होगी, अन्तस् में न होगी, ऊपर-ऊपर रंग-रोगन होगा, हृदय का जोड़ न होगा उसमें, प्राणों में जड़ें न होंगी। ऐसे बाज़ार से कागज़ के या प्लास्टिक के फूल खरीद लाए होओगे, वृक्षों पे लटका दिये होंगे – सारी दुनिया को धोखा हो जाए, लेकिन वृक्ष को थोड़े ही धोखा होगा। असली फूल जुड़ा है; वृक्ष की रसधार से एक है; एक ही गीत में, एक ही छन्द में बद्ध है; दूर गहरी जड़ों तक जमीन से जुड़ा है; सुदूर आकाश में चाँद-तारों से, सूरज से जुड़ा है। प्लास्टिक का फूल किसी से भी नहीं जुड़ा; टूटा है; न जड़ों से न जमीन से, न आकाश से, न चाँद-तारों से, न सूरज से–किसी से नहीं जुड़ा।

तुम्हारी आस्तिकता अगर झूठी है तो नास्तिकता से हारेगी, तो तुम नास्तिक से डरोगे। तुम्हारी आस्तिकता अगर सच्ची है तो नास्तिक को करने दो विध्वंस, कर-करके खुद ही टूट जाएगा, कर-करके खुद ही हार जाएगा।

प्रह्लाद अपने गीत गाये चला गया; अपनी गुनगुन उसने जारी रखी; अपने भजन में उसने व्यतिरोध न आने दिया। पहाड़ से फेंका, पानी में डुबाया, आग में जलाया–लेकिन उसकी आस्तिकता पे आँच न आयी। उसके आस्तिक प्राणों में पिता के प्रति दुर्भाव पैदा न हुआ। वही मृत्यु है आस्तिक की। जिस क्षण तुम्हारे मन में दुर्भाव आ जाए, उसी क्षण आस्तिक मर गया।

जीसस को सूली लगी। अन्तिम क्षण में उन्होंने कहा, 'हे परमात्मा! इन सभी को मात कर देना, क्योंकि ये जानते नहीं क्या कर रहे हैं। ये नासमझ हैं। कहीं ऐसा न हो कि तू इनको दण्ड दे। ये दया के योग्य हैं, दण्ड के योग्य नहीं।'

शरीर मर गया, जीसस को मारना मुश्किल है। इस आस्तिकता को कैसे मारोगे; किस सूली पर लटकाओगे, किस आग में जलाओगे?

न, प्रह्लाद अपना गीत गाए चला गया।

नास्तिकता विध्वंसात्मक है। यही अर्थ है कि हिरण्यकश्यप की बहन है अग्नि। हिरण्यकश्यप की बहन है अग्नि–यानी विध्वंस नास्तिकता सहोदर हैं, एक ही साथ पैदा हुए हैं; जैसे एक ही पेट से पैदा हुए हैं; जैसे भाई-बहन जैसा नाता है। जहाँ-जहाँ नास्तिकता है वहाँ-वहाँ होलिका मौजूद होगी–वह बहन है, वह छाया की तरह साथ लगी है।

और आश्चर्य मत करो! पूछा है, आश्चर्य तो यही है कि वह सभी जगह बच जाता है और प्रभु के गुण गाता है। आश्चर्य मत करो। जिसे प्रभु का गुणगान आ गया, जिसने एक बार उस स्वाद को चख लिया उसे फिर कोई आग दुखी नहीं कर सकती। जिसने एक बार उस महाजीवन को जान लिया, फिर उसे कोई मृत्यु मार नहीं सकती। जिसने एक बार उसका सहारा पकड़ लिया, फिर उसे कोई बेसहारा नहीं कर सकता।

आश्चर्य मत करो। आश्चर्य होता है, यह स्वाभाविक है। पर आश्चर्य मत करो।

स्वभावतः तब से इस देश में उस परम विजय के दिन को हम उत्सव की तरह मनाते रहे हैं। होली जैसा उत्सव पृथ्वी पर खोजने से न मिलेगा। रंग गुलाल है। आनंद उत्सव है। तल्लीनता का, मदहोशी का, मस्ती का, नृत्य का, नाच का–बड़ा सतरंगी उत्सव है। हँसी के फुव्वारों का, उल्लास का, एक महोत्सव है। दीवाली भी उदास है होली के सामने। होली की बात ही और है। ऐसा नृत्य करता उत्सव पृथ्वी पर कहीं भी नहीं है। ठीक भी है। एक गहन स्मरण तुम्हारे भीतर जगता रहे कि इस जगत में सबसे बड़ी विजय नास्तिकता के ऊपर आस्तिक की विजय है; कि सदा-सदा बार-बार तुम याद करते रहो कि आस्तिकता यानी आनंद।

आस्तिकता उदासी का नाम नहीं है। अगर आस्तिक उदास मिले तो समझना कि चूक हो गयी है; बीमार है, आस्तिक नहीं है। अगर आस्तिक नृत्य से भरा हुआ न मिले तो समझना कि कहीं राह में भटक गया। कसौटी यही है।

धर्म उदासी नहीं है–नृत्य, उत्सव है। और होली इसका प्रतीक है। इस दिन 'ना' पर 'हाँ' की विजय हुई। इस दिन विध्वंस पर सृजन जीता। इस दिन अतीत पर वर्तमान विजयी हुआ। इस दिन शक्तिशाली दिखायी पड़ने वाले पर निर्बल-सा दिखायी पड़ने वाला बालक जीत गया। नये की, नवीन की, ताजे की विजय–अतीत पर, बासे पर, उधार पर। और उत्सव रंग का है। उत्सव मस्ती का है। उत्सव गीतों का है।

धर्म उत्सव है–उदासी नहीं। यह याद रहे। और तुम्हें नाचते हुए, परमात्मा के द्वार पर पहुँचना है। अगर रोओ भी तो खुशी में रोना। अगर आँसू भी बहाओ तो अहोभाव में बहाना। तुम्हारा रुदन भी उत्सव का ही अंग हो, विपरीत न हो जाए। थके-माँदे लम्बे चेहरे लिए उदास, मुर्दों की तरह, तुम परमात्मा को न पा सकोगे, क्योंकि यह परमात्मा का ढंग ही नहीं है। जरा गौर से तो देखो, कितना रंग उसने लिया है! तुम बेरंग हो के भद्दे हो जाओगे। जरा गौर से देखो, कितने फूलों में कितना रंग! कितने इन्द्रधनुषों में उसका फैलाव है! कितनी हरियाली में, कैसा चारों तरफ उसका गीत चल रहा है! पहाड़ों में, पत्थरों में, पक्षियों में, पृथ्वी पर, आकाश में, सब तरफ उसका महोत्सव है! इसे अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे, ऐसे ही हो जाना उससे मिलने का रास्ता है।

गीत गाते कोई पहुँचता है, नाचते कोई पहुँचता है– यही भक्ति का सार है।

दूसरा प्रश्न : याद रफीक हो तो रिफाकत ज़रूर है
कसम तुझे अल्लाह की बनाखत जरूर है
यारी करके देखा यार मिलता नहीं
बेवफा मिलता है लेकिन बावफा मिलता नहीं।

–तो फिर यारी करके नहीं देखा। हम भी देखे–मिलता है। तुम्हारी मानें कि अपनी ? फिर यारी में कहीं कुछ भूल है। तुमने सोचा होगा, यारी की–कर नहीं पाए। बड़ी सरलता से आदमी अपने को समझा लेता है कि मैं तो सब कर रहा हूँ, मिलता नहीं।

क्या किया है तुमने ? यारी क्या की है ? रोए ? चीखे ? तड़फे ? छाती में तूफान उठा, झंझावात आयी ? अपने को चढ़ाने की तैयारी दिखायी ? अपने को खोने का साहस किया ? यारी क्या की अभी ? अभी उसके आशिक हुए ? लोग कुछ थोड़ा-बहुत कर लेते हैं, और थोड़ा-बहुत भी करते हैं बहुत कुछ पाने की आशा में।

कहते हो–बेवफा मिलता है लेकिन बावफा मिलता नहीं। तुम बावफा हो ? तुमने वफा पूरी की है ? क्योंकि मेरे देखे तो ऐसा है, जो तुम हो वही मिलता है। जैसे तुम हो वैसा ही मिलता है। परमात्मा दर्पण की भाँति है, तुम्हारे ही चेहरे को झलका देता है। अगर तुम बेईमान हो, बेईमान मिलेगा। अगर तुम धोखेबाज हो, धोखेबाज मिलेगा। अगर तुम चालबाजी कर रहे थे तो तुम जीत न पाओगे; वह तुमसे ज्यादा चालबाजी कर जाएगा।

सरल हो के जाओ ! कुछ माँगते हुए मत जाओ, क्योंकि माँग में ही गड़बड़ है; क्योंकि माँगने का मतलब ही हुआ कि तुमने यार को न माँगा, कुछ और माँगा। लेकिन सभी की ऐसी आदत है। अहंकार का यह ढंग और शैली है कि अहंकार मान लेता है कि मैंने तो सब कुछ किया; लेकिन दूसरी तरफ से प्रत्युत्तर नहीं आ रहा है।

बच्चन का एक गीत है–सुनो इसे ठीक से।

इतने मत उन्मत्त बनो
जीवन मधुशाला से मधु पी
बन कर तन-मन मतवाला
गीत सुनाने लगा झूम कर
चूम-चूम कर मैं प्याला
शीश हिला कर दुनिया बोली
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत उन्मत्त बनो !

बहुत लोग पी चुके हैं। ऐसी उधार शराब से, ऐसी बाज़ार में बिकनेवाली शराब से बहुत लोग सोच लिये हैं कि हो गये मतवाले ! इतना सस्ता नहीं है मतवालापन। उसकी शराब खोजनी ज़रा कठिन बात है। अंगूर की नहीं, आत्मा की शराब ज़रा कठिन बात है।

इतने मत संतप्त बनो
जीवन मरघट पर अपने सब
अरमानों की कर होली

चला राह में रोदन करता
चिताराख से भर झोली
शीश हिला कर दुनिया बोली
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत संतप्त बनो !

ये ढोंग न चलेंगे। दुनिया बहुत देख चुकी है। यारों की यारी, मतवालों का मतवालापन–सब ऊपर-ऊपर है। राख लगा लेने से कहीं भीतर का पता चलता है ? ऊपर से शोरगुल मचाने से कहीं भीतर में कोई क्रान्ति घटित होती है ?

और ध्यान रखना, जब भी तुम्हें लगे कि हाथ में कुछ न आया, तब समझ लेना कि अपेक्षा की थी कुछ। अपेक्षा के बिना विषाद होता ही नहीं है। तुमने वफा माँगी होगी तो बेवफा मिली। जब तुम माँगोगे कुछ, उससे विपरीत पाओगे। माँगना ही मत। बिन माँगे मोती मिलें, माँगे मिले न चून। यह परमात्मा की तरफ जाने का रास्ता भिखमंगेपन का नहीं है, सम्राटों जैसा है। तुम माँगना मत, तो मिलता है। तुम माँगो कि तुमने ही बाधा खड़ी कर दी। तुम्हारी माँग ही अड़चन बन जाती है।

'यारी करके देखा यार मिलता नहीं।'

नहीं, देखा ही नहीं। जिन ने यारी करके देखा उन्हें सदा मिला। पूछो मन्सूर से ! पूछो बुद्ध से ! पूछो नारद से ! पूछो मीरा से, चैतन्य से ! पूछो फरीद से, कबीर से, नानक से ! करोड़ों गवाह हैं इसके, कि जिन्होंने यारी की उनको यार मिलता है। और परमात्मा और बेवफा ! ऐसा होता ही नहीं। ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। तुम्हारी ही कहीं भूल होगी। तुम कहीं अधैर्य में, जल्दी में लगे हो। भीतर से तुमने पुकारा ही नहीं। ऊपर-ऊपर से आवाज दी थी, और भीतर सन्देह रहा होगा।

मैंने सुना है, विवेकानंद अमरीका के एक गाँव में बोले, तो उन्होंने बाइबिल का एक उदाहरण दिया कि 'यदि तू पहाड़ से भी कह दे आस्था से भर के कि हट जा, तो पहाड़ हट जाता है।' एक बूढ़ी औरत सुन रही थी। उसने कहा, यह हमको खयाल ही न था। उसके घर के पीछे एक पहाड़ है और उसकी वजह से हवा भी नहीं आती और गरमी में तप भी जाती है पहाड़ी। तो उसने कहा, यह तो बड़ा ही सरल है। वह भागी घर। उसने कहा कि हटा दो, इसमें दिक्कत ही क्या है। उसने जा के खिड़की खोल के एक दफा सोचा, आखिरी बार तो और देख लें, फिर तो हट ही जाएगा। खिड़की खोल के देखा, खिड़की बंद की, उसने कहा, 'हे परमात्मा ! श्रद्धा से भर के कह रही हूँ, हटा इस पहाड़ को। बिलकुल हटा दे।' फिर दो-तीन मिनट उसने वक्त भी दिया भगवान को। उसने खिड़की खोली–वे पहाड़ वहीं के वहीं हैं। और उसने कहा, 'जा भी, मुझे पहले ही से पता था कि कहीं कोई पहाड़ ऐसे हटते हैं !'

पहले से ही पता था कि कहीं पहाड़ ऐसे हटते हैं ! जब पहले से ही पता था तो वह जो प्रार्थना थी, ऊपर-ऊपर रही होगी, भीतर तो सन्देह ही रहा होगा।

एक गाँव में वर्षा न हुई, तो गाँव के पुजारी ने सारे गाँव के लोगों को इकट्ठा किया

कि प्रार्थना करेंगे, वर्षा हो जाएगी । सारा गाँव आ गया । पुजारी भी चला गाँव के बाहर जहाँ सब इकट्ठे हो रहे थे, एक मंदिर के पास । पुजारी के पास ही एक छोटा-सा बच्चा भी चल रहा था एक बड़ा छाता लिये । उस पुजारी ने कहा, 'नालायक ! छाता कहाँ ले जा रहा है ? ' उसे बच्चे ने कहा, 'लेकिन मैंने सोचा कि जब प्रार्थना होगी तो वर्षा भी होगी, लौटते में दिक्कत होगी । ' मगर एक छोटा बच्चा ही लाया था । खुद पुजारी भी छाता ले के न आया था । गाँव की भीड़ इकट्ठी हो गयी, कोई छाता न लाया था । एक छोटा बच्चा ही प्रार्थना का पात्र था । एक वही भरोसे से आया था कि जा ही रहे हैं प्रार्थना करने तो वर्षा होगी । लेकिन पुजारी ने उसकी श्रद्धा भी भ्रष्ट कर दी । उसने कहा, 'अबे नालायक ! यह छाता कहाँ ले जा रहा है ? वर्षा ही तो नहीं हो रही वर्षों से, प्राण तड़पे जा रहे हैं और तू छाता लिये घूम रहा है ! ' उसको भी सन्देह जगा दिया । प्रार्थना भी खराब हो गयी । मुझे लगता है, उस दिन वर्षा हो सकती थी । उस अकेले एक बच्चे की प्रार्थना से भी हो सकती थी । मगर उसकी प्रार्थना भी खराब हो गयी ।

नहीं, तुमने अभी खोजा ही नहीं यार को । उस प्यारे को खोजने के लिए बड़ी हार्दिक उत्कंठा चाहिए और धैर्य चाहिए । तीन मिनट का समय दे के खिड़की खोल के मत देख लेना ।

सुकूं है मौत यहाँ जौके-जुस्तजू के लिए
ये तश्नगी वो नहीं जो बुझाई जाती है ।

जो उसकी खोज पे निकलते हैं, वे कोई प्यास बुझाने थोड़े निकलते हैं । वे कहते हैं—ये तश्नगी वो नहीं जो बुझाई जाती है । यह कोई प्यास ऐसी थोड़े ही है जो बुझाने की जरूरत है । यह तो प्यास बड़ी प्यारी है । वे तो कहते हैं, 'जितनी याद करवाए और जितनी प्रतीक्षा करवाए, तेरी कृपा ! तेरा मिलन ही थोड़ा सुखद है, तेरा इंतजार भी ! '

भक्त कहता है, छिपा रहे जितना छिपना हो ! अच्छा ही हुआ, और प्रार्थना कर लेंगे थोड़ी । मिल जाएगा तो फिर क्या होगा ? छिपा रहे । थोड़ा और इन्तजार सही । उसका इन्तजार भी प्यारा है ।

सुकूं है मौत यहाँ !

उसकी राह पर जो सुकून की तलाश कर रहे हैं, चैन की तलाश कर रहे हैं, वे तो गलती में हैं ।

सुकूं है मौत यहाँ जौके-जुस्तजू के लिए ।

जो जीवन की तलाश पर निकले हैं, परमात्मा की तलाश पे निकले हैं, उनके लिए चैन की बात ही नहीं उठानी चाहिए ।

ये तश्नगी वो नहीं जो बुझाई जाती है ।

यह तो प्यास बढ़ाई जाती है । प्रार्थना तो प्यास में घी का काम करती है; जैसे घी आग में पड़ता है, ऐसे प्रार्थना प्यास में पड़ती है । भभकती है आग । एक ऐसी घड़ी आती है कि तुम प्यास रह जाते हो; तुम्हारे भीतर कोई ऐसा भी नहीं रह जाता जो कहे, मैं प्यासा हूँ, वरन् ऐसी ही भावना रह जाती है कि मैं प्यास हूँ । उसी घड़ी यार मिल जाता है । यार तो मिला ही हुआ है ।

यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी
यह वियोगी की लगन है
यह पपीहे की रटन है ।

तीसरा प्रश्न : भगवान इस समय और इस जगह पर आपके और हमारे दर्म्यान क्या करवाता है ? आप में और हम में फर्क क्या है और वास्ता क्या है ?

बड़ा खेल करवाता है । मुझे बुलवाता है, तुम्हें सुनवाता है । मगर वही मुझसे बोलता है, वही तुमसे सुनता है । समझ लोगे तो बड़ी रसधार बहेगी क्योंकि वही मुझसे बोला है, वही तुमसे सुनने चला आया है । उसके सिवा कोई और नहीं है । परमात्मा अपने ही साथ लुका-छिपी खेलता है । यही उसकी लीला है । यही उसके होने का ढंग है ।

तुमने कभी अपने साथ लुका-छिपी खेली ? कभी तुमने ताशों का खेल खेला अकेले ही ? कभी-कभी ट्रेन में मैं यात्रा करता था, तो कुछ लोग मिल जाते अकेले, मेरे डब्बे में होते । वे कहते, 'आप साथ देंगे ? ' मैं कहता, 'नहीं । मैं जरा और दूसरे खेल में लगा हूँ, आप बाधा न दें । ' तो फिर वे अकेले ही ताश बिछा लेते । अकेले ही दोनों तरफ से चालें चल रहे हैं ।

परमात्मा दोनों तरफ से चालें चल रहा है । राम में भी वही है और रावण में भी वही है । और अगर रामायण पढ़ के तुम को यह न दिखायी पड़ा कि रावण में भी वही, तो तुम चूक गये, रामायण समझ न पाए । अगर यही दिखायी पड़ा कि राम में ही केवल है तो बस भूल गये, भटके । रावण में भी वही है ।

अँधेरा भी उसी का है, रोशनी भी उसी की है । बोलता भी वही मुझसे है, सुनता भी वही तुमसे है । तुम जिसे खोज रहे हो वह तुम में ही छिपा है । खोजता भी वही है, खोजा जा रहा भी वही है । जिस दिन जानोगे, जागोगे, उस दिन हँसोगे ।

झेन फकीर बोकोजू परम ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो लोगों ने उससे पूछा कि 'परम ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद तुमने पहली बात क्या की ? ' उसने कहा, 'और क्या करते ? एक प्याली चाय की माँगी । ' लोगों ने कहा, 'प्याली चाय की ! परम ज्ञान और प्याली चाय की ! ' उसने कहा, 'और क्या करते ? जब सारा खेल समझ में आया कि अरे, वही खोज रहा है, वही खोजा जा रहा है । तो और क्या करते ?

सोचा कि चलो बहुत हो गया, बड़ी लम्बी खोज हो गयी, एक प्याली चाय की पी लें। हँसे खूब!'

जापान में एक फकीर हुआ है जो हँसता ही रहा ज्ञान के बाद। गाँव-गाँव चलता रहा। होतेई उसका नाम था। हँसता ही रहता। लोग उसको मंदिरों में ले जाते कि कुछ बोलो। तो वह खड़ा हो जाता और हँसता। लोग कहते कि कुछ बोलो। वह कहता, 'अब और क्या बोलें! और हमारी फजीहत करवाओगे! देख रहे खेल, हँस रहे! वही खोज रहा, वही खोजा जो रहा। अब और किससे बोलना, क्या बोलना है?'

तुम पूछते हो, 'भगवान इस समय और इस जगह पर हमारे और आपके दर्म्यान क्या करवाता है?'

बड़ा खेल करवाता है। जिस दिन समझ लोगे, उस दिन बड़ी रसधार बहेगी।

'आप में और हम में फर्क क्या है?'

मेरी तरफ से कुछ भी नहीं, तुम्हारी तरफ से बहुत है। और चेष्टा यही है कि तुम्हारी तरफ से भी न रह जाए। मेरी तरफ से तो तुम वहीं हो जहाँ मैं हूँ; तुम्हारी तरफ से तुम सोचते हो वहाँ नहीं हो। सोचते हो। वह तुम्हारा सपना है कि वहाँ नहीं हो—हो तो तुम भी वहीं। हो तो तुम भी भगवान। भगवत्ता तुम्हारा स्वभाव है। बुद्धत्व तुम्हारी नियति है। तुम उससे भाग नहीं सकते, बच नहीं सकते। जैसे कमल कमल है, गुलाब गुलाब है—ऐसे तुम बुद्ध हो, बुद्धत्व को उपलब्ध हो। लेकिन तुम्हें यह खयाल नहीं है—तुम्हें और हज़ार खयाल चढ़ गये हैं सिर पर। कोई समझ रहा है, दुकानदार हूँ; कोई समझ रहा है, डॉक्टर हूँ; कोई समझ रहा है, इन्जीनियर हूँ; कोई समझ रहा है, स्त्री हूँ; कोई समझ रहा है, पुरुष हूँ, कोई कहता है, हिन्दू हूँ; कोई कहता है, मुसलमान हूँ। तुम न मालूम और कितनी हज़ार बीमारियों से रुग्ण हो—सिर्फ एक को नहीं देखते जो तुम हो। तुम भगवान हो! दुकान वगैरह करो—भगवान होते हुए करो। चलने दो, खेल को रोकने की भी कोई ज़रूरत नहीं है। समझ लो कि खेल है। कुछ छोड़ के भाग जाने की भी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि भागता तो वही है जो समझता है कि खेल नहीं है। जो गंभीरता से ले लेता है वही भागता है। इसलिए तो मैं अपने संन्यासी को कहता हूँ, कहीं भागना मत! भागे कि शक। भागे कि मतलब साफ हो गया कि तुमने गंभीरता से ले ली बात। चलो पत्नी है तो ठीक है, बच्चे हैं तो ठीक हैं—उनमें भी भगवान है। अगर तुम उसी को देखने लगो, हर तरफ से वही तुम्हें पुकारा है।

पगध्वनि तो सुनता था कब से
पर तुमसे साक्षात न होता
असमंजस में पड़ी सुनहली
सुबह साँवली साँझ हो गयी

मेरे हर पल की व्याकुलता
अपने आप प्रणाम हो गयी
प्रतिध्वनि तो सुनता था कब से
ध्वनि का उद्गम ज्ञात न होता
पगध्वनि तो सुनता था कब से
पर तुमसे साक्षात न होता।

पगध्वनि तो तुमने भी सुनी है, अन्यथा तुम यहाँ न आते। प्रतिध्वनि तो तुमने भी सुनी है, अन्यथा तुम्हें कौन यहाँ ले आता? वही प्रतिध्वनि ले आयी है। लेकिन सीधा-सीधा साक्षात्कार नहीं हो रहा है। मैं उसकी तरफ मुँह किये खड़ा हूँ; तुम उसकी तरफ पीठ किये खड़े हो—इतना ही फासला है। बड़ा फासला नहीं है। अबाउट टर्न—इतना-सा फासला है। मिलिट्री में लोग कर लेते हैं। घूम जाओ!

'आप में और हम में फर्क क्या है?'

घूम जाओ!

'और वास्ता क्या है?'

मेरी तरफ से तो कोई भी नहीं, तुम्हारी तरफ से है। तुम कुछ पाने आये हो। वही बाधा बन रही है। तुम कुछ तलाश रहे हो। वही बाधा बन रही है। मैं तुमसे कह रहा हूँ कि तुम जिसे खोज रहे हो, वह मिला ही हुआ है। खोज के कारण ही तुम उलझन में पड़े हो।

मुल्ला नसरुद्दीन बाजार से जा रहा था—गधे पे बैठा, भागा। बाजार के लोगों ने पूछा, 'नसरुद्दीन! कहाँ?' मगर उसने कहा, 'मत रोको, अभी मैं जल्दी में हूँ।' दो-तीन घंटे बाद थका-माँदा वापस लौट रहा था। लोगों ने पूछा, 'कहाँ इतनी तेजी में जा रहे थे?' उसने कहा, 'मेरा गधा खो गया था।' लोगों ने कहा, 'तुम गधे पे सवार हो।' उसने कहा, 'यह तीन घंटे बाद समझ में आया। पहले तो एकदम घबड़ाहट में छलाँग लगा के गधे पे सवार हो गया, खोज में निकल गया। नासमझो, तुमने क्यों न कहा?' उन्होंने कहा, 'हम तो चिल्ला रहे थे, तुम बहुत जल्दी में थे।'

मैं चिल्ला रहा हूँ; लेकिन तुम कहते हो, बहुत जल्दी में हैं। तुम्हें हँसी आती है नसरुद्दीन पे, लेकिन तुमने कभी खयाल किया: चश्मा लगा के तुमने कभी चश्मा नहीं खोजा? तो फिर तुम्हें चश्मा लगाना ही नहीं आया है। कान पे कलम खोंस के तुमने कभी कलम नहीं खोजी? तो फिर तुम्हें कलम लगाना ही नहीं आया है। तुम अपनी जिंदगी में खुद ही खोज लोगे, अगर तुम गौर करोगे। कई बार विस्मरण की दशा होती है। चश्मा लगाये होते हो और उसी से खोजते होते हो कि चश्मा कहाँ है! जल्दी में यह हो जाता है। ट्रेन पकड़नी है और घड़ी समय बताए दे रही है और बाहर ड्रायवर हार्न बजा रहा है—घबड़ा गये, अब खोजने लगे, चश्मा कहाँ है। स्वभावतः चश्मा आँख के इतने करीब है कि एकदम दिखायी भी नहीं पड़ता।

परमात्मा उससे भी ज्यादा करीब है। करीब कहना ठीक नहीं—आँख के भीतर है, इसलिए कैसे दिखायी पड़े?

तुम्हारी अड़चन यही है कि तुम कुछ खोज रहे हो। और तुम जब खोजोगे तो तुम्हें कोई न कोई मिल जाएगा बताने वाला कि ऐसे खोजो। मैं तुमसे यही कहना चाहता हूँ कि खोज की जरूरत नहीं है—तुम जरा शांत हो के बैठ जाओ, छूट जाने दो ट्रेन, बजाने दो ड्रायवर को हार्न, तुम जरा शांत हो के बैठ जाओ, आँख बंद कर लो—तुम अचानक पाओगे : भीतर मौजूद है; उसे कभी खोया ही नहीं। जो खो जाए वह परमात्मा नहीं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, परमात्मा खोजना है। मैं कहता हूँ, 'बड़ी झंझट की बात है। तुमने खोया कहाँ?' वे सिर हिलाते हैं। वे कहते हैं, 'खोया! खोया तो कहीं भी नहीं।' तो फिर किसलिए खोज रहे हो?

मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर के बाहर सड़क पे कुछ खोज रहा था। एक मित्र आ गया। उसने कहा, 'क्या खोजते हो साँझ?' उसने कहा, 'मेरी चाबी गिर गयी है।' वह मित्र भी खोजने लगा। थोड़ी देर बाद उसने कहा कि 'कहाँ गिरी है? रास्ता बड़ा और रात हुई जाती है।' उसने कहा, 'यह मत पूछो। गिरी तो घर के भीतर है।' उसने कहा, 'नासमझ! फिर बाहर क्यों खोज रहे हो?' उसने कहा, 'यहाँ रोशनी है। घर में अँधेरा है। अँधेरे में क्या खाक खोजें? खोजने से भी क्या मिलेगी, अँधेरे में?'

तुम खोज रहे हो परमात्मा को, क्योंकि भीतर अँधेरा है और सब रोशनी बाहर है। आँख बाहर खुलती है, हाथ बाहर फैलते हैं—बस टटोलने लगे। लेकिन जिसको तुम टटोल रहे हो, वह तुम्हें वहाँ मिलेगा नहीं, क्योंकि वह तुम्हारे टटोलने में छिपा है, तुम्हारे भीतर छिपा है।

तो मेरी तरफ से तो कोई फर्क नहीं है। मेरी तरफ से कोई वास्ता भी नहीं है। फर्क और वास्ता तुम्हारी तरफ से है। जिस दिन वहाँ से भी गिर जाएगा उस दिन न तो मैं मैं हूँ, न तुम तुम हो—मिलन हो गया!

अंबर की आँखों में कोई
सूरज है न सितारा
केवल रजकण भर हैं सारे
यहाँ-वहाँ जो छितरे
अंध तिमिर के लिए वही सब
प्रखर विभा बन निखरे
धरती की छाती पर कोई
धारा है न किनारा
अंबर की आँखों में कोई
सूरज है न सितारा
चिर असंग के लिए न कुछ है
मेरा और तुम्हारा
जो अपने में पूर्ण, उसे कब
कोई भेद सुहाता
यह अपूर्ण के मन की छलना
जोड़ा करती नाता
परमहंस के लिए न कोई
है चंदन अंगारा
अंबर की आँखों में कोई
सूरज है न सितारा।

मेरे लिए तो कोई फर्क नहीं। मेरे लिए तो कोई भेद नहीं है। तो नाता तो कैसे होगा? अपने से ही कहीं कोई नाता होता? लेकिन तुम्हारे लिए नाता है, क्योंकि तुम कुछ खोजने आये हो। तुम्हारी खोज बीच में अड़ंगा बन रही है। मत खोजो! छोड़ दो आकाँक्षा! सिर्फ बैठे रहो मेरे पास। उसी को हमने पुराने दिनों में सत्संग कहा था। सत्संग का अर्थ है : खोज भी नहीं रहे, बस बैठे हैं पास-पास! जिसको मिल गया है या जिसने जान लिया कि कभी खोया न था, उसके पास बैठे हैं। बस बैठे हैं। न कोई विचार है न कोई कामना है—अचानक तुम तुम नहीं रह जाते। एक परदा हट जाता है। एक घूंघट उघड़ जाता है।

गुरु और शिष्य उसी क्षण न तो अलग रह जाते—न गुरु गुरु रह जाता, न शिष्य शिष्य रह जाता। सब फासले मिट जाते हैं। बीच की सब सीमाएँ खो जाती हैं। उस मिलन के क्षण में ही सत्य का हस्तांतरण है।

मुझे सुन के तुम्हें सत्य न मिलेगा, मुझे पी के मिलेगा। पीना बड़ी और बात है। पीना तभी हो सकता है जब तुम बिलकुल खाली बैठे हो। तब तुम एक रिक्त शून्य हो जाते हो। उस रिक्त शून्य में वर्षा हो सकती है। तुम खाली होओ तो भर दिये जाओ। तुम पहले से ही भरे हो तो भरना मुश्किल है।

चौथा प्रश्न : आपके पास बैठ कर लगातार डेढ घंटे तक आपका प्रवचन सुनते समय मैं भक्ति के भाव व रस में इतना डूब जाती हूँ कि पता नहीं मेरे दुख, चिंताएँ और परेशानियाँ कहाँ खो जाती हैं। एक अपूर्व शान्ति का अनुभव छा जाता है। परन्तु, प्रवचन के बाद आपका सान्निध्य छूटते ही थोड़ी देर में पुनः चिन्ताओं और परेशानियाँ से घिरने लगती हूँ। जो अनुभव आपके प्रवचन व सान्निध्य में होता है, वह कैसे अधिक समय तक रहे, यह बताने का अनुग्रह करें!

क्षण भर को भी अगर चिंताएँ खो जाती हैं, इच्छाएँ विसर्जित हो जाती हैं, तनाव तिरोहित हो जाता है, तो कुंजी तुम्हारे हाथ में आ गयी। कुछ और अब चाहने को है नहीं।

जो तुमने यहाँ किया है, वही तुम फिर-फिर करो। यहाँ क्या किया है? मुझे शांति से सुना। तुम्हारा ध्यान हट गया चिन्ताओं पर, इच्छाओं, बेचैनियों पर, उलझनों पर से—ध्यान मेरी तरफ लग गया। ध्यान जिस तरफ जाता है उसी तरफ जीवन हो जाता है। फिर घर वापस लौटे, फिर तुम अपना ध्यान, फिर तुमने अपना प्रकाश चिन्ताएँ को कुरेदने में लगा दिया, फिर चिन्ताएँ खड़ी हो गयीं।

तुम जिस तरफ ध्यान देते हो उसी तरफ तुम्हारा जीवन बहता है। और तुम जिस पे ध्यान देते हो उसी को तुम भोजन देते हो, शक्ति देते हो, अगर चिन्ताओं पे ध्यान दोगे, चिन्ताएँ बलशाली हो जाएँगी। ध्यान भोजन है। इसलिए तो हम सब इतने ध्यान के लिए आतुर होते हैं। हम सब चाहते हैं, लोग हम पे ध्यान दें। कोई तुम पे ध्यान न दे तो तुम लगते हो, जैसे मर गये। घर में आते हो, पत्नी ध्यान ही नहीं देती। वह अपना बर्तन ही मलती रहती है, तुम गुजर जाते हो, तो ऐसा लगता है जैसे खत्म हुए। बच्चे खेल रहे हैं, वे खेलते रहते हैं, तुम गुजर जाते हो, कोई ध्यान ही नहीं देता। रास्ते से निकलते हो, कोई नमस्कार नहीं करता। दस-पाँच दिन में तुमको लगेगा, क्या हुआ, मर गये क्या! कोई ध्यान ही नहीं दे रहा!'

इसलिए तो ध्यान की इतनी आकांक्षा होती है कि जो भी मिले, सिर झुकाए, 'कहो कैसे हो?' चित्त प्रफुल्लित होता है। पत्नी दौड़ी आए, जूते निकाले, पैर दबाएँ, चित्त प्रफुल्लित होता है।

एक आदमी मनोवैज्ञानिक के पास गया था। वह कह रहा था, 'मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। पाँच साल पहले जब मैंने शादी की थी, घर आता था तो पत्नी स्लीपर ले के दौड़ी आती थी और मेरा छोटा-सा कुत्ता स्वागत में भौंकता था। अब सब उलटा हो गया है। कुत्ता तो स्लीपर ले के आता है मुँह में दबाए और पत्नी भौंकती है।' उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि उलझन क्या है! सेवाएँ तो तुम्हें वही की वही मिल रही हैं।

लेकिन सेवाओं का सवाल नहीं, ध्यान का सवाल है। छोटा बच्चा भी ध्यान से जीता है। ध्यान ऊर्जा है। अभी मनोवैज्ञानिक इस पर बड़ा अध्ययन करते हैं कि ध्यान से ज़रूर कुछ गहरी ऊर्जा मिलती है। अगर माँ बच्चे पे ध्यान न दे वह सिकुड़ने लगता है। इसलिए तो बिना माँ का बच्चा, कितनी ही उसकी हिफाजत करो, कुछ उसमें कमी रह जाती है, कुछ खोया-खोया हो जाता है। क्योंकि बिना माँ के कौन उसे ध्यान दे? नर्स दूध दे देती है, वक्त पे दवा दे देती है, कंबल ओढ़ा देती है, कपड़े बदल देती है? लेकिन ध्यान नहीं देती। ध्यान क्यों दे? उसका अपना बेटा घर प्रतीक्षा कर रहा है ध्यान के लिए तो। तो सब इन्तज़ाम कर दो बच्चे के लिए, सिर्फ माँ का ध्यान न मिले, वह प्रेमपूर्ण उष्मा न मिले, वे प्रेमपूर्ण आँखें न दिखायी पड़ें कि कोई फिक्र करता है, कोई मेरे लिए आतुर है, कोई मेरी प्रतीक्षा करता है, मेरे हँसने से किसी के जीवन में फूल खिलते हैं, मेरे उदास होने से कोई उदास हो जाता है, कहीं मेरा होना किसी दूसरे के होने पर भी बल रखता है—तो बस बच्चे को प्राण मिलने लगते हैं।

तुमने देखा, छोटा बच्चा गिर जाए तो पहले खड़े हो के देखता है कि माँ आसपास है! हो तो रोता है, न हो तो नहीं रोता। बड़े आश्चर्य की बात है, गिरने से नहीं रोता; गिरने का कोई संबंध ही नहीं रोने से। माँ हो तो यह मौका ही नहीं चूकेगा ध्यान का; चिल्लाएगा, रोएगा, माँ ध्यान देगी। माँ नहीं है—क्या फायदा! फजूल लोग खड़े हैं, और हँसी होगी। वह अपना चुपचाप झाड़ के चल पड़ता है।

मैं एक छोटे बच्चे के साथ एक घर में मेहमान था। माँ उसकी बाहर गयी थी। मैं बैठा था, वह खेल रहा था। वह गिर पड़ा। उसने चारों तरफ देखा, मुझे बैठा देखा, उसने सोचा कि.....अजनबी आदमी है....! वह बैठा रहा। आधा घंटे बाद, मैं तो भूल ही गया कि कब गिरा। जब उसकी माँ लौटी, वह एकदम से रोने लगा। मैंने पूछा कि हुआ क्या तेरा, तू बिलकुल ठीक है। वह कहता है, 'आधा घंटा पहले गिरा था।'

'तू तब क्यों नहीं रोया, नासमझ?'

उसने कहा, 'फायदा क्या है?'

वह याद रखा उसने। अब कोई दर्द भी नहीं हो रहा है, मगर माँ ध्यान देगी, पुचकारेगी, पुचकाएगी, हाथ फेरेगी—यह अवसर वह नहीं चूकना चाहता।

ध्यान भोजन है। ध्यान रखो, तुम जिसे ध्यान देते हो उसे जीवन देते हो। तो गलत को ध्यान मत दो। यहाँ सुनते हो मुझे, चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, आनंदित हो जाता है, एक शीतलता छा जाती है। तुमने ध्यान मेरी तरफ दिया! गये घर, फिर खोदने लगे अपने घाव, फिर उघाड़ने लगे अपनी मलहमें-पट्टियाँ, फिर अंगुलियाँ डालने लगे अपनी पीड़ाओं में। क्या ज़रूरत है?

करो यह-यहाँ से जाते समय ध्यान रखो कि अब उन्हीं घावों में हाथ नहीं लगाना है। पुरानी आदत है, हाथ चले जाएँगे, वापस लौटा लो! फिर तुम्हें अड़चन होगी कि अगर कुछ न करें तो क्या करें! तो ध्यान देने को कुछ और बहुत घट रहा है चारों तरफ। पक्षियों के गीत हैं। उतना मधुर तो मैं तुमसे बोल भी नहीं सकता। जो वे तुमसे कह रहे हैं, वह तो मैं कहना चाहता हूँ, कह नहीं पाता। तुम पक्षियों के गीत ही सुनो। चुप बैठ के सारा ध्यान उन पर लगा दो। इससे भी ज्यादा गहरा सत्संग हो जाएगा। हवाएँ वृक्षों को कँपाती हैं। हवाओं की धुन वृक्षों के पत्तों में बजती है, उसे सुनो। परमात्मा वहाँ और भी अकलुषित भाव से प्रगट हुआ है। परमात्मा वहाँ और भी नैसर्गिक भाव से प्रगट हुआ है। झरने के पास बैठ जाओ, झरने की आहट सुनो, नाद सुनो।

तुम कहोगे, 'कहाँ झरने खोजें ? कहाँ से पक्षी लाएँ ? कहाँ वृक्ष....? बीच बाज़ार में रहते हैं। ' कोई हर्जा नहीं है। सुनने की कला चाहिए। तो राह के शोरगुल को सुनो। सिर्फ राह के शोरगुल को सुनो। मत कहो, अच्छा है बुरा है, बस सिर्फ सुनो। कारें दौड़ती हैं, बसें निकलती हैं, शोरगुल है, बच्चे चिल्लाते हैं, कुत्ते भौंकते हैं, बाज़ार लगा है—चुपचाप सुनो। तुम एक दिन चकित हो के पाओगे कि अगर ध्यान से सुना तो वहीं ध्यान लग जाएगा। और उस बाज़ार के कलरव में एक संगीत का जन्म होने लगेगा। वह बाज़ार का कलरव भी है तो उसी का, परमात्मा का, जितना पक्षियों के कंठों की आवाज है। वह कोयल से ही नहीं बोलता, कौवों से भी वही बोलता है। बाज़ार भी उसी का बाज़ार है। असली बात, अपने घावों पर ध्यान मत लगाओ, कहीं भी ध्यान लगाओ। ध्यान को अपने से मुक्त करो, ताकि धीरे-धीरे तुम्हारी यह सामर्थ्य बन जाए कि यह पुरानी आदत चिंताओं को उघाड़ने की, उखाड़ने की मिट जाए। जब यह आदत मिट जाएगी तब मैं तुमसे कहूँगा, अब बाहर का भी ध्यान छोड़ो। अब आँख बंद करो, कहीं भी ध्यान न लगाओ। अब सिर्फ आँख बंद करके खाली बैठे रहो। उस शून्य से तुम्हें परम संगीत सुनायी पड़ेगा। वही परम सत्संग है। उसी तरफ तुम्हें ले चल रहा हूँ। चाबी तो तुम्हें मिल गयी है। अब ज़रा उस चाबी का उपयोग करो। ज़रा परमात्मा की याद को सब तरफ से पकड़ो। अपनी छोड़ो। उसकी सुनो !

दिन वही दिन हैं, शब वही शब है
जो तेरी याद में गुज़र जाएँ।

सब तरफ से उसकी याद को उठाओ। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि बैठ के राम-राम जपो। बहुत जप रहे हैं लोग, उससे कुछ नहीं होता। उससे सिर्फ राम को नींद आने में बाधा पड़ती है। कई तो माइक लगा के, लाउड स्पीकर लगा के राम-राम जप रहे हैं, वे राम को सोने ही नहीं देते। उस चिल्ल-पों से कुछ भी न होगा। उस शोरगुल से कुछ सार नहीं है। तुम्हारी बकवास से कुछ न होगा। तुम्हारी शान्ति से होगा।

और अन्तिम बात खयाल रखो कि सब सत्संग अन्ततः तुम्हें अपने अन्तरंग में ले जाने के लिए है। और सब ध्यान वस्तुतः उपाय है। मंजिल तो यह है कि तुम ऐसी दशा में आ जाओ जहाँ ध्यान की भी ज़रूरत न रहे—बस तुम हो, काफी हो !

न देखा कहीं वह जल्वा जो देखा खान ए दिल में
बहुत मस्जिद में सर मारा बहुत-सा ढूंढा बुतखाना।

—बहुत मंदिर, बहुत मस्जिद खोजे, मगर जो महोत्सव, जो सौंदर्य, जो जल्वा खुद के भीतर हृदय में देखा वह कहीं भी न देखा।

न देखा कहीं वह जल्वा जो देखा खान ए दिल में
बहुत मस्जिद में सर मारा बहुत-सा ढूंढा बुतखाना।

आखिरी सवाल : भगवान ! आपको जानने से पहले मैं राधास्वामी संत से प्रभावित था, लेकिन उनसे दीक्षा नहीं ली, क्योंकि वहाँ माँस और शराब छोड़ने की शर्त थी। फिर आपकी किताब पढ़ के कुछ प्रयोग किये और अपने में परिवर्तन पाया। आधा पागल तो लोग मुझे पहले से ही कहते थे, क्योंकि मैं ज्यादा बोलता था। लेकिन अब नज़दीकी दोस्त भी कहने लगे हैं कि मैं पागलपन की तरफ तेजी से बढ़ रहा हूँ। वैसे मेरा बोलना ज़रूर बढ़ गया है, लेकिन भीतर मैं बढ़िया अनुभव करता हूँ। अब संन्यास लेने का जी हो रहा है, लेकिन उसमें गैरिक वस्त्र और माला की शर्त है। क्या केवल माला से ही काम नहीं चल सकता है ?

पहली तो बात—

अगर आधा ही पागल रहना हो तो माला से काम चल सकता है। मगर मेरी मानो तो पूरा पागल बनने का मजा ही और है। ऐसी भी कंजूसी क्या ? और जब पागल ही होने निकल पड़े ... तो आधा ! यह एक पाँव बाहर, यह एक पाँव भीतर तुम्हें दुविधा में डाल देगा। यह दो नावों पर सवारी खतरनाक होगी। लोग आधा कहते हैं, तुम पूरे ही हो जाओ।

और अगर तुम्हें भीतर बढ़िया लग रहा है तो क्या फिक्र करना किसी की ? असली सवाल तो भीतर है। तुम्हें भीतर बुरा लगे और सारी दुनिया कहे, 'बड़े समझदार और बड़े दाना', क्या फायदा उससे ? तुम्हें भीतर आनंद आ रहा है, छोड़ो फिक्र। चार दिन की दुनिया है, लोग पागल ही कह लेंगे, क्या हर्जा है ? मगर इतना मैं तुमसे कहूँगा, आधे होना ठीक नहीं। क्योंकि मजा हमेशा पूरे का है। आधा तो ऐसा है जैसा कुनकुना पानी; न पानी रहे ठीक से न भाप बने, त्रिशंकु हो गये, बीच में लटक गये। न घर के न घाट के, धोबी के गधे हो गये।

नहीं, यह न करो। यह मैं न करने दूंगा। मैं साथ न दूंगा इसमें। पूरा पागल होना हो तो आ जाओ।

मीरी में फकीरी में शाही में गुलामी में
कुछ काम नहीं बनता बेजुरअते रिंदाना।

पागलपन के बिना कहीं कुछ काम बनता ही नहीं।

मीरी में फकीरी में शाही में गुलामी में
कुछ काम नहीं बनता बेजुरअते रिंदाना।

रिंद की, शराबी की, पागल की मस्ती और पूरा जोश चाहिए, तो ही कुछ काम बनता है। जो पहुँचे हैं, वे पूरे-पूरे दौड़े हैं तो ही पहुँचे हैं। ऐसे आधे-आधे और बँधे-बँधे तुम दूर न निकल पाओगे घर से। तुम कोल्हू के बैल हो जाओगे। वहीं-वहीं चक्कर लगाते रहोगे।

पहली बात—

जब हुए बर्बाद ऐ 'आबाद' तब पाया पता
'बेनिशां हो कर मिला हमको निशाने कूए दोस्त ।

उस परम मित्र का पता तो जब सब अपना पता खो जाता है, तभी मिलता है।

दूसरी बात—

कहा है, 'राधास्वामी सत्संग से प्रभावित थे । वहाँ शर्त थी शराब-माँस छोड़ने की, इसलिए दीक्षित न हुए । ' यहाँ छोड़ने की कुछ शर्त नहीं है, कुछ लेने की शर्त है । छोड़ने में भी राजी न हुए, लेने में भी राजी न हुए, तो न राजी होने की कसम खा ली है क्या ? कुछ तो करो ।

पिछले प्रश्नोत्तर में नरेन्द्र ने अपने पिता के संबंध में एक प्रश्न पूछा था । वे एक जैन मुनि के दर्शन को गये थे । वे बड़े प्यारे आदमी हैं । तो जैन मुनि के पास जब तुम जाओ दर्शन को, तीर्थयात्रा को—वे गिरनार गये थे, वहाँ जैन मुनि के दर्शन को गये— तो मुनि ने कहा, अब यहाँ आ ही गये हो तो कुछ त्याग करो, कुछ छोड़ दो । उन्होंने कहा, 'महाराज ! अब आप कहते हैं तो कुछ करेंगे । लेकिन छोड़ना सधा-न-सधा, पीछे झंझट हो, कुछ ले लेते हैं । ' मुनि ने कहा, चलो ठीक । उन्हें क्या पता कि ये क्या ले लेंगे । इन्होंने कहा, 'अब तक धूम्रपान नहीं करते थे, अब से नियमित करेंगे। अब वे धूम्रपान करते हैं, क्योंकि अब तीर्थ में व्रत ले लिया तो उसको तो पूरा करना ही पड़ेगा । लोग उन्हें पागल समझते हैं, लेकिन वे आदमी बड़े गजब के हैं ।

छोड़ना क्या ? परमात्मा कहीं छोड़ने से थोड़े ही मिलता है ! बढ़ाओ अपने को, फैलाओ अपने को ! वहाँ तुमसे कहा, शराब-माँस छोड़ दो; मैं तुमसे कुछ छोड़ने को कहता नहीं । मैं कहता हूँ, माला गेरुआ ले लो ! यह मैं जानता हूँ कि अगर माला और गेरुआ लिया तो शराब और माँस छूट जाएगा । उसकी छोड़ने की बात मैं नहीं करता । वह कमजोरों की बात है । क्या छोड़ने की बात करनी ! हीरा ले लो, कंकड़-पत्थर छूट जाएँगे; और रखना हो तो रखे रहना, कंकड़-पत्थर ही हैं, रखे रहे तो क्या हर्जा है ! मगर ऐसा कभी देखा नहीं कि हीरा मिल जाए तो कंकड़-पत्थर न छूट जाएँ ।

और ज्यादा बोलने का पूछा है कि ज्यादा बोलता हूँ, इसलिए लोग आधा पागल समझते हैं । और लिखा है कि बोलना और थोड़ा बढ़ता जा रहा है ।

बोलने का अगर ज्यादा ही शौक है तो अण्ट-सण्ट बोलें, अनर्गल बोलें, सधुक्कड़ी बातें बोलें कि खुद की भी समझ में न आएँ, क्या कह रहे हैं । लोगों को भी आनंद आएगा, तुम्हें भी आनंद आएगा । समझदारी की न बोलें । समझदारी रोग है । चलें, यह कोशिश करके देखें । यहीं से शुरू कर दें । तुम्हें भी मजा आएगा, लोगों को भी मजा आएगा । और धीरे-धीरे तुम पाओगे कि बोलने को कुछ भी तो नहीं है, क्या बोले चले जा रहे हो ? कहने को कुछ हो, कहो भी; कहने को है क्या ?

ईसाइयों का एक सम्प्रदाय है, कीमती सम्प्रदाय है । उसमें वे देव-वाणी—इसको वे देव-वाणी कहते हैं, अनर्गल ! उनके चर्च में लोग इकट्ठे हो जाते हैं । फिर प्रत्येक व्यक्ति शांत हो के बैठ जाता है और फिर जो भी अनर्गल भीतर आता है, वह बोलने लगता है । मगर अपनी तरफ से नहीं बोलता । अपनी तरफ से कुछ नहीं बनाता । कुछ आता है तो बोल देता है, नहीं तो चुप बैठा रहता है । धीरे-धीरे पूरे चर्च के लोग अनर्गल बोलने लगते हैं । अण्ट-सण्ट आवाजें, शोरगुल, न कोई भाषा, न कोई तुक, न कोई व्याकरण, न ऐसी भाषा जिसको कोई समझ सके, कुछ भी बोल रहे हैं । लेकिन पन्द्रह-बीस मिनट भी ऐसा बोलने के बाद चित्त को बड़ी गहरी शांति मिलती है । क्योंकि कूड़ा-कर्कट जो सिर में इकट्ठा हो जाता है, निकल जाता है ।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि अगर बोलने में ही मजा आता है तो उसका मतलब केवल इतना है कि तुम कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर लेते होओगे, उसको तुम दूसरों में उलीच देते हो । निश्चित ही वे तुमसे परेशान होंगे, इसलिए पागल कहते हैं । उनको परेशान मत करो । एकांत में बैठ के बोलो, हर्जा क्या है ? झाड़, पत्थर, चट्टान, कहीं भी मिल बैठे दीवाने दो, हो जाने दी चर्चा ! चट्टान से बोल लो, हर्जा नहीं है। फिर चट्टान से बोलो तो हिन्दी बोलो कि अंग्रेजी, मराठी कि पंजाबी, क्या फर्क पड़ता है । चट्टान सभी भाषाएँ समझती है । तुम सभी मिला के बोलो तो भी चलेगा । झाड़ से बोल लिये, नदी से बोल आये, आकाश पड़ा है । और इनमें से कोई तुम्हें पागल न कहेगा । वे सब प्रसन्न होंगे और तुम्हें आशीर्वाद देंगे । आदमियों को न सताओ ! आदमी वैसे ही परेशान हैं । सुन लेते होंगे, क्योंकि मजबूरी है ।

और तुम कहते हो कि अब तो पास के, निकट के दोस्त भी घबड़ाने लगे हैं ! आखिर सीमा होती है । निकट के हैं, सुनना पड़ता है । लोग ऊबते रहते हैं और सुनते रहते हैं । मत सताओ उनको । यह हिंसा है । तुम्हें अच्छा लगता है—एकान्त में चले गये, अनर्गल बोले ! उससे ध्यान उपलब्ध होगा । अगर एक तीस-चालीस मिनट तुमने अनर्गल बोल लिया, दिल खोल के चिल्ला लिया, तुम एकदम हलके हो जाओगे, फूल-से हलके हो जाओगे । और तब तुम में एक क्षमता जाएगी कि तुम दूसरों से व्यर्थ न बोलोगे; सार्थक कुछ होगा तो ठीक है । तब तुम्हें दिखायी पड़ेगा कि दूसरे पागल की तरह बके जा रहे हैं; कोई जरूरत नहीं है बकने की, लेकिन बके जा रहे हैं । तब उनको भी धीरे-धीरे यही रास्ता सुझा देना; जो मैंने तुम्हें सुझाया, उनको तुम सुझा देना कि जंगल में एकांत में चले गये, वहाँ दिल खोल के बोल लिये ।

आधे पागल मत रहो । खूब समय गुजार दिया आधे में, अब ज़रा पूरे हो जाओ । और जिस दिन तुम पूरे हो जाओगे, उस दिन तुम पाओगे—

जब जखुद रफ्तगी से आँख खुली
सामने ही खड़े थे मंजिल के ।

जब पूरे तल्लीन हो जाओगे पागलपन में, उससे डूब के बाहर आओगे और आंख खुलेगी–शान्ति में, मौन में, शून्य में–तुम पाओगे : मंजिल के सामने ही खड़े हैं।

मंदिर के सामने ही हरेक व्यक्ति खड़ा है। कहीं और कई जगह ही नहीं है जहां तुम खड़े हो जाओ। मंदिर की सीढ़ियों पर ही हरेक खड़ा है।

आज इतना ही।

दिनांक १७ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना
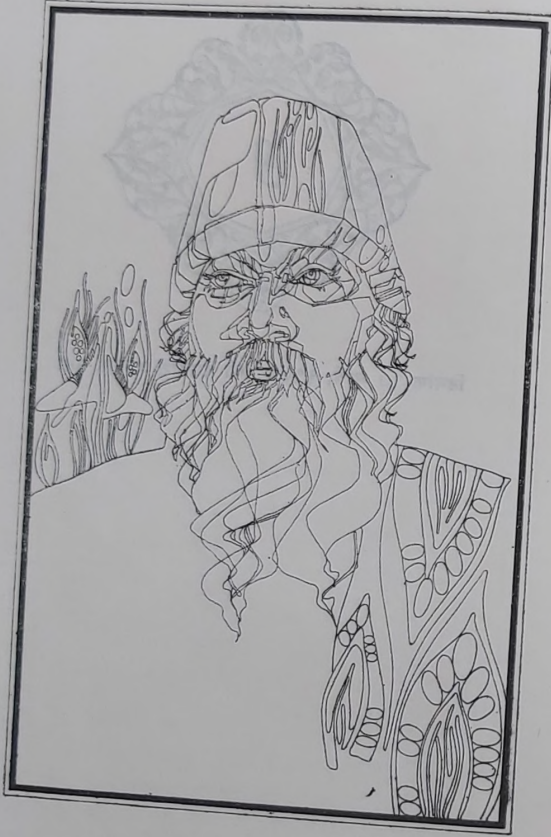
त्रिरूपभंगपूर्वकं नित्यदासनित्यकांता भजनात्मकं वा प्रेमैव कार्यम्, प्रेमैव कार्यम् ॥ ६६ ॥

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ॥ ६७ ॥

कण्ठावरोधरोमांचाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥ ६८ ॥

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि ॥६९॥

तन्मयाः ॥ ७० ॥

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ॥ ७१ ॥

नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादि-भेदः ॥ ७२ ॥

यतस्तदीयाः ॥ ७३ ॥

भक्ति-कान्ता जैसी-एकोन्मुखी

आज के लिए पहला सूत्र-
'त्रिभंगपूर्वकं'...।

'तीन-स्वामी, सेवक, सेवा-ऐसे रूपों को भंग कर नित्य दासभक्ति से या नित्य कान्ताभक्ति से प्रेम करना चाहिए-प्रेम ही करना चाहिए ।'

जीवन के सारे अनुभव त्रैत के हैं-द्वैत के ही नहीं, त्रैत के हैं । सत्य है अद्वैत । लेकिन मनुष्य के अनुभव सभी त्रैत के हैं । देखते हो कुछ, तत्क्षण तीन भंग हो जाते हैं-देखने वाला, दिखायी पड़ने वाली चीज़, और दोनों के बीच दर्शन का सम्बंध । जानते हो कुछ, तो ज्ञाता, ज्ञेय, और ज्ञान । ऐसी त्रिवेणी है सारे अनुभव की ।

सत्य एक है, लेकिन साधारणतः दिखायी पड़ता है, द्वैत है-ज्ञाता, ज्ञेय-क्योंकि बीच का ज्ञान दिखायी नहीं पड़ता; वह सरस्वती है, वह दृश्य नहीं होती । प्रयाग के तीर्थ पर तीन नदियाँ मिलती हैं-गंगा, यमुना, सरस्वती । गंगा दिखायी पड़ती है, यमुना दिखायी पड़ती है, सरस्वती अदृश्य है । तीर्थ बनाया ही इसलिए है वहाँ क्योंकि त्रिवेणी ही सारे जीवन का तीर्थ है । यहाँ दो तो दिखायी पड़ते हैं, तीसरा छुपा-छुपा है । द्रष्टा, दृश्य दिखायी पड़ते हैं, दर्शन का अनुमान करना पड़ता है । दृश्य भी पकड़ में आ जाता है, द्रष्टा भी पकड़ में आ जाता है-दर्शन को तुम अपनी मुट्ठी में न बाँध पाओगे; वह अदृश्य सरस्वती है । सरस्वती को ज्ञान की देवी कहा है, वह ज्ञान की प्रतिमा है । ज्ञान कहो, दर्शन कहो-वह छिपा हुआ स्रोत है ।

सत्य एक है-अद्वैत; साधारण देखने पर वह मालूम पड़ता है-द्वैत; ठीक से खोजने पे पता चलता है-त्रैत ।

नारद का यह पहला सूत्र कहता है, त्रिभंग से मुक्त हो जाना ज़रूरी है । त्रिवेणी के पार, त्रिवेणी से गहरे में उतरना है, ताकि उस एक स्रोत का पता चल जाए जहाँ से गंगा, यमुना, सरस्वती, सभी निकलती हैं और अंततः जा के फिर उसी स्रोत में विलीन हो जाती हैं । सागर का पता चल जाए, जहाँ से नदियों का आविर्भाव है और जहाँ नदियों का अवसान है ।

'तीन रूपों को भंग कर, नित्य दासभक्ति से या नित्य कान्ताभक्ति से प्रेम ही करना चाहिए, प्रेम ही करना चाहिए ।'

यह तीन के पार जाने का जो उपाय है, उसका नाम ही प्रेम है । प्रेम एकमात्र तत्व है संसार में, जो संसार के विपरीत है । प्रेम अकेला एक स्रोत है जो संसार के भीतर भी है और बाहर ले जाना वाला भी है; संसार में हो कर भी जो संसार में नहीं है; पृथ्वी पर जो किसी और लोक की किरण है; अंधकार में जो दूर सूरज की किरण है । उस किरण के सहारे को अगर पकड़ लिया तो सूरज तक पहुँच जाओगे ।

इसलिए प्रेम का अनुभव परमात्मा के निकटतम है । क्यों ? क्योंकि प्रेम के क्षण में न तो प्रेमी रह जाता न प्रेयसी रह जाती-प्रेम ही रह जाता है । अगर प्रेयसी भी हो और बीच में दोनों के प्रेम हो, तो यह प्रेम कामवासना है, प्रेम नहीं है । क्योंकि प्रेम तो त्रिभंग के पार है । वहाँ तीनों मिट जाते हैं और एक ही रह जाता है । सब स्वर एक ही महासंगीत में सम्मिलित हो जाते हैं ।

अगर तुमने कभी प्रेम का क्षण जाना हो तो जिससे तुमने प्रेम किया हो, या जिसके पास तुम्हारे जीवन में प्रेम का झरना फूटा हो, तो तुम्हें पता चलेगा कि कुछ ऐसा हो जाता है : तुम तुम नहीं रह जाते; कहीं दीवालें गिर जाती हैं, सीमाएँ धूमिल हो जाती हैं, भेद समाप्त हो जाते हैं । प्रेमी और प्रेयसी दूसरों को दो दिखायी पड़ते हैं; पर प्रेमी प्रेयसी में प्रविष्ट हो जाता है, प्रेयसी प्रेमी में प्रविष्ट हो जाती है । वहाँ भेद करना मुश्किल हो जाता है । कौन कौन है, इसका भी पता चलाना मुश्किल हो जाता है । इतना आत्मैक्य हो जाता है !

प्रेम का अर्थ है, दूसरा अपने जैसा मालूम पड़े, तभी प्रेम । अगर दूसरा दूसरे जैसा मालूम पड़ता रहे तो काम । काम तो संसार का है; प्रेम परमात्मा का है ।

इसलिए नारद कहते हैं, इस तीन के भंग के पार जाना हो, इस तीन के विभाजन के पार जाना हो-और पार जाए बिना परमात्मा की कोई गंध न मिलेगी-तो प्रेम ही एकमात्र मार्ग है । प्रेम ही करना चाहिए ! प्रेम ही करना चाहिए !

प्रेमैव कार्यम्, प्रेमैव कार्यम् ! बस एक प्रेम ही करने जैसा है । एक प्रेम ही बस होने जैसा है । एक प्रेम में ही डुबकी लगानी है और अपने को खो देना है ।

प्रेमी को पता भी नहीं चलता कि हुआ क्या है ! और अपने को खो देता है, गँवा देता है ।

जान तुझ पर निसार करता हूँ
मैं नहीं जानता हुआ क्या है !

तुम्हें इतना भी पता चल जाए कि प्रेम हुआ है तो फासला हो गया; तुम प्रेमी बन गये; त्रिभंग खड़ा हो गया ! यह भी पता नहीं चलता, हुआ क्या है ! बचता ही नहीं कोई जिसको पता चले कि हुआ क्या है !

तुम जब तक बने हो तब तक तो प्रेम होगा ही नहीं । तुम ही तो अवरोध हो ।

इधर तुम गिरे उधर प्रेम आविर्भूत हुआ । तुम्हारे गिरने से ही प्रेम का उठना है । तुम जब तक अकड़े खड़े हो तब तक प्रेम न हो सकेगा; तब तक तुम लाख प्रेम की बातें करो, कोरी होंगी, चले हुए कारतूस जैसी होंगी, चलाते रहो, उससे कुछ हल न होगा । बातचीत होगी । उसमें प्राण न होंगे, सत्त्व न होगा । हवा में साबुन की झाग के बबूले बनाते रहो, गीत गाओ, कविता करो—लेकिन यह सब अपने को भुलाने का उपाय है, क्योंकि तुम अभी हो ।

प्रेम कुर्बानी माँगता है । और छोटी-मोटी कुर्बानी नहीं । कुछ और देने से न चलेगा । तुम कहो, धन दे देंगे; तुम कहो, यश दे देंगे; तुम कहो, शरीर दे देंगे—नहीं कुछ और देने से न चलेगा, तुम्हें अपने को ही देना पड़ेगा ।

इसलिए प्रेम परम यज्ञ है । और दूसरे यज्ञ तो बड़े सस्ते हैं—घी डाल दो, अनाज डाल दो, धन-पैसे से हो जाते हैं । जब तक तुमने अपने को न डाला अग्नि में प्रेम की, तब तक तुमने यज्ञ किया ही नहीं, तब तक तुमने धोखा किया । असली को तो बचाते रहे, जो डालने योग्य था उसे तो बचाते रहे, जो डालने योग्य था ही नहीं उसको जलाते रहे । और गेहूँ और घी डालने से क्या होगा ? क्या बिगाड़ा है गेहूँ और घी ने तुम्हारा ? लेकिन आदमी ने हजारों उपाय खोजे हैं, ताकि अपने को बचा ले, कुछ और डालने से चल जाए ।

लेकिन प्रेम तुम्हें माँगता है; तुमसे कम पे राजी न होगा । तुम कुछ और दे के प्रेम को समझा न पाओगे । प्रेम तुम्हारी कीमत से मिलता है, जब तुम अपने को दाँव पे लगाते हो ।

अक्ल कहती है न जा कूचा-ए-कातिल की तरफ
सरफरोशी की हवश कहती है चल क्या होगा !

तुम्हारे भीतर दोनों आवाजें उठेंगी । तुम्हारी होशियारी कहेगी; अक्ल कहेगी ... अक्ल कहती है न जा कूचा-ए कातिल की तरफ ! यह परमात्मा तो बड़ा हत्यारा है, इसकी तरफ मत जाओ ! यह प्रेमी तो खतरनाक है ! इसमें तो तुम डूबोगे और खो जाओगे । यह तो तुम अपने कातिल की तरफ चले ।

यह ठीक है । परमात्मा कातिल है, खयाल रखना । मार ही डालेगा । तुम्हें बचने न देगा । तुम्हारी गर्दन उतरेगी । मगर तुम्हारी गर्दन जब उतरेगी तभी तुम्हारे जीवन में पहली दफा महाप्रकाश का जन्म होगा । तुम मिटोगे तभी तुम पाओगे, होने का लुत्फ क्या है, होने का मजा क्या है ! अस्तित्व की पहेली तुम्हें समझ आएगी । मिट कर ही पाओगे ।

जीसस ने कहा है : जो बचाएँगे वे खो देंगे अपने को । जो खोने को राजी हैं, वे बच जाएँगे ।

यह प्रेम का गणित बड़ा उलटा है । संसार का गणित यह है कि जो अपने को बचाएगा वह बचेगा, जो अपने को गँवाएगा वह खो जाएगा । संसार का गणित

कहता है, अगर धन बढ़ाना हो, रोको धन को, खर्च मत कर देना । रोकोगे तो ही बढ़ेगा । संसार का गणित कृपण बनाता है, कंजूस बनाता है । संसार का गणित एक तरह की आध्यात्मिक कब्जियत सिखाता है : रोक लो ! सड़ा-गला कुछ भी हो, रोक लो, कहीं खो न जाए !

मनस्विद कहते हैं कि कब्जियत कंजूस की बीमारी है । कंजूस को कब्जियत होती ही है । सभी कब्जियत वाले भला कंजूस न हों, लेकिन सभी कंजूस कब्जियत वाले होते हैं । क्योंकि जब तुम चीजों को पकड़ने लगते हो तो छोड़ने की हिम्मत खो जाती है । मल-मूत्र को भी त्यागने की हिम्मत खो जाती है, और तो क्या त्यागोगे !

कंजूस की पकड़ सभी चीजों पे होती है । उसके हाथ में जो पड़ जाए, वह पकड़ लेता है, मुट्ठी फिर उसकी खुलती नहीं । वह मुट्ठी बाँधना जानता है, खोलना भूल गया है । तो जीवन की सहज मल-निष्कासन जैसी क्रियाएँ भी रुक जाती हैं । रोकने की उसकी आदत इतनी सघन हो गयी है कि जाने-अनजाने वह रोक ही लेता है । अचेतन हो गयी है प्रक्रिया ।

संसार का गणित तुम्हें कंजूस बनाता है । वह कहता है, रोको तो ही बचेगा ।

मैंने सुना है, एक भिखमंगा एक द्वार पे खड़ा भीख माँग रहा था । गृहिणी बाहर आयी । भिखमंगे का चेहरा शालीन था, कुलीन था । वस्त्र यद्यपि फटे-पुराने थे, लेकिन लगते थे कभी उन्होंने रौनक देखी होगी । चेहरे से लगता था, अभिजात्य घर में पैदा हुआ होगा । पूछा कि यह दुर्दशा तुम्हारी कैसे हुई ? उसने कहा, 'यह तो पीछे बताऊँगा; अभी मुझे भूख लगी है ।' उसने उसे भीतर बुलाया, उसे ठीक से भोजन कराया, कपड़े भेंट किये और कहा, 'अब तुम कहो । यह तुम्हारी हालत कैसे हुई ?' उसने कहा, 'तुम घबड़ाओ मत ! अगर ऐसे ही भिखमंगों को देती रही तो ऐसी ही हालत तुम्हारी भी हो जाएगी । ऐसे ही हमारी हुई । दे दे के मिटे । तुम घबड़ाओ मत, जल्दी तुम्हारी भी हमारे जैसी हालत हो जाएगी ।'

संसार का गणित तो रोकने का है । प्रेम का गणित बिलकुल उलटा है । प्रेम है दान । और जो प्रेम सीख लेता है, वह और सब तो दे ही डालता है, अपने को भी दे डालता है । वस्तुतः वह अपने को देता है, उसी में सब दे दिया । जब मालिक को ही दे दिया तो फिर उसकी मालकियत कहीं पीछे बची ?

लेकिन बुद्धि तुमसे हमेशा कहती रहेगी, 'परमात्मा की तरफ मत जाओ, क्योंकि वहाँ गये कि मिटे । धर्म से बचो ।' इसलिए तो लोग धर्म की तरफ तभी जाते हैं जब एक पैर उनका कब्र में उतर जाता है; वे कहते हैं, अब तो मरना ही है, चलो अब थोड़ा धर्म भी कर लें । बुढ़ापे में, जराजीर्ण हो कर, जीवन आया और जा भी चुका, गर्द-गुबार छूट गयी है अब, पल भर के मेहमान हैं, अब गये तब गये—तब उन्हें परमात्मा का स्मरण आता है । यह भी बुद्धि की होशियारी है, बुद्धि कहती है, 'अब क्या हर्ज है, अब तो ले लो नाम !'

अक्सर तो ऐसा होता है कि आदमी ले भी नहीं पाता नाम, मर जाता है; बेहोश हो जाता है मरने के पहले । पंडित-पुजारी उसके कान में राम का नाम ले देते हैं । बेहोशी में गंगाजल उसके मुंह में डाल देते हैं । मंत्रोच्चार होता है । कथापाठ हो जाता है । वह मर रहा है, वह सुन भी नहीं सकता है अब । जब सुन सकता था, जब देख सकता था, तब उसने व्यर्थ की चीजें देखीं, व्यर्थ की चीज़ें सुनीं । जब हाथ फैल सकते थे तब वह कूड़ा-कर्कट सम्हाले रहा । अब मरते वक्त जब कुछ भी पकड़ने की क्षमता न रह गयी और जब सब छूटने ही लगा, जिसको पकड़-पकड़ के जिया था और सोचा था कि सारी संपदा यही है, जब अपने हाथ से जाने लगी—तब वह कहता है, 'चलो ! अब परमात्मा को ही अपने को दे दें ।' लेकिन यह देना कुछ सार्थक नहीं । इस देने से कुछ सार नहीं है । यह ऐसा ही है जैसे खोटे सिक्के को कोई दान कर दे ।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन बड़ा खुश था । मुझे मिलने आया । मैंने पूछा, 'बड़े प्रसन्न हो ?' कहने लगा, 'दो आदमियों का उपकार करके आ रहा हूँ ।' मुझे भरोसा न आया । पूछा, 'क्या उपकार किया है ?' उसने कहा, 'दस रुपये का एक नोट था नकली, मेरे पास । एक गरीब आदमी को मैंने भेंट किया और कहा, एक रुपया तू रख ले, नौ वापस कर दे । वह भिखमंगा गया पास की दुकान पर, उसने दस की रेजगारी ले ली । नौ मुझे वापस कर दिये, एक रख लिया उसने । दो आदमियों का भला करके आ रहा हूँ !' मैंने पूछा, 'इसमें दो कौन हैं जिनका भला हुआ ?' कहने लगा, 'एक तो भिखमंगे को एक रुपया मिला, और एक मुझे नौ रुपये मिले । क्योंकि नोट तो नकली ही था ।'

लोग दान भी करते हैं तो खोटे सिक्कों का कर आते हैं । तुम दान ही तभी करते हो जब तुम्हारे पास कोई ऐसी चीज़ आ पड़ती है जिसका तुम्हें कुछ उपयोग नहीं सूझता । मैं जानता हूँ, कुछ चीजें तो समाज में घूमती ही रहती हैं । तुम किसी को दे देते हो, फिर वह किसी को दे देता है, फिर वह किसी को दे देता है । व्यर्थ की चीजें होती हैं । भेंट करने का ही लोग मजा ले लेते हैं ।

संसार का सारा गणित यह है : पकड़ो, छूट न जाए ! और प्रेम का सारा गणित यह है कि छोड़ दो, क्योंकि जिन्होंने पकड़ा उनका छीन लिया गया है । जिन्होंने छोड़ दिया, उनका कोई छीनेगा कैसे ? इधर तुम देते हो—वस्तुतः तुम जो देते हो उसी के तुम मालिक हो । इस सूत्र को हृदयस्थ कर लो । कंठस्थ तो तुम कर सकोगे, उससे कुछ सार नहीं । हृदयस्थ कर लो ! जो तुम देते हो उसी के तुम मालिक हो । जो तुम पकड़ते हो उसके तुम गुलाम । जिसे तुम्हें देने की भी हिम्मत नहीं उसके तुम मालिक कैसे हो सकते हो ?

प्रेम तुम्हें मालिक बनाता है ।

स्वामी राम अमरीका गये । वे अपने को शहनशाह कहा करते थे । अमरीका में लोगों ने उनसे पूछा कि आपके पास कुछ भी नहीं है, आप अपने को शहनशाह कहते

हैं । उन्होंने कहा, 'इसीलिए ! सब दे डाला । जो-जो दे डाला उसके तो मालिक हो गये । और अपने को भी दे डाला । जिस दिन अपने को दिया, उस दिन मालकियत पूरी हो गयी । अब इस मालकियत को कोई छीन न सकेगा । हम शहनशाह हैं, क्योंकि हमारे पास कुछ भी नहीं है ।'

उन्होंने किताब लिखी तो किताब को नाम दिया : 'राम बादशाह के छह हुक्म-नामे ।' छह आज्ञाएँ बादशाह राम की ! पास कुछ भी न था । मगर राम जैसा सम्राट मुश्किल से पैदा होता है । उनके जैसी खुशी, उनके जैसा आनंद, उनके जैसा नृत्य, उनके जैसी मौज—जैसे सदा ही बहार में रहे, बसंत ही बसंत रहा, पतझड़ कभी आया ही नहीं ।

प्रेम में पतझड़ आता ही नहीं । प्रेम ने पतझड़ जाना ही नहीं । प्रेम में एक ही ऋतु है—वसंत ।

दो—और तुम खिले ! अगर वृक्ष भी कंजूस हों तो खिल न पाएँगे, क्योंकि फूल तो बँट जाते हैं । फूल तो खिला नहीं कि सुगंध उड़ी नहीं । फूल तो खिला नहीं कि दिगदिगंत में हवाएँ जाएँगी, बाँट डालेंगी । अगर पेड़ कंजूस हों तो फूल न खिलेंगे, क्योंकि खिलने में तो डर होगा; ज्यादा से ज्यादा कलियों तक पहुँचेंगे, फिर सिकुड़ के रह जाएँगे कि कहीं हवाएँ ले न जाएँ, छीन न लें, दान न हो जाए !

मगर ध्यान रखना, वृक्ष की शोभा, वृक्ष का साम्राज्य तभी है जब उसकी सब ऊर्जा फूल बन जाए और वह लुट जाए ।

'प्रेम ही करना चाहिए, प्रेम ही करना चाहिए ।'

बस करने योग्य प्रेम है, इसलिए दुबारा दोहराया है नारद ने : 'प्रेम ही करना चाहिए, प्रेम ही करना चाहिए !' कुछ और करने जैसा नहीं है, क्योंकि प्रेम देना है अपने को समग्र भाव से ।

यह इश्क नहीं आसां इतना ही समझ लीजे
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है ।
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है !

यहाँ पहुँचते वही हैं जो डूब जाते हैं । यहाँ जो किनारों को पकड़ के बैठ जाते हैं, वे कभी नहीं पहुँच पाते । मुझे ऐसा कहने दो कि जो किनारे पे बैठते हैं वे डूब जाते हैं; जो मँझधार में डूबते हैं उन्हें किनारा मिल जाता है ।

मिटना ही कला है प्रेम की । मिटना ही प्रार्थना है । अगर प्रार्थना करते-करते पिघले न, तो तुमने व्यर्थ माथापच्ची की । अगर प्रार्थना करते-करते तुम बह न गये सभी दिशाओं में, तो तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारी अक्ल का ही हिसाब है । सोचते हो, चलो यह भी कर लो, कौन जाने परमात्मा हो !

एक चर्च में एक पादरी बोल रहा था । वह थोड़ा हैरान हुआ । एक बुढ़िया सामने बैठी थी । वह जब भी ईश्वर का नाम लेता तब वह 'आमीन' कहती थी । वह तो

ठीक था। आमीन 'ओऽम्' का ही रूपान्तरण है। स्वागत का भाव है उसमें। लेकिन जब वह शैतान का नाम लेता तब भी वह कहती थी–'आमीन'। वह थोड़ा हैरान हुआ। पूरा प्रवचन हो जाने पे वह उतरा मंच से नीचे, उस बुढ़िया के पास गया कि मेरी समझ में नहीं आया। ईश्वर का नाम ले के तो मैंने बहुतों को आमीन करते देखा, बाकी तू शैतान के नाम में भी करती है!

बुढ़िया ने कहा, 'मरने का वक्त है, किसी को नाराज़ करना ठीक नहीं। पता नहीं कहाँ जाना हो, किससे मिलना हो! शैतान के हाथ में पड़ें कि भगवान के हाथ में पड़ें! दोनों को ही राजी रखना ठीक है। अब यह सुविधा मेरे पास नहीं है कि ज्यादा सोच-विचार करूँ। मरना करीब है। इसलिए मैं तो दोनों की प्रार्थना कर लेती हूँ।'

यह बुद्धि का हिसाब है। जैसे-जैसे मौत करीब आती है, तुम परलोक का इंतजाम करने लगते हो कि अब यहाँ तो छूटने लगा; फैलाया था बड़ा पसारा, सिकुड़ने लगा; यहाँ तो अब विदा होने की घड़ी आ गयी; लोग तो अर्थी तैयार करने लगे; जल्दी ही बैंड-बाजा उठ जाएगा; चल पड़ोगे–अब थोड़ा उस परलोक की भी खबर कर लें, कहीं ऐसा न हो कि परमात्मा हो ही! फिर हर्ज क्या है! नहीं हुआ तो कुछ बिगड़ता नहीं है; अगर हुआ तो कहने को तो रहेगा कि याद किया था।

ऐसे ही बेईमानों ने कहानियाँ भी गढ़ रखी हैं कि एक पापी मर रहा था, उसके बेटे का नाम नारायण था, उसने जोर से मरते वक्त बुलाया–'नारायण! तू कहाँ है, नारायण!'–और मर गया! कहते हैं, ऊपर के 'नारायण' धोखे में आ गये! उसे उन्होंने स्वर्ग भेज दिया!

आदमी की बेईमानी की कोई सीमा नहीं है। पंडित-पुरोहित ये कहानियाँ सुनाते हैं; लोगों को कहते हैं, 'घबड़ाओ मत, मरते वक्त भी अगर नाम ले लिया एक बार, बस हो गया!' लेकिन जिसको तुमने जीवन में न पुकारा उसे तुम मरने में कैसे पुकार सकोगे? जिसका नाम तुम्हारे ओंठों पर जीवित-जीवित न आया, मृत्यु के क्षण में तुम्हारे मुरझाये ओंठों पर उसके नाम की कुछ शोभा होगी? हृदय भरा-पूरा था, तब तो तुम वेश्याओं के द्वार पर लुटाते रहे। जब प्राणों में ऊर्जा थी तब तिजोड़ी भरते रहे। जब कुछ करने के दिन थे तब तो तुमने व्यर्थ और गलत ही किया। अब जब सब तरफ से सूख गये, हाथ सब तरफ से छीन लिये गये, सब दरवाजे बंद हो चुके–तब, तब तुम मंदिर के द्वार पर आ बैठे! अब तुम 'नारायण-नारायण' कर रहे हो! ऐसे कहीं हो सकता है? ऐसा धोखा कहीं हो सकता है?

तुम्हारे जीवन भर का आलेख होगा, तुम्हारी मृत्यु के क्षण का नहीं; क्योंकि मृत्यु का क्षण तो तुम्हारे जीवन भर का निचोड़ है। तुम लाख नारायण कहो, अगर जीवन में तुम्हारे नारायण न बसा था, तो मरते वक्त तुम्हारे ओंठ से भला निकल जाए, तुम्हारे प्राणों की गहराई से न आ सकेगा; तुम्हारी परिधि पे भला हो जाए!

राम-नाम चदरिया ओढ़ लेना। इससे किसको धोखा दोगे तुम?

अस्तित्व को धोखा नहीं दिया जा सकता। इसलिए प्रतीक्षा मत करो कि कल करेंगे, कि अभी तो जवानी है, अभी तो हम जवान हैं, अभी तो ज़रा राग-रंग देख लें!

रामकृष्ण के पास एक आदमी आता था। वह काली का बड़ा भक्त था और साल में दो-चार दफे बकरे चढ़वा देता था और भोज दिलवा देता था; फिर अचानक उसने बंद कर दिया। रामकृष्ण ने कहा, 'हुआ क्या?' आया। कहा कि तू तो बड़ा भक्त था और तू तो सदा बकरे चढ़वाता था, दो-चार दफा साल में उत्सव मनवा देता था–अब क्या चित्त धार्मिक न रहा? उसने कहा, 'धार्मिक तो अब भी हूँ, लेकिन दाँत टूट गये!'

आदमी मंदिर में भी जो करता है वह अपने ही लिए करता है। वह उत्सव वगैरह... काली तो बहाना थी; वह तो मांसाहार को धर्म की आड़ में करने का उपाय था। पर अब दाँत ही टूट गये!

ध्यान रखना, कमजोरी, हारापन–तब अगर परमात्मा को तुमने याद किया तो उसमें सुगंध नहीं हो सकेगी। उसमें पूजा की सुगंध न होगी। उसमें अर्चना की धूप न उठेगी। उसमें तुम्हारी दुर्गंध ही होगी, उसमें जीवन भर की सड़ांध ही होगी।

करने योग्य तो एक ही बात है–और वह प्रेम है। लेकिन 'इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।'

तीन–स्वामी, सेवक, सेवा; या ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय; या द्रष्टा, दर्शन, दृश्य–सभी त्रिभंगियाँ छोड़ देनी हैं। त्रिवेणी के पार उठे तो असली तीर्थ शुरू होता है। त्रिवेणी में डुबकी लगायी और उस जगह पहुँच गये जहाँ तीनों एक हो गये हैं.....।

हिन्दुओं के पास बड़ी सुन्दर मूर्ति है–त्रिमूर्ति–ब्रह्मा, विष्णु, महेश! एक ही मूर्ति में तीनों के चेहरे हैं। किसी भी चेहरे से प्रवेश करो, भीतर एक जगह आ जाएगी जहाँ तीनों मिलते हैं। मूर्ति तो एक ही है, चेहरे भर तीन हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश एक ही परमात्मा के तीन चेहरे हैं।

और पार जाने का प्रेम के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। क्योंकि प्रेम ही जोड़ता है, बाकी सब चीजें तोड़ती हैं। घृणा तोड़ती है। जिससे घृणा हो जाए उससे हम टूट जाते हैं। जिससे घृणा हो जाए वह हमारे पास भी खड़ा हो तो करोड़ों मील का फासला हो जाता है। फिर जिससे प्रेम हो जाए उससे हम जुड़ जाते हैं। करोड़ों मील का फासला हो तो भी वह हमारे पास ही होता है, हृदय की धड़कन के बिलकुल पास होता है। प्रेम जोड़ता है।

एक को पाना है। तीन के पार जाना है।

घृणा अहंकार की अभिव्यक्ति है। जिसने प्रेम किया वह निरहंकारी हुआ।

> बड़े शौक व तवज्जो से सुना दिल के धड़कने को
> मैं यह समझा कि शायद आपने आवाज़ दी होगी।

प्रेमी तो अपने दिल की धड़कन में भी उसी की आवाज सुनता है। दिल भी धड़कता है तो वह आँख बंद करके रस लेता है : 'होगी उसी के पैरों की आवाज!

'कतील' अब दिल की धड़कन बन गयी है चाप कदमों की
कोई मेरी तरफ आता हुआ मालूम होता है।

दिल की धड़कन भी उसी के पैरों की आवाज हो जाती है। आँख खोलते हो जहाँ, वहीं दिखायी पड़ता है। तू ही है! पर प्रेम चाहिए। लोग परमात्मा को खोजने निकलते हैं और प्रेम है नहीं। परमात्मा को तो तुम छोड़ो; तुम प्रेम को खोज लो, परमात्मा अपने से बँधा चला आएगा। कच्चे धागे से चले आएँगे सरकार बँधे!

प्रेम का धागा बड़ा कच्चा है, पर उससे मजबूत कोई चीज़ ही नहीं। बड़ा कोमल है! लेकिन तुमने कभी खयाल किया कि लोहे की जंजीरें भी तोड़ दो, प्रेम का कच्चा-सा धागा भी तोड़ते नहीं बनता। कितनी ही बड़ी जंजीरें तोड़ी जा सकती हैं। जिन्हें ढाला जा सकता है उन्हें तोड़ा जा सकता है। प्रेम भर नहीं टूटता। क्यों? क्योंकि तुम्हारे ढाले ढलता ही नहीं। प्रेम तुमसे बड़ा है, कैसे टूटेगा? वस्तुतः तोड़ने वाला तो प्रेम में पहले ही टूट जाता है; तोड़ने वाला ही नहीं बचता।

'तीन रूपों को भंग कर नित्य दास्यभक्ति से या कान्ताभक्ति से प्रेम करना चाहिए।'

क्या है दास्यभक्ति? क्या है कान्ताभक्ति? दोनों एक ही हैं। जब कोई स्त्री किसी को प्रेम करती है तो फर्क तुम समझना।

नारद को कान्ताभक्ति शब्द का उपयोग करना पड़ा। जब कोई स्त्री किसी पुरुष को प्रेम करती है तो उस प्रेम का गुणधर्म बड़ा भिन्न होता है—उससे—जब कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है। दोनों के गुणधर्म में बड़ी गहराई का फर्क है। पुरुष के लिए हज़ार कामों में प्रेम एक काम है। और हज़ार चीज़ें भी हैं करने को उसे; उन्हीं के बीच-बीच में समय निकाल के वह प्रेम भी कर लेता है। यश भी कमाना है, धन भी कमाना है, पद-प्रतिष्ठा है, दुकान है—हज़ार काम हैं। प्रेम उन्हीं के बीच में एक विश्राम है। स्त्री की बात बड़ी अलग है। स्त्री के लिए प्रेम ही उसका एकमात्र काम है, और कुछ भी नहीं। उसे कुछ और नहीं करना है। प्रेम न हो स्त्री के जीवन में तो बिलकुल सूनी रह जाती है। पुरुष के जीवन में प्रेम न हो तो भी कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता; वह हज़ार और चीज़ों से भर लेता है—धन से, पद से; राजधानियों में पहुँच जाता है। उसके और भी प्रेम हैं—प्रेम के अलावा। हज़ार तरह के! कुछ न मिले, कुछ मूढ़तापूर्ण काम करने लगता है—चलो, टिकटें ही इकट्ठी करो, पोस्टल स्टाम्प ही इकट्ठे करो, घुड़दौड़ में चले जाओ।

ज़रा सोचो, किसी घोड़े को कहो कि आदमियों की दौड़ हो रही है, आदम-दौड़ हो रही है, कोई घोड़ा न आएगा देखने। मगर आदमी हज़ारों की संख्या में खड़े हैं। यह पूरा कोरेगाँव पार्क घुड़दौड़ देखने वालों का निवास-स्थान है। बस जब घुड़दौड़ होती है पूना में, तब वे आ जाते हैं,बस्ती आबाद हो जाती है, अन्यथा खाली हो जाती है। घोड़े भी हँसते होंगे कि आदमियों-से गधे न देखे! घोड़ा कम-से-कम घोड़ा तो है।

फुटबाल हो कि हॉकी हो कि वॉलीबाल हो, कि दो जंगली आदमी कुश्ती लड़ रहे हों, उसी को देखने खड़े हैं, धक्कमधुक्की खा रहे हैं। हज़ार काम हैं आदमी को, चैन नहीं है! प्रेम तो बीच-बीच का विश्राम है; वह जीवन की मूल धारा नहीं है, राह के किनारे-किनारे है। वह भी पोस्टल स्टाम्प जैसा ही एक शौक है; कर लिया तो ठीक, न किया तो कुछ हर्ज नहीं।

स्त्री प्रेम न कर पाए तो उसके भीतर कुछ अनखिला रह जाता है। इसलिए तुम हैरान होओगे, स्त्री एक बार प्रेम कर लेती है तो जैसे सदा के लिए प्रेम कर लेती है, एक पुरुष उसके लिए सदा के लिए हो जाता है। पुरुष इतनी जल्दी एक में नहीं डूबता। पुरुष की आकांक्षा और स्त्रियों पर घूमती ही रहती है; वह लाख उपाय करे, लेकिन उसकी नज़र भटकती रहती है। पुरुष की नज़र आवारा है। अगर पुरुष का बस चले—और धीरे-धीरे उसने इंतजाम किये हैं सब—अगर उसका बस चले तो विवाह समाप्त हो जाएगा। पश्चिम के मुल्कों में जहाँ पुरुष ने काफी सम्पत्ति और सम्पन्नता पैदा कर ली है, वहाँ विवाह टूट रहा है।

स्त्री जब भी किसी के प्रेम में पड़ती है तो वह पहले ही विवाह का सोचने लगती है; और पुरुष जैसे ही किसी के प्रेम में पड़ता है, वह विवाह से बचने की सोचने लगता है।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे बोला कि अब आखिर आज जा ही रहा हूँ। 'हुआ क्या?' मैंने कहा, 'दाँत के डाक्टर के पास जा रहे हो, कहाँ जा रहे हो? कोई बीमारी हो गयी है? कोई झंझट है, अदालत में कोई मुकदमा है?'

उसने कहा कि नहीं, विवाह करना है। अब तक टाला!

पुरुष टालता है। स्त्री आतुर होती है, क्योंकि स्त्री का प्रेम एकोन्मुख है, एकांत है। पुरुष का प्रेम छितरा-छितरा है। पुरुष खानाबदोश है; घर बना के रहने में उसे बेचैनी मालूम पड़ती है। स्त्रियों ने घर बनवाये। सारी सभ्यता स्त्रियों के कारण बनी। नहीं तो पुरुष तो घूमता ही रहता डेरा-डंगा ले के; तम्बू काफी था! मकान! इतना ठोस बनाने की ज़रूरत क्या है! तम्बू लगा लेते! आज यहाँ, कल वहाँ, परसों वहाँ!

नये पर पुरुष का रस है। भंवरे की तरह है—एक फूल, दूसरा फूल, तीसरा फूल! किसी फूल के साथ प्रतिबद्ध नहीं हो पाता, कमिट नहीं कर पाता। स्त्री करवा लेती है उससे। बेचैनी में, मजबूरी में, उलझन में फँस गया, निकल नहीं पाता। अपनी ही कही बातें अपनी ही गर्दन पे फँस जाती हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी ने अपनी प्रेयसी को कहा, 'तू मुझसे विवाह करेगी?' उसने कहा, 'हाँ, निश्चित!' फिर सन्नाटा हो गया। फिर वह आदमी बिलकुल

चुप ही बैठ गया। घड़ी भारी लगने लगी। उस स्त्री ने कहा, 'कुछ बोलो भी।' उसने कहा, 'अब और बोलने को बचा क्या! बोल चुके। अब जिंदगी में बोलने को कुछ नहीं बचा। कितना टाला, आज निकल गया!'

इसलिए नारद कहते हैं: कान्ताभक्ति! भक्त को अगर परमात्मा से भक्ति करनी है तो स्त्री से प्रेम सीखना पड़ेगा। फिर एक पर ही प्रतिबद्ध होना पड़ेगा।

तुम्हारा प्रेम बँटा हुआ है; थोड़ा इस दिशा में, थोड़ा उस दिशा में; थोड़ी राजनीति भी कर लो, थोड़ा धन भी कमा लो; थोड़ा धर्म भी कर लो; थोड़ी प्रतिष्ठा में हर्ज क्या है; सभी कुछ बाँट लो, बटोर लो! जिंदगी छोटी है, हाथ छोटे हैं, समय बहुत संकीर्ण है! तुम हजार दिशाओं में दौड़ के पगला जाते हो।

प्रेम अहर्निश एक दिशा में यात्रा है। इसलिए कान्ताभक्ति! एक बार स्त्री किसी के प्रेम में पड़ जाए, फिर उसके लिए संसार में कोई दूसरा पुरुष रह ही नहीं जाता। यही तो अड़चन है। इसलिए स्त्री पुरुष को नहीं समझ पाती, पुरुष स्त्री को नहीं समझ पाता। पुरुष के लिए और भी स्त्रियाँ हैं। और पुरुष हमेशा अनुभव करता है कि नय-नये संबंध हो जाएँ तो शायद ज्यादा सुख होगा। स्त्री की प्रतीति यह है कि संबंध जितना गहरा हो उतना ज्यादा सुख होगा।

पुरुष मात्रा पर जाता है; स्त्री, गुण पर। इसलिए सम्राट हैं, तो हजारों रानियों को इकट्ठा कर लेते हैं। फिर भी मन नहीं भरता। पुरुष का मन भरता नहीं—भर सकता नहीं। क्योंकि मन भरने की तो तभी सम्भावना है जब प्रेम गहरा हो, गुणात्मक हो। एक के साथ इतनी तल्लीनता आ जाए, इतना तादात्म्य हो जाए कि भेद गिर जाएँ। प्रेम तो तभी तृप्त होता है जब प्रार्थना की सुगंध प्रेम से उठने लगे।

समय चाहिए!

पुरुष का प्रेम मौसमी फूलों की तरह है; अभी बोए; दो-तीन सप्ताह बाद आना शुरू हो गये। सर्दी आएगी, बाग-बगीचे मौसमी फूलों से भर जाएँगे। स्त्री का प्रेम मौसमी फूलों जैसा नहीं है; समय लगता है। जितना बड़ा वृक्ष, जितना आकाश में ऊपर उठाना हो, उतना ज़मीन में गहरी जड़ों को जाना पड़ता है। जितना वृक्ष ऊपर जाता है उतनी ही जड़ें नीचे गहरी जाती हैं। मौसमी फूलों की कोई जड़ें होती हैं; ज़रा हिला दो, उखड़ गये! इसलिए तो दो-चार सप्ताह में आ जाते हैं; पर दो-चार सप्ताह में विदा भी हो जाते हैं।

क्षणभंगुर है पुरुष का प्रेम। उफान आता है उसमें, ज्वार आता है उसमें—लेकिन भाटे के आने में देर नहीं लगती। ज्वार के पीछे ही छिपा भाटा भी चला आता है। अगर पुरुष के प्रेम को गौर से देखो, तो तुम उसे पाओगे कि जब वह प्रेम के क्षण में होता है, तब तो यह भूल ही जाता है कि मैं पुरुष हूँ, क्या कह रहा हूँ। वह कहता है, 'सदा तुझे प्रेम करूँगा! तेरे अतिरिक्त और कोई मेरे लिए प्रेम का पात्र नहीं है।' पुरुष ये बातें कहता है; जब कहता है तब वह भी आविष्ठ होता है उन बातों

से—लेकिन घड़ी भर बाद उसे लगता है, 'यह मैं क्या कह गया! इसे पूरा कर पाऊँगा? असम्भव मालूम होता है।' स्त्री इन बातों को हृदय से कहती है। सच तो यह है, स्त्री ये बातें कहती नहीं, अनुभव करती है।

अगर तुम दो प्रेमियों को बैठे देखो, तो तुम स्त्री को चुप पाओगे, पुरुष को बोलते पाओगे। स्त्री चुप रहती है, कहना क्या है! जो है, है। जो है, वह अपनी दीप्ति से ही चमकेगा; उसे शब्द दे कर ओछा क्यों करें? ऐसा नहीं कि स्त्री बोलना नहीं जानती—स्त्री पुरुष से ज्यादा बोलना जानती है। लेकिन प्रेम के क्षण में स्त्री चुप होती है। बात इतनी बड़ी है कि कही नहीं जा सकती। ऐसे तो स्त्रियाँ पुरुषों से ज्यादा बोलने में कुशल होती हैं। बच्चियाँ पहले बोलती हैं बच्चों की बजाय। लड़कियाँ साल भर पहले बोलना शुरू कर देती हैं। लड़के थोड़ा देर लगाते हैं बोलने में। स्कूलों में भी लड़कियाँ ज्यादा प्रथम कोटि की आती हैं; बोल सकती हैं; लिख सकती हैं। कुशल हैं बोलने में! पुरुष का बोलना इतना कुशल नहीं है।

लेकिन जब स्त्री-पुरुष प्रेम में पड़ते हैं, स्त्री चुप होती है, पुरुष बोलता है। क्योंकि जो नहीं है, वह बोल-बोल के उसकी आभा पैदा करता है, आभास पैदा करता है। स्त्री चुप्पी से बोलती है। एक बार प्रेम में पड़ जाए तो वह सदा के लिए पड़ गयी। इसलिए तो इस देश में हज़ारों स्त्रियाँ सति हो गईं अपने प्रेमियों के पीछे, लेकिन कोई पुरुष कभी सति नहीं हुआ। इधर पत्नी मरी नहीं कि वह दूसरी पत्नी को लाने के विचार करने लगता है—वस्तुतः तो यह है कि मरने के पहले ही करने लगता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। आखिरी क्षण उसने कहा कि 'मुझे पता है कि तुम मेरे मर जाने के बाद विवाह करोगे, तुम अकेले न रह सकोगे। करना, लेकिन एक बात खयाल रखना।' नसरुद्दीन ने कहा, 'कभी नहीं करूँगा, तू बिलकुल चिंता मत कर। कभी भी नहीं करूँगा। असम्भव है यह बात।' और उसने कहा कि वह मैं जानती हूँ, तुम मुझे व्यर्थ का भरोसा मत बँधाओ; सिर्फ एक बात का भरोसा मुझे बँधा दो, मेरे गहने और मेरे कपड़े उस स्त्री को मत पहनने देना।

नसरुद्दीन ने कहा, 'यह झंझट की बात हुई। फातिमा को तेरे गहने आएँगे भी नहीं और तेरी साड़ी भी नहीं आएगी।'

वे तय ही कर चुके हैं कि किससे शादी करनी है!

पुरुष थिर नहीं है, चंचल है। इसलिए नारद को कहना पड़ा: 'कान्ताभक्ति'! जैसे कोई स्त्री किसी को प्रेम करती है, ऐसा परमात्मा को प्रेम करना।

'दास्यभक्ति'!

दास शब्द निंदित हो गया बहुत। लेकिन उसमें भी कुछ राज है। अब तो दुनिया में कोई दास होते नहीं। और अगर किसी कम्यूनिस्ट को ये नारद के सूत्र मिल जाएँ तो वह कहेगा, यह आदमी तो बुर्जुआ, पूँजीवादी मालूम पड़ता है, कैपिटलिस्ट है,

दासों की बातें कर रहा है, कह रहा है कि दास्यभक्ति होनी चाहिए, दासों जैसा होना चाहिए ! दासता को तो मिटा दिया !

जिस दासता को तुमने मिटा दिया है उसकी बात नहीं हो रही है । यह एक ऐसी बात है कि कभी-कभी घटती है । यह भी प्रेम है एक कि कोई किसी को अपनी सारी मालकियत दे देता है । छीन नहीं लेता—कोई-कोई दे देता है ! कोई किसी के चरणों का दास हो जाता है । इतना हो जाता है कि अगर दोनों के जीवन बचाने का मौका आए और एक ही बचता हो, तो दास अपने मालिक को बचाएगा, अपने को नहीं । अगर घर में आग लगी हो तो दास जल जाएगा, मालिक को बचा लेगा ।

दास्यभक्ति का इतना ही अर्थ है कि तुमने जिसे मालिक जाना, उसको ही तुम अपनी आत्मा भी जानना । परमात्मा मालिक है, स्वामी है । या तो कान्ताभक्ति करना या दास की भक्ति करना । क्योंकि दास भी अपना तादात्म्य छोड़ देता है अपने से, और मालिक के साथ जुड़ जाता है; और कान्ता भी अपने को बिलकुल भूल जाती है, अपने पति के साथ एक हो जाती है ।

तुमने देखा ! विवाह कर लाते हो स्त्री को, तुम्हारा नाम स्त्री के साथ जुड़ जाता है, तुम्हारा कुल, तुम्हारा गोत्र, तुम्हारी जाति स्त्री के साथ जुड़ जाती है । इससे उलटा नहीं होता । तुम्हारी स्त्री की जाति तुम्हारे नाम से नहीं जुड़ती । स्त्री अपने को तुम में खो देती है, तुम उसमें अपने को नहीं खोते । तुम विवाह कर लाते हो तो स्त्री का नाम भी बदल देते हो । वह प्रसन्न भी होती है उसके नाम के बदल जाने से क्योंकि अतीत का मूल्य ही क्या अब ! जो प्रेम के पहले था, वह था ही नहीं । असली जीवन तो अब शुरू हुआ । नया जन्म : नया जीवन ! वह नया नाम चाहती है । वह नया भाव चाहती है अपने जीवन का । वह नाम भी बदल लेती है ।

विवाह तुम करते हो स्त्री से, तो स्त्री के घर रहने पुरुष नहीं जाता, स्त्री पुरुष के घर रहने आती है । कभी मजबूरी में किसी कारण से पुरुष को जाना पड़ता है तो बड़ा लज्जित भाव से जाता है । घरजँवाई की जैसी फजीहत होती है, वह सभी जानते हैं । कभी एकाध पे यह मुसीबत आ जाती है कि घरजँवाई बनना पड़ता है, तो दीन-हीन हो जाता है ।

तुम ज़रा गौर करो । आखिर पुरुष अगर विवाह करके अपनी पत्नी के घर रहने जाता है तो दीन-हीन होने की क्या ज़रूरत है ? मगर वह समझता है, कुछ मजबूरी हो गयी, अवश हो गया, असहाय हो गया, दूसरों पे निर्भर हो गया ! लेकिन तुमने कभी इससे उलटा होते देखा ? खयाल करो, स्त्री तुम्हारे घर में आती है, दूसरे के घर में आती है, अपने को सब भाँति लुटा देती है, और कभी दीन-हीन अनुभव नहीं करती, सौभाग्यशालिनी अनुभव करती है । यही नहीं, मजे की बात यह है कि अपने को पूरी तरह सर्वस्व दान करके अचानक तुम्हारे घर की मालकिन हो जाती है, 'घरवाली' हो जाती है ! घर तुम्हारा था, स्त्री 'घरवाली' हो जाती है ! तुमको कोई 'घरवाला' नहीं कहता । और ऐसा अनुभव नहीं करती कि दूसरे के घर में आ गयी है । अपने को इतना खो देती है कि पराया नहीं बचता ।

इसलिए नारद कहते हैं : कान्ताभक्ति या दासभक्ति. . . . ! इतने एक हो जाना परमात्मा से कि फासला न रह जाए ।

नियाजे-इश्क की ऐसी भी एक मंजिल है
जहाँ है शुक्र शिकायत किसी को क्या मालूम !

—एक ऐसा भी मुकाम है प्रेम की यात्रा में; जहाँ तुम इतने एक हो जाते हो कि धन्यवाद देने में भी शिकायत मालूम पड़ेगी ।

तुमने कभी खयाल किया ! पश्चिम में चलता है, क्योंकि पश्चिम में संबंध औपचारिक हो गये, उनकी गहराई खो गयी । अगर बेटा माँ के लिए कुछ करता है तो माँ भी कहती है, 'थैंक्यू ! धन्यवाद !' हिन्दुस्तान में कोई माँ न कहेगी । धन्यवाद बेटे से ! यह तो बड़ा परायापन हो जाएगा । बाप बेटे के लिए कुछ करता है तो पश्चिम में बेटा धन्यवाद देता है, न दे तो अशिष्ट है । लेकिन पूरब में ! बाप बेटे के लिए कुछ करता है और अगर बेटा धन्यवाद दे दे तो बाप बड़ा चौंकेगा कि हुआ क्या ! तू कोई पराया है ?

जहाँ संबंध औपचारिक होता है वहाँ धन्यवाद ठीक है । लेकिन जहाँ संबंध आत्मीय है वहाँ तो धन्यवाद शिकायत हो गयी । धन्यवाद भी शिकायत हो जाती है, ऐसी भी प्रेम की एक मंजिल है ।

नियाजे-इश्क की ऐसी भी एक मंजिल है
जहाँ है शुक्र शिकायत किसी को क्या मालूम !

मैं तुमसे निरंतर कहता हूँ कि प्रार्थना धन्यवाद है । लेकिन फिर एक ऐसी मंजिल भी आती है . . . . । यह तो शुरुआत की बात है कि प्रार्थना धन्यवाद है । यह तो मैं तुमसे इसलिए कहता हूँ, ताकि तुम प्रार्थना को माँग न बनाओ । माँगने मत जाओ परमात्मा से, धन्यवाद देने जाओ । लेकिन जल्दी ही अगर तुम्हारा धन्यवाद गहन होने लगा, तो एक दिन तुम पाओगे : अब तो धन्यवाद देना भी शिकायत जैसा हो गया, क्योंकि परमात्मा से यह जा के कहना कि तूने बहुत दिया, जाहिर है कि तुम कह रहे हो, लेकिन बहुत तुमने माना नहीं । औपचारिक है । अगर परमात्मा न देता तो . . . . . . ।

रामकृष्ण के पास जब केशवचंद्र मिलने आये, पहली बार तो विवाद किया, फिर धीरे-धीरे उनके सत्संग में आने लगे, उनसे प्रभावित हुए, आंदोलित हुए, परमात्मा की भक्ति भी करने लगे । तो रामकृष्ण ने एक दिन पूछा कि 'तुम करते क्या हो भक्ति में ? क्या विधि-विधान है तुम्हारा ?' उन्होंने कहा, 'धन्यवाद देता हूँ परमात्मा को । धन्यवाद देता हूँ कि तूने जीवन दिया, आँखें दीं, कान दिये, हाथ दिये, प्राण

दिये, बुद्धि दी, इतना सब कुछ दिया ! मेरे बिना कमाये दिया ! मेरे बिना माँगे दिया !'

रामकृष्ण लेकिन उदास हो गये ? केशवचंद्र ने कहा, 'आप सुन के उदास क्यों हो गये ?' उन्होंने कहा, 'धन्यवाद देता है ? अगर परमात्मा आँखें न देता, तू अंधा होता, तो फिर धन्यवाद देता कि नहीं ? फिर नहीं देता । अगर बहरा होता तो ? परमात्मा ने जो दिया है उसके कारण तू धन्यवाद देता है । अगर न दिया होता तो फिर क्या करता तू ?'

धन्यवाद में भी शिकायत है । परमात्मा के सामने हो जाना काफी है । पहले माँग छोड़ो । धन्यवाद के काँटे से माँग का काँटा निकाल लो । फिर दोनों काँटे फेंक दो । फिर धन्यवाद भी क्या देना ! उसी का सब है, धन्यवाद देने वाले तुम हो कौन ? तुम भी उसी के हो !

मेरे एक हाथ पर चोट लग जाए और दूसरे हाथ से मलहम-पट्टी करूँ, तो मेरा बाँया हाथ दायें हाथ को धन्यवाद देगा ? दोनों एक ही हैं, धन्यवाद किसको देना है ? किसको लेना, किसको देना !

प्रेम जब सघन होता है तो प्रेमी और परमात्मा एक होने लगते हैं । इतना भी फासला नहीं रह जाता, धन्यवाद रखने लायक जगह भी बीच में नहीं बचती ।

'भक्ता एकान्तिनो मुख्याः !'

दूसरा सूत्र : 'एकान्त अनन्य भक्ति ही श्रेष्ठ है ।'

जैनों के पास एक शब्द है—अनेकांत । उसके विपरीत में शब्द है—एकान्त । अनेकांत में जैनों का कहना है कि संसार में एक वस्तु नहीं है, वस्तुएँ अनेक हैं; संसार अनंत वस्तुओं का जोड़ है । जैन अद्वैतवादी तो हैं ही नहीं, द्वैतवादी भी नहीं हैं—अनेकवादी हैं । इसलिए उनके दर्शनशास्त्र का ही नाम अनेकांत दर्शन हो गया । भक्त कहता है, एक ही है । जैन शास्त्र अत्यन्त तर्ककुशल हैं । जैन शास्त्र पढ़ोगे तो गणित जैसा मालूम पड़ेगा । साफ-सुथरा है बहुत—गणित साफ-सुथरा होता ही है । तर्क बहुत स्पष्ट है—तर्क स्पष्ट होते ही हैं । लेकिन गीत नहीं है, संगीत नहीं है । थोथा-थोथा है, ऊपर-ऊपर है । मरुस्थल जैसा है; फुलवाड़ी नहीं है, हरियाली नहीं है । रूखा रेगिस्तान मालूम होता है ।

ठीक अनेकांत से विपरीत दृष्टि भक्त की है । इसलिए तो जैन भक्त नहीं हैं । वे भगवान को भी नहीं मानते, क्योंकि अगर भगवान को मानेंगे तो एक को मान लेना पड़ेगा । वे कहते हैं, अनंत वस्तुएँ हैं, अनंत पदार्थ हैं—लेकिन कोई एक नहीं है सबको जोड़ने वाला । वे कहते हैं, मनके तो बहुत हैं, लेकिन मनकों में पिरोया हुआ एक सूत्र नहीं है जो माला बना दे ।

भक्तिशास्त्र कहता है, मनकों से कहीं माला बनी ? यद्यपि भीतर पड़ा हुआ धागा दिखायी नहीं पड़ता, मनके ही दिखायी पड़ते हैं; लेकिन मनकों से कहीं माला बनी ?

यह ढेर लग सकता था । अगर अनंत वस्तुएँ होतीं और उन सबको जोड़ने वाला कोई एक न होता, तो संसार में ढेर होता चीज़ों का, व्यवस्था नहीं हो सकती थी । तुम मनकों का ढेर लगा सकते हो, माला नहीं बना पाओगे । गले में तो पहनोगे कैसे ? लेकिन जगत बँधा हुआ, गुँथा हुआ मालूम पड़ता है । अलग-अलग चीज़ें नहीं मालूम पड़तीं । तुमने कोई चीज़ देखी जो अलग है ? सब जुड़ा है । वृक्ष ज़मीन से जुड़े हैं, ज़मीन सूरज से जुड़ी है, सूरज चाँद-तारों से जुड़े हैं । सब जुड़ा है, गुँथा है, माला है । तो निश्चित ही इतनी अनंत चीज़ों को जोड़ने वाला कोई एक सूत्र, कोई सूत्रधार है, इन सबके भीतर पिरोया हुआ कोई धागा—उस धागे का नाम ही परमात्मा है ।

एकान्त भक्ति श्रेष्ठ है । और भक्त तो कैसे दो का हो सकता है ?—एक का ही हो सकता है । इस्लाम इसलिए कहता है, सिवाय अल्लाह के और कोई परमात्मा नहीं है; सिवाय परमात्मा के और कोई परमात्मा नहीं । इस्लाम भक्ति का ही विस्तार है । सिवाय एक परमात्मा के और कोई परमात्मा नहीं । एक ! अनन्य !

जब तुम एक को पूजोगे तो तुम भी संगठित हो जाओगे । जब तुम अनंत की दृष्टि रखोगे, तुम भी अनंत टुकड़ों में टूट जाओगे । तुम्हारी दृष्टि तुम्हारा जीवन बन जाती है । एक को स्वीकार किया कि तुम भी एक होने लगे । जो तुम्हारी जीवन-दृष्टि है, अन्ततः तुम्हारी जीवन-शैली भी बन जाएगी ।

भक्त को एकान्त, अनन्य होना चाहिए । क्योंकि प्रेम दो को जानता ही नहीं ।

मीरा नाचती-नाचती, कहते हैं, वृन्दावन पहुँच गयी । वृन्दावन में एक मंदिर था, बड़ा मंदिर था कृष्ण का । और उस मंदिर का पुजारी सारे देश में ख्यातिलब्ध था । बड़ा प्रकांड पंडित था, बड़ा महात्मा था । मगर वह स्त्री का मुँह नहीं देखता था । कृष्ण का भक्त था । लेकिन उसके मंदिर में स्त्रियों को आने की मनाही थी । मीरा नाचती हुई मंदिर में पहुँच गयी । महापंडित तो घबड़ा गया, महात्मा तो घबड़ा गया । उसका सब महात्मापन डगमगा गया कि स्त्री भीतर आ कैसे गयी ! द्वारपाल भी खड़े थे, लेकिन मीरा के नाच में कुछ खो गये, कुछ मस्ती छा गयी, न रोक पाये । कुछ ऐसी लहर की तरह मीरा आई, कुछ ऐसी धुन के साथ आई कि द्वारपाल ठगे-से खड़े रह गये ! सदा रोक दिया था और स्त्रियों को, लेकिन स्त्री यह कुछ और ही थी । आग की एक लपट थी ! एक झटके में वह भीतर पहुँच गयी ! एक क्षण को द्वारपाल ठिठके कि वह तो अन्दर थी ! मंजीरा उसका बज रहा था । वह तो नाच रही थी ।

पुजारी बहुत नाराज हुआ । वह आया और कहा कि मैंने सुना है तेरा नाम, लेकिन स्त्री की यहाँ आने की मनाही है । यहाँ केवल पुरुष ही आ सकते हैं ।

मीरा ने कहा, 'तुम मुझे चौंका दिये ! मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई पुरुष नहीं । तुम भी पुरुष हो ? मैंने तो कृष्ण के अतिरिक्त और किसी में पुरुष नहीं देखा ।'

एक धक्का लगा छाती में महात्मा के। बात तो ठीक थी। भक्त हो के और कृष्ण के अतिरिक्त फिर कौन पुरुष है! फिर तो सभी स्त्रियाँ हैं; किसको रोकते हो तुम? मीरा ने कहा, किसी को रोकने का हक किसी को नहीं है। पुरुष तो एक परमात्मा है, बाकी तो सब उसकी सखियाँ हैं। तुम भी सखी हो। छोड़ो यह भ्रम पुरुष होने का।

मीरा ने ठीक ही कहा, उचित ही कहा। भक्त के लिए भगवान ही एकमात्र बचता है।

एकान्त भक्ति ही श्रेष्ठ है। लेकिन तुम्हारा मन एक भीड़ है।

मैं अनेक घरों में मेहमान होता था, जब यात्रा करता रहा। कभी-कभी ऐसे घरों में पहुँच जाता जहाँ उनका पूजा-गृह भी घर में बनाया होता। सब तरह के देवी-देवता बैठे हैं। पचास-साठ-सत्तर भी, छोटे-छोटे, शंकर जी... जहाँ से जो मिल गये वहीं से ले आए। हनुमान जी भी जमे हैं। रामचन्द्र जी भी बैठे हैं। और यह तो छोड़ो जितने कैलेंडर छपते हैं, सब, सब लगे हैं। बाजार है। उपासनागृह है? और भक्त को इतनी फुर्सत कहाँ, तो घंटी ले के सबके सिर पे ऐसा बजाता हुआ चला जाता है! इकट्ठा होलसेल! सभी को हाथ जोड़ के नमस्कार कर दिया....!

मैं उनसे पूछता कि 'यह मामला क्या है, इतना बाज़ार क्यों भरा हुआ है?'

'भाव यह रहता है, कहीं कोई नाराज़ न हो जाए!'

कल-परसों एक मित्र अपने मित्र की खबर लाए कि उनको संन्यास लेना है, लेकिन वे हनुमान जी के भक्त हैं। तो वे आने में डरते हैं कि कहीं हनुमान जी नाराज न हो जाएँ! हनुमान जी से मेरा कौन-सा झगड़ा है? वे नाराज किसलिए हो जाएँगे?

तुम्हारा भगवान भी तुम्हारा भय है। भय से कहीं पूजा हुई, भय से कहीं प्रेम हुआ? भय कहीं परमात्मा तक ले जाएगा? जिससे भय हो जाता है, उसमें तो घृणा हो जाती है। जिससे भय हो जाता है वह तो दुश्मन हो जाता है। भय के कारण तुम सिर झुका के, हाथ-पैर जोड़ के, राजी कर लेते हो कि देखो, परेशान न करना। रोज-रोज भक्ति करते हैं, ध्यान रखना! लेकिन यह पूजा तो न हुई, यह कोई भक्ति तो न हुई।

फिर मैं निरंतर सोचता हूँ कि अगर तुम्हारी भक्ति ठीक चल रही है, तो मेरे पास भी आने की क्या ज़रूरत है! ठीक नहीं चल रही है, इसलिए यहाँ आना चाहते हो। अगर हनुमान से ही प्रेम लग गया तो उसी बहाने पहुँच जाओगे, यहाँ आने की ज़रूरत क्या है? मगर यहाँ आने का खयाल बताता है कि डर के मारे पूजा तो किये जा रहे हैं, लेकिन कुछ हो नहीं रहा है। तो और कहीं भी टटोलते हैं, लेकिन यह नाव भी न छूटे, दूसरी नाव पे भी पैर रख लें। तो सब तरह के देवी-देवता लोग-इकट्ठे कर लेते हैं।

भक्त तो एकान्त होता है। एक काफी है; नाम उसका कुछ भी रख लो—अल्लाह कहो, राम कहो, रहीम कहो, जो तुम्हें कहना हो, तुम्हारी मर्जी। नाम तुम चुन लो।

उसका कोई नाम तो है नहीं; पुकारने के काम आ जाता है—चुन लो। बहाना है नाम तो।

घर में तुम्हारे बेटा पैदा होता है, बिना नाम के होता है; नाम रख लेते हो, बुलाने में सुविधा हो जाती है। भगवान का कोई भी नाम रख लो। जो रंग-रूप बनाना हो, वह रंग-रूप बना लो। ये तो सब बहाने हैं, ये तो खूँटियाँ हैं। लेकिन असली चीज पास है जिसको खूँटी पे टाँगना है? प्रार्थना, प्रेम, पूजा तुम्हारे पास है? और जिसके पास प्रेम है, पूजा है, वह कहीं भी टाँग देगा। खूँटी न मिलेगी तो बिना खूँटी के टाँग देगा। द्वार-दरवाजे पे टाँग देगा।

ध्यान रखना, एक के प्रति ही अनन्य भाव से डूब जाना है। वहीं से पहुँच जाओगे।

मेरे पास मुसलमान आते, हिन्दू आते, ईसाई आते। मैं उनसे कहता हूँ, तुम ईसाई हो तो ईसाई बने रहो, मुसलमान हो तो मुसलमान बने रहो। कुछ इससे बाधा नहीं आती। मस्जिद में करनी है पूजा, मस्जिद में; मंदिर में करनी है, मंदिर में—कोई अड़चन नहीं, सभी घर उसके हैं। पर कहीं भी करो तो! ऐसे घाट ही मत बदलते रहना। प्यास लगी हो तो पानी भी तो पियो। यह घाट बदलने से क्या होगा? वहाँ प्यासे थे, यहाँ प्यासे रह जाओगे। क्योंकि पीने की तमीज ही नहीं है।

असली बात तो झुकने की है, अंजुली भरने की है। नदी तो बही जा रही है, तुम तट पे ही अकड़े खड़े रहो, उतरो न, झुको न, चुल्लू में पानी न भरो, तो नदी कोई छलाँग लगा के तुम्हारे कंठ में नहीं उतर जाएगी।

'एकान्त भक्ति ही श्रेष्ठ है।'

एक बचे तुम्हारे मन में, तुम्हारे प्राण में, तुम्हारे तन में, तो उस एक के आधार पर तुम्हारे भीतर के खंड जुड़ने लगेंगे, अखंड हो जाएँगे। ऐसे तुमने सौ-पचास देवी-देवता पूजे तो वे इतना ही बता रहे हैं कि तुम भीड़ हो एक। सच तो यह है कि पूजा का गृह सूना होना चाहिए; एक भी न हो, खाली हो। उस खालीपन में पुकारो एक को। उस शून्य से उठने दो तुम्हारे हृदय की आह, तुम्हारा रुदन, तुम्हारे आँसू। पत्थरों की मूर्तियों से थोड़े ही कुछ होता है। होता तो तुम्हारे हृदय की भाव-दशा से है। इतना ही हो कि तुम्हारे भीतर उसे पाने की प्रगाढ़ अभीप्सा हो।

आशिकी सब्र तलब और तमन्ना बेताब
दिल का क्या रंग करूँ खूने जिगर होने तक
हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन
खाक हो जाएँगे हम, तुमको खबर होने तक।

भक्त तो यह कहता है कि प्रेम धीरज माँगता है। माना, प्रेम धीरज माँगता है; पर मेरी अभीप्सा बेचैन है। प्रेम कहता है, ठहरो, होगा—लेकिन मेरी अभीप्सा, मेरी प्यास कहती है, 'बहुत देर वैसे ही हो गयी। अब और देर न कराओ। अब मिलन को और न ठहराओ, अब और स्थगित न करो!

आशिकी सब्र तलब–प्रेम तो धीरज है; तमन्ना बेताब–लेकिन पाने की आकांक्षा प्रज्ज्वलित हो के जल रही है। दिल का क्या रंग करूँ खूने जिगर होने तक–मुझे मालूम है कि तुम मिलोगे तो मुझे मिटा दोगे, लेकिन तब तक क्या करूँ ? दिल का क्या रंग करूँ–क्या उपाय करूँ इस दिल के लिए ? खूने जिगर होने तक–तुम मिलोगे तो एक ही आँख, एक ही तुम्हारी दृष्टि–और मैं राख हो जाऊँगा, लेकिन तब तक क्या करूँ, यह तो बताओ। हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन–यह भी हमें पता है कि तुम धोखा न दोगे। यह भी पता है कि भरोसा तुम पे रखा जा सकता है। यह भी पता है कि तुम देर भी न करोगे। खाक हो जाएँगे हम, तुमको खबर होने तक! लेकिन तुम्हें खबर होगी, तभी न! तुम्हें पता चलेगा, तभी न! धोखा भी न करोगे, देर भी न करोगे–सब माना; लेकिन हमारी आवाज़ तुम तक पहुँचेगी, तब तक तो हम खाक ही हो जाएँगे, तबाह हो जाएँगे।

तो भक्त रोता है, गिड़गिडाता है, पुकारता है, दीवाने की तरह, गीत गाता है, सब्र बंधाता है, धीरज रखता है और अभीप्सा को भी जलाता है। एक बड़ी बेबूझ दशा है भक्त की।

'ऐसे अनन्य भक्त कण्ठावरोध, रोमांच और अश्रुयुक्त नेत्र वाले हो कर परस्पर सम्भाषण करते हुए अपने कुलों को और पृथ्वी को पवित्र करते हैं।'

ऐसे अनन्य भक्त, उसकी याद में आंदोलित, उसकी प्यास में दीवाने, उसको पुकार रहे हृदय के कोने-कोने से, रोआँ-रोआँ उसी को आवाज़ दे रहा–ऐसे भक्त, कण्ठावरोध, उनका गला रुंध जाता है, कहते नहीं बनता, आँसू भर आते हैं।

भक्ति कोई शास्त्र थोड़े ही है कि बैठे और पढ़ लिया। भक्ति तो अस्तित्वगत है, जीवन-रूपान्तरण है।

'ऐसे अनन्य भक्त कण्ठावरोध'.... बोलना चाहते हैं, बोल नहीं पाते, कंठ रुंध जाता है। 'रोमांच'.... रोएँ खड़े हो जाते। अश्रुयुक्त.... आँखें आँसुओं से भरी होती हैं। 'परस्पर सम्भाषण करते हैं,' एक-दूसरे को धीरज बँधाते हैं, एक-दूसरे को अपना अनुभव बताते हैं।

माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं
तू मिरा शौक देख, मिरी इंतज़ार देख!

–वे भगवान से कहते हैं कि यह तो हमने माना कि तुम हमें देखो, इस काबिल हम नहीं हैं; तुम्हारी आँख हम पे पड़े, इस काबिल हम नहीं हैं।

माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं
तू मिरा शौक देख..........।

–लेकिन मेरी प्यास तो देख, तू मेरी अभीप्सा तो देख, तू मेरी बेचैनी तो देख!

तू मिरा शौक देख, मिरी इन्तज़ार देख!

–मेरी प्रतीक्षा देख! मेरी पात्रता मत देख! पात्रता मेरे पास क्या है!

भक्त तो कहता है, मैं कुछ भी नहीं हूँ, दावा नहीं कर सकता हूँ। यह नहीं कह सकता कि तुझे मिलना ही पड़ेगा। मेरी कमाई क्या है! इतना ही कह सकता हूँ कि ज़रा मेरी आँखों में भरे आँसू देख! मेरे हृदय में उठता रुदन देख! मेरा रोआँ-रोआँ कंपता है तेरे लिए! तेरी प्रतीक्षा में आतुर हूँ। आँख के किवाड़ खोले बैठा हूँ!'

तू मिरा शौक देख, मिरा इंतज़ार देख!

भक्त दावा तो नहीं कर सकता; योगी कर सकता है–इतने आसन करता है, इतने प्राणायाम करता है। इतनी सदियों से तपश्चर्या, व्रत-उपवास करता और अभी तक तू नहीं मिला?

तुमने कभी खयाल किया, जरा-सा तुम कुछ करते हो तो फौरन तुम्हें पात्रता का बोध उठता है कि अरे, तीन दिन से ध्यान कर रहे हैं, अभी तक कुछ हुआ नहीं! तुम कैसी मूढ़तापूर्ण बातें कर लेते हो!

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि सात दिन हो गये, अभी तक कुछ हुआ नहीं! तुमने मजाक समझी है? अभी आँसुओं से तुम्हारी आँखें भी गीली न हुईं? अभी कंठावरोध भी कहाँ हुआ? अभी तुमने पुकारा ही कहाँ?

'भक्त कंठावरोध, रोमांच, अश्रुयुक्त नेत्रवाले हो कर परस्पर सम्भाषण करते हुए पृथ्वी को पवित्र करते हैं।'

रोमांच.... । परमात्मा की याद ही पुलक से भर देती है! कभी प्रेमी की याद की? कभी द्वार-दरवाजे पे बैठ के प्रेमी की प्रतीक्षा की? राह से पुलिस वाला निकल जाता है, दौड़ के आ जाते हो कि शायद प्रेमी आ गया! डाकिया दस्तक देता है, भागे चले आते हो कि शायद प्रेमी आ गया! पते खड़खड़ाते हैं हवा में सूखे, द्वार खोल लेते हो कि शायद प्रेमी आ गया!

जिसकी तुम्हें इंतज़ार है, तुम्हें उसी-उसी की खबरें चारों तरफ आभास होती हैं।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ बैठा था, उसके घर। एक ऊंट निकला। मैं थोड़ा चकित हुआ। नसरुद्दीन की आँखें बड़े भाव से भर गईं और जैसे उसे किसी बड़ा मधुर वस्तु की याद आ गयी; जैसे लार मुँह में आ गयी और उसने गटक ली। मैंने पूछा, 'मामला क्या है? ऊँट को देख के तुम्हें किस बात की याद आयी?' उसने कहा, 'ऊँट को देख के मुझे खीर, पूरी, हलवा, इस-इस तरह की चीज़ें याद आईं।' मैंने कहा, 'मैंने कभी सुना नहीं कि ऊँट का कोई भोजन से संबंध है!' उसने कहा, 'इससे क्या फर्क पड़ता है, मुझे तो रेलगाड़ी देख के भी हलुवा, पूरी, खीर की खबर आती है।' मैंने कहा, 'तेरा दिमाग खराब है।' उसने कहा, 'दिमाग खराब नहीं है, रोजे के दिन हैं, उपवास कर रखा है! हर चीज़ को देख के बस.... । ऊँट और रेलगाड़ी और हवाई जहाज, कोई संबंध नहीं है।'

तुमने कभी उपवास किया?–सब तरफ भोजन दिखायी पड़ता है!

संसार परमात्मा से उपवास है। अगर तुम सच में भूखे हो तो तुम्हें हर जगह वही दिखायी पड़ेगा।

साथ हर साँस के मिरे दिल से
आ रही, अभी खबर तेरी।

कंठावरोध होगा; जैसे गले से कुछ निकलना चाहता है, निकल नहीं पाता। क्योंकि परमात्मा के लिए कहाँ से शब्द लाओ! कैसे कहो, उसकी याद भी कैसे कहो! जिक्रे-यार भी कैसे करो! उस प्यारे का वर्णन कैसे करो! कंठ रुक-रुक जाता है। हृदय में कुछ होता है, लहर उठती है, कंठ तक आती है, लेकिन प्रगट नहीं हो पाती। भक्त थरथराता है।

थरथराता है अब तलक खुर्शीद
सामने तेरे आ गया होगा।

—भक्त कहता है, सूरज को तो देख, अभी भी थरथराता है—जरूर तेरे सामने आ गया होगा।

थरथराता है अब तलक खुर्शीद
सामने तेरे आ गया होगा।

भक्त जैसे-जैसे परमात्मा के करीब आने लगता है, वैसे ही उसके पैर डगमगाने लगते हैं, उसकी हालत शराबी की हो जाती है।

परमात्मा अनूठी शराब है। जिसने वह शराब पी ली, फिर किसी शराब की कोई जरूरत न रही। और शराब कुछ ऐसी है कि उससे होश बढ़ता है, घटता नहीं—लेकिन जीवन तरंगायित हो जाता है। जैसे दुलहन सज के चली, अपने प्रेमी को मिलने! भक्त तो सदा ही सुहागरात में जीता है। प्रतिपल उसकी प्रेमी से मिलन होने की संभावना है। किस क्षण वीणा बज उठेगी, किस क्षण पुकार आ जाएगी, किस क्षण वह स्वीकार हो जाएगा—हर क्षण प्रतीक्षा का है!

'भक्त एक-दूसरे से सम्भाषण करते हैं।'

फर्क समझ लेना। दार्शनिक, पंडित एक-दूसरे से विवाद करते हैं, संवाद नहीं। उन्हें सिद्ध करना है कुछ। अपनी सिद्ध करनी है तो दूसरे की असिद्ध करनी ही पड़ती है बात। भक्त को विवाद नहीं है। दो भक्त मिल जाते हैं, बैठ जाते हैं पास, आँसुओं से बोलते हैं, रोएँ-रोएँ से बोलते हैं। उनका एक सम्भाषण है।

सम्भाषण का अर्थ होता है: एक-दूसरा एक-दूसरे को सहारा दे रहा है। रास्ता अँधेरा है और लम्बा है। यह अँधेरी रात उसकी याद और उसकी चर्चा में कट जाए तो भली। सुबह तो आएगी, लेकिन सुबह बड़ी दूर है। जैसे-जैसे सुबह करीब आती है, अँधेरा और बढ़ता जाता है। तो भक्त एक-दूसरे को सान्त्वना, भक्त एक दूसरे को सहारा देते हैं। भक्त एक-दूसरे को, उनके भीतर क्या घटा है, क्या घट रहा है, उसका निवेदन करते हैं। विवाद का सवाल नहीं है। विवाद होता है दो सिरों के

बीच में; सम्भाषण होता है दो हृदयों के बीच में।

ध्यान रखना, अगर तुम्हें परमात्मा को खोजना है तो ऐसे लोगों का संग खोजना जहाँ सम्भाषण हो सके; जिनके पास बैठ कर सत्संग हो सके; जिनके पास बैठ के उस प्रेमी की याद सघन हो; जिनके आँसू तुम्हारे भीतर के आँसुओं को भी पुकार दे दें और जिनके भीतर बजती हुई वीणा तुम्हारी वीणा के तारों को भी छेड़ दे। वस्तुतः मंदिरों का यही उपयोग था कि वहाँ वे लोग मिल जाएँ जो अलग-अलग खोज में लगे हैं, और एक-दूसरे को सहारा दे दें, और ऐसा न रहे कि हम अकेले ही हैं, कोई और भी खोजने चला है; और भी लोग मार्ग पर हैं; हम अकेले नहीं हैं, संगी-साथी हैं। और जो हमें हो रहा है, वैसा दूसरों को भी हो रहा है। ताकि भय न पकड़े। नहीं तो बहुत बार ऐसा लगेगा, 'क्या हम पागल होने लगे! ऐसा तो पहले कभी न होता था कि आँखें बात-बात में भर जाती हैं! ऐसा तो पहले कभी न होता था कि बात-बात में कंठ अवरुद्ध हो जाता हो!'

रामकृष्ण निकलते थे तो उनके शिष्यों को उन्हें बचा के ले जाना पड़ता था कि रास्ते में कोई 'जयराम जी' न कर ले! इतना ही काफी था उनके लिए। किसी ने कह दिया 'जयराम जी', वे वहीं खड़े हो गये आँख बंद करके। गिर जाएँ सड़क पर, आँसू बहने लगें। कहीं उन्हें ले जाते थे तो पहले से लोगों को चेता देते थे कि भगवान की चर्चा मत छेड़ देना।

कहीं शादी-विवाह में बुला लिया एक बार उनको। किसी भक्त के घर शादी थी, वे चले गये। वह सब गड़बड़ हो गयी शादी। क्योंकि किसी ने परमात्मा की बात छेड़ दी, रामकृष्ण नाचने लगे, वे बेहोश हो गये, तो दूल्हा-दुल्हन को तो लोग भूल गये। रामकृष्ण बेहोश पड़े हैं। छह दिन तक बेहोश रहे। शादी-विवाह का तो सारा मामला ही खराब हो गया।

क्या हो जाता था? रामकृष्ण से लोग कहते थे, 'आपको हो क्या जाता है?' वे कहते, 'जैसे ही कोई उसकी याद दिला देता है, एक तूफान आ जाता है। फिर मैं अपने बस में नहीं रहता। फिर नियंत्रण नहीं कर पाता।'

सत्संग का यही उपयोग है कि वहाँ एक ही दिशा में चलने वाले लोग बैठ जाएँ, थोड़ी बात कर लें; एक-दूसरे का मन हलका कर लें; एक-दूसरे से कह दें वह जो कहा नहीं जा सकता है। यह सम्भाषण में ही सम्भव है; विवाद हो, तब तो तुमसे और मुश्किल हो जाएगी; तुम कह नहीं पाये कि दूसरा झंझट करने को, विवाद करने को खड़ा हो गया।

विवादी से थोड़े बचना प्रारम्भ में। जैसे कि हमारे बगीचे में छोटा-सा पौधा है; तो हम उसके चारों तरफ बागुड़ लगा देते हैं काँटों की; बड़ा हो जाएगा, फिर कोई जरूरत न रहेगी। लेकिन अभी अगर उसको छोड़ देंगे बिना बागुड़ के, जानवर खा जाएँगे, बच्चे तोड़ डालेंगे, कुछ-न-कुछ दुर्घटना घट जाएगी। जब तुम्हारे भीतर

भक्ति का अंकुर नया-नया है, तब तुम्हें सत्संग चाहिए; फिर तो तुम्हीं बड़े वृक्ष हो जाओगे; फिर तो तुम अपने ही बल से खड़े हो जाओगे; फिर कोई जरूरत न रहेगी।

.. 'सम्भाषण करते हुए अपने कुलों और पृथ्वी को पवित्र करते हैं।'

परमात्मा की याद भी पवित्रता लाने वाली है। परमात्मा मिल जाए, तब तो कहना क्या! लेकिन उसका जिक्र, उसकी याद भी पवित्र कर जाती है। थोड़ी देर को ही सही, तुम्हारी आँखें आकाश की तरफ उठती हैं। थोड़ी देर को ही सही, पदार्थ को तुम भूलते हो। थोड़ी देर को ही सही, तुम्हारे जीवन का वातायन खुलता है—उस दिशा में, जिस दिशा में तुम कभी भी नहीं गये; अज्ञात, अनजान तुम्हारे भीतर थोड़ा-सा प्रवेश पाता है; तुम नये हो आते हो!

'ऐसे भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सत्शास्त्र कर देते हैं।'

यह बड़ा अनूठा सूत्र है।

तीर्थों के कारण कोई भक्ति को उपलब्ध नहीं होता—लेकिन भक्त जहाँ हो जाए वहीं तीर्थ बन जाते हैं। कोई कर्म सुकर्म नहीं है, जब तक कि तुम्हारे जीवन में परमात्मा का हाथ प्रविष्ट न हो जाए। तुम्हारे किये तो सभी कर्म दुष्कर्म होंगे। परमात्मा तुम्हारे भीतर से कुछ करे तो सुकर्म होगा।

कर्मों को सुकर्म कर देता है भक्त, और शास्त्र सत्शास्त्र हो जाते हैं।

शास्त्रों को पढ़ के कोई भक्ति को उपलब्ध नहीं होता—लेकिन भक्ति को उपलब्ध हो जाए तो सारे शास्त्रों का प्रमाण हो जाता है स्वयं, सारे शास्त्रों के लिए गवाही हो जाता है, साक्षी हो जाता है। तब वह कह सकता है, 'मेरी तरफ देखो! शास्त्र पर भरोसा न आए, छोड़ो; यहाँ जीवित शास्त्र हूँ मैं, मेरी तरफ देखो! मेरी आँखों में आँखें डाल के देखो! मेरे पास आओ! मेरी तरंगों को अनुभव करो!'

तो भक्त में सारे शास्त्र सफल हो जाते हैं। यह बड़े मजे की बात है—क्योंकि नारद ने पहले कहा कि भक्त को शास्त्र की कोई जरूरत नहीं। वेद का भी त्याग कर देता है भक्त। लेकिन एक ऐसी घड़ी आती है जब भक्त उपलब्ध होता, तो सारे वेद उसकी मौजूदगी के कारण सत्य हो जाते हैं। वह फिर-फिर प्रमाण ले आता है कि परमात्मा है। वह फिर ऋचाओं को पुनरुज्जीवित कर देता है।

इश्क ने हमको जियारत गाहे-आलम कर दिया
गर्दे-गम से हो गया तामीर काबा एक और।

—प्रेम ने हमें संसार के लिए एक तीर्थस्थान बना दिया। प्रेम ने हमें संसार के लिए एक तीर्थस्थान बना दिया कि लोग तीर्थयात्रा कर जाएँ।

गर्दे-गम से हो गया तामीर काबा एक और।

—और परमात्मा के विरह में जो पीड़ा झेली गयी, उससे ही एक और नया काबा निर्मित हो गया।

जहाँ भक्त हैं वहीं काबा है। जहाँ भक्त हैं वहीं काशी है। जहाँ भक्त हैं वहीं गिरनार। जहाँ भक्त हैं वहाँ सभी कुछ है, क्योंकि वहाँ परमात्मा फिर पृथ्वी पर अवतरित हुआ है। भक्त ने जगह खाली कर दी है; भक्त के सिंहासन पर परमात्मा फिर विराजमान हुआ है। इसे भक्त कहे या न कहे, यह प्रगट होने लगता है।

किस तरह तेरी मुहब्बत को छुपाए रखिए
खामुशी भी लबे इज़हार हुई जाती है!

छिपाना असम्भव है। भक्त चुप भी हो तो चुप्पी में भी उसी का संदेश प्रगट होने लगता है।

किस तरह तेरी मुहब्बत को छुपाए रखिए
खामुशी भी लबे इज़हार हुई जाती है।

—चुप रहते हैं तो भी वक्तव्य हो जाता है। चलते हैं तो वक्तव्य हो जाता है। आँख हिलती है तो वक्तव्य हो जाता है। बोलें तो बोलें, न बोलें तो भी शास्त्र के लिए प्रमाण मिल जाता है।

हज़ारों बार कोशिश कर चुका हूँ
नहीं छुपतीं मुहब्बत की निगाहें।

असम्भव है! जब तुम्हारे घर में दीया जलेगा, कैसे छिपाओगे? अँधेरी रात से गुजरने वालों को भी दूर-दूर से भी रात के अँधेरे में तुम्हारे घर की रोशनी द्वार-दरवाजों के रन्ध्रों से प्रगट होने लगेगी। घर में दीया जला है तो दूर-दूर से यात्री आने लगेंगे।

यह जो भक्त की परम दशा है, यह करीब-करीब पागल जैसी है। करीब-करीब कहता हूँ, क्योंकि पागल जैसी भी है और पागल जैसी नहीं भी है।

कबू रोना, कबू हँसना, कबू हैरान हो रहना
मोहब्बत क्या भले-चंगे को दीवाना बनाती है!

भक्त ज़रा बेबूझ हो जाता है; हँसने लगता है, कभी रोने लगता है, कभी चुप रह जाता है, कभी हैरानी से ठिठक के आकाश को देखता है। भक्त तुम्हारे बीच होता है लेकिन तुमसे बहुत दूर होता है—किसी और लोक में होता है! उसने कुछ देखा है जो उसे दीवाना बना गया।

'ऐसे भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म, शास्त्रों को सत्शास्त्र कर देते हैं, क्योंकि वे तन्मय हैं।'

'तन्मयाः!'

—क्योंकि वे परमात्मा में लीन हैं; क्योंकि वे परमात्मा में डूबे हैं; क्योंकि उन्होंने परमात्मा को अवसर दिया! वे परमात्मा के वाहन बन गये हैं। उन्होंने अपने को तो पोंछ डाला! उन्होंने परमात्मा के लिए पूरी जगह खाली कर दी! वे हट गये

अपने और परमात्मा के बीच से ! उन्होंने शून्य का पात्र रख दिया उसके सामने, परमात्मा उसमें बरस गया है ।

'तन्मयाः' !

भक्ति का सूत्र है : तन्मय हो जाना । जो तुम करो उसमें तन्मय हो जाओ, वहीं भक्ति पैदा हो जाती है । खाना बना रहे हो, मकान झाड़ रहे हो, लकड़ी काट रहे हो, कुछ भी कर रहे हो—तन्मय हो जाओ । लकड़ी काटते समय बस लकड़ी काटने की क्रिया रह जाए, तुम न रहो । झाड़ते समय झाड़ना रह जाए, तुम न रहो । और सतत एक भाव-दशा बनी रहे—उसी के लिए ! उसी के लिए लकड़ी काटते हैं ! उसी के लिए आंगन बुहारते हैं ! उसी के लिए भोजन बनाते हैं !

जैसे-जैसे तुम्हारा कर्म तुम्हें डुबाने लगे, तुम तल्लीन होने लगो, वैसे-वैसे 'पितृगण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचते हैं, यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है ।'

'मोदन्ते पितरो' । तुम्हारे पूर्वज तुम्हारी खिलावट को देख कर. . . ! एक भक्त पैदा हो जाए तो अनंत पीढ़ियाँ सफल हुईं । जब फूल लगता है वृक्ष पर तो गहरी से गहरी जमीन में छुपी जड़ें भी प्रमुदित होती हैं; सफल हुई, सार्थक हुई ! बेटा पा ले तो बाप भी सार्थक हुआ, क्योंकि एक ही सिलसिला है ।

'मोदन्ते पितरो' ! जो जा चुके तुम्हारे पितर, वे भी प्रमुदित होते हैं । धन्य, तुम उनके घर में पैदा हुए ! धन्य, तुमने उनका होना भी सार्थक किया !

'नृत्यन्ति देवताः ! स्वर्ग के देवता भी नाचते हैं : 'फिर घटी घटना ! फिर कोई भक्त हुआ ! फिर कोई भगवान हुआ ! फिर घटी घटना ! फिर कोई मिटा और किसी ने परमात्मा को अपने सिंहासन पर विराजमान किया ! फिर एक मंदिर बना, एक तीर्थ बना, एक काबा निर्मित हुआ! स्वभावतः देवता न नाचेंगे तो कौन नाचेगा !

महावीर के संबंध में कहा जाता है, जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए, तीनों लोकों का संगीत बरसा । असमय फूल खिल गये ! आकाश से देवता फूल बरसाने लगे !

ये सब प्रतीक-कथाएँ हैं । ये इतना ही कह रहे हैं कि जब भी कोई ऐसी परम दशा को उपलब्ध होता है तो सारा अस्तित्व उस व्यक्ति के माध्यम से एक आकाश की ऊँचाई को छूता है ।

तुम भी उसी परम की योजनाएँ हो ! तुम्हारे भीतर से भी उसने एक हाथ फैलाया है ! तुम्हारे भीतर से परमात्मा सतत सक्रिय है कि कोई श्रेष्ठतर, और श्रेष्ठतर दशा उत्पन्न हो ! तुम चैतन्य के शिखर बन जाओ ! तुम्हारी सफलता में परमात्मा की भी सफलता है । तुम्हारी विफलता में उसकी भी हार है । क्योंकि तुम उसके सृजन हो, उसके कृत्य हो !

'नृत्यन्ति देवताः' ।

'और यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है ।'

'उनमें (भक्तों में) जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादि का भेद नहीं है ।'

भक्त तो सिर्फ भक्त है—न हिन्दू न मुसलमान । भक्त तो सिर्फ भक्त है—न शूद्र न ब्राह्मण । भक्त होना काफी है, फिर सब विशेषण व्यर्थ हुए ।

आशिक तो किसी का नाम नहीं
कुछ इश्क किसी की जात नहीं
कब याद में तेरा साथ नहीं
कब हाथ में तेरा हाथ नहीं !

क्या जात है प्रेम की ?

आशिक तो किसी का नाम नहीं
कुछ इश्क किसी की जात नहीं !

—वहाँ न कोई वर्ण है, न वर्ण-भेद है ।

जब तक तुम्हारे आसपास ऐसी क्षुद्र दीवारें बनी हैं तब तक तुम परमात्मा के लिए द्वार न खोल पाओगे । अगर तुम मुसलमान हो तो मुसलमान रहते ही तुम परमात्मा को न पा सकोगे । अगर तुम हिन्दू हो तो हिन्दू रहते ही तुम परमात्मा को न पा सकोगे । क्योंकि इतने छोटे घेरे तुमने बनाये हैं ।

उठाइये भी दैरो हरम की ये सबीलें
बढ़ते नहीं आगे जो गुजरते हैं इधर से ।

—ये मंदिर और मस्जिद की दीवालें हटाइये !

उठाइये भी दैरो हरम की ये सबीलें
बढ़ते नहीं आगे जो गुजरते हैं इधर से !

—यहीं अटक जाते हैं । कोई मंदिर में अटका है, कोई मस्जिद में अटका है । परमात्मा तक पहुँचने के साधन ही बाधक बन गये मालूम होते हैं । मंदिर से आगे जाना है । मस्जिद से बहुत आगे जाना है । ये कोई मंजिलें नहीं हैं—रास्ते के पड़ाव हों, बस काफी हैं; थोड़ी देर को विश्राम करने को रुक गये, ठीक है—लेकिन भूल मत जाना, इनमें खो मत जाना !

न जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, किसी क्रियादि का कोई भेद नहीं है, 'क्योंकि वे उनके ही हैं, भगवान के ही हैं ।'

'यतस्तदीयाः' ।

भक्त तो भगवान है, फिर हिन्दू कैसे हो सकता है, फिर मुसलमान कैसे हो सकता है, फिर ब्राह्मण कैसे हो सकता है, शूद्र कैसे हो सकता है ?

'यतस्तदीयाः' ।

—'क्योंकि वे उनके ही हैं, भगवान के ही हैं ।' भगवान के हो गये, फिर ये छोटे-छोटे खिलौने हैं, फिर ये छोटे-छोटे मंदिर-मस्जिद के झगड़े हैं, फिर ये छोटे-छोटे रंग और हड्डी और चमड़े के फासले हैं !

जनक ने एक महासभा बुलाई । सभी पंडितों को आमंत्रित किया; सिर्फ एक

आदमी को आमंत्रित नहीं किया—वह आदमी था : अष्टावक्र ! वह अनूठा ज्ञानी था। लेकिन उसका शरीर आठ जगह से इरछा-तिरछा था—अष्टावक्र। इसलिए उसका नाम अष्टावक्र पड़ गया था—आठ जगह से तिरछा। सभा में यह आदमी शोभा न देगा; सम्राट की सभा में ऐसा कूबड़ निकाला हुआ, सब तरफ से झुका, इरछा-तिरछा, एक हँसी-मजाक का कारण बनेगा—उसे नहीं बुलाया था। लेकिन अष्टावक्र के पिता को बुलाया था। कोई काम पड़ गया घर, तो अष्टावक्र बुलाने पिता को सभा में आ गया। जैसे ही वह अन्दर आया, ब्रह्मज्ञानियों की सभा थी, वे सभी हँसने लगे उसकी चाल देख के, उसकी कुरूपता देख के ! जनक भी थोड़े बेचैन हुए। लेकिन और भी हैरानी हो गयी, अष्टावक्र ने चारों तरफ देखा और वह इतने जोर से खिलखिला के हंसा कि सारे पंडित एक क्षण को तो अवाक् रह के ठिठक गये, यह उनकी समझ में ही न आया कि यह आदमी किसलिए हँसा !

जनक ने पूछा, 'ये किसलिए हँसते हैं, वह तो मैं समझा; लेकिन तुम किसलिए हँसे ?'

तो अष्टावक्र ने कहा, मैं इसलिए हँसा कि तुमने तो ब्राह्मणों को बुलाया था, ये तो सब चमार हैं। ये चमड़ी के जानकार हैं ! मुझको नहीं देखते, चमड़े को देखते हैं। मैं तुमसे कहता हूँ, मुझसे ज्यादा सीधा इनमें से कोई भी नहीं है, बिलकुल सीधा हूँ ! शरीर तिरछा है, माना। इसलिए हँसता हूँ कि इन चमारों को बुला के तुम ब्रह्मज्ञान की चर्चा करवा रहे हो। निकाल बाहर करो इनको !'

ठीक कहा अष्टावक्र ने। चमड़े से जो भेद करे, वह चमार।

भक्त तो भगवान के हैं। अब इससे और ऊपर होना क्या रहा ! अब क्या और विशेषण रहा ! सब विशेषण गिर गये !

तुमसे भी मैं यही कहता हूँ : भगवान के हो रहो ! मंदिर-मस्जिदों को छोड़ो, भूलो ! फासले छोड़ो, मिटाओ ! फासले तो तुम्हें आदमियों से भी न मिलने देंगे, परमात्मा से मिलने की तो बात दूर। कम-से-कम इतना तो करो कि आदमियों से ही मिलने की क्षमता बना लो, तो उससे सम्भावना पैदा होगी कि कभी तुम परमात्मा से भी मिल सकते हो।

परमात्मा को पाना हो तो अभेद की दृष्टि चाहिए, अभेद का दर्शन चाहिए।

'यतस्तदीया : ! वे भगवान के हैं !'

आज इतना ही।

दिनांक १८ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

... मैं बिलकुल अकेली हूँ, बुढ़ापा भी आ गया है, पैर से अपाहिज हूँ, नाच भी नहीं सकती— क्या मेरे लिए आशा की कोई किरण सम्भव है ?

आपको सुन कर तथा ध्यान करने से मेरी अज्ञात के प्रति आस्था जगने लगी है। क्या यह नए परिवेश का सम्मोहन तो नहीं ?

वेद कुरान् को त्याग कियो
परित्याग कियो री पुरानन को
कंत के नैन में ध्यान धर्‌यो
ब्रह्मानंद सुनो सखि कानन को
गुरुअन की शरणन् में कबहूं न गई
मंदिर न चढ़ी नाही जोग लियो
पर जोग को भान भयो री सखी
जब प्यारे पिया संग भोग कियो।
क्या यह भी कोई मार्ग है ?

एकांत में ही मंदिर है

पहला प्रश्न : घर-परिवार में होते हुए भी मुझे लगता है कि कोई अपना नहीं है, मैं बिलकुल अकेली हूँ। साथ ही पाती हूँ कि बुढ़ापा भी आने लगा, और रिक्त हूँ, रूखी-सूखी हूँ; प्रेम की एक बूंद भी मुझमें नहीं है। पैर से थोड़ी अपाहिज हूँ, इसलिए शिविर में मन भर के नाच भी नहीं सकती। घर वाले आपको विशेष पसंद भी नहीं करते हैं। अब तो आपको सुन कर आँसू बहते हैं और कुछ सूझता नहीं कि क्या करूँ! क्या मेरे लिए आशा की कोई किरण सम्भव है?

पहली बात : अकेला होना मनुष्य का स्वभाव है। अकेला होना मनुष्य की नियति है। और जब तक अकेले होने को स्वीकार न करोगे, तब तक बेचैनी रहेगी। लाख उपाय करो कि अकेलापन मिट जाए, नहीं मिटेगा, नहीं मिटेगा। क्योंकि अकेलापन तुम्हारे भीतर की आन्तरिक अवस्था है, तुम्हारा स्वभाव है। ऊपर-ऊपर होता, निकाल के अलग कर देते।

अकेलापन सांयोगिक नहीं है; अलग किया ही नहीं जा सकता। अगर तुम्हारा अकेलापन तुमसे अलग हो जाए, उसी दिन तुम्हारी आत्मा खो जाएगी। आत्मा का होने का ढंग ही अकेला होना है। और जब तक तुम अकेलेपन को मिटाने की चेष्टा करोगे, तब तक हार और पराजय ही हाथ लगेगी। क्योंकि स्वभाव का अर्थ है, जो न मिटाया जा सके। कोई उपाय नहीं है। मित्र बनाओ, परिवार बसाओ, बच्चे हों, पति-पत्नी हों, समाज हो—सब थोड़ी देर को धोखा भला दे जाए कि तुम अकेले नहीं हो, पर अकेला होना मिटता नहीं है। जब भी थोड़ी आँख भीतर करोगे, पाओगे : अरे! परिवार कहाँ दूर पड़ा रह गया; मित्र-प्रियजन, कितना बड़ा फासला है! आँख बंद की कि पाया कि अकेले हो गये। आँख खोल के तुम अपने को भुलाये रहो भरमों में, डुबाये रहो हज़ार काम-धंधों में, व्यस्तता को ओढ़े रहो—लेकिन बार-बार क्षण भर को, घड़ी भर को तो विश्राम करोगे! क्षण भर को तो घर आओगे, भीतर प्रवेश करोगे! फिर वही स्वाद, फिर वही एकाकीपन!

गृहस्थ का अर्थ ही यही है : वह व्यक्ति जो संबंध बना कर अपने भीतर के

अकेलेपन को मिटाने की चेष्टा में संलग्न है। गृहस्थ की यह परिभाषा है। संन्यस्त की यह परिभाषा है कि जिसने यह जान लिया कि यह मेरा स्वभाव है, मिटाने में व्यर्थ समय न खोऊँ; और जिसने अपने एकाकीपन को भोगना शुरू कर दिया—रस ले ले के; जो अपने एकाकीपन को दुश्मन की तरह नहीं देखता, बल्कि एकाकीपन को ही जिसने अपनी शरण बना ली; संसार की धूप से, बेचैनी से बचने के लिए सदा अपने एकाकीपन में चला गया; जब भी थका बाहर, भीतर डूब गया; जब भी बाहर उलझा, उपद्रव हुआ, तब भीतर डूब गया; जब पाया कि बाहर जीवन गंदा हुआ जाता है, भीतर स्नान कर लिया एकाकीपन में, फिर ताजा हो गया!

ध्यान अर्थात् एकाकीपन में रमने की कला।

एकाकीपन परम सुन्दर है। तुमने नाहक के भय पाल रखे हैं। उन भयों के लिए कोई वास्तविक कारण नहीं है—सांयोगिक कारण हैं।

बच्चा पैदा होता है, असहाय होता है। मनुष्य का बच्चा पृथ्वी पर सबसे ज्यादा असहाय है। जानवरों के बच्चे पैदा होते हैं, उठे और चल पड़े, जिंदगी की यात्रा शुरू हो गयी। जंगली जानवरों के बच्चे परिवार में नहीं पलते, बड़े होते, जन्म होते से माँ-बाप भी मुक्त हो गये, वे भी मुक्त हो गये। आदमी के बच्चे को इतना मुक्त होने में कम-से-कम पच्चीस वर्ष लग जाते हैं। बच्चा तो असहाय पैदा होता है। आदमी के बच्चे को अगर छोड़ दो, कोई सहारा न हो, कोई परिवार न हो, कोई प्रेम करने वाला, देख रखने वाला न हो, तो बच्चा मर जाएगा, बच नहीं सकता। अगर आदमी के लिए परिवार न मिले तो आदमी इस पृथ्वी से समाप्त हो जाएगा। और सब जानवर रहेंगे—पक्षी रहेंगे, पशु रहेंगे, आदमी भर नहीं रहेगा।

आदमी का बच्चा बहुत असहाय है। माँ-बाप की जरूरत है—वर्षों तक! आठ-दस साल का भी हो जाएगा, तब भी स्वतंत्र हो नहीं पाता। पढ़ाना है, पढ़ना है, शिक्षा पानी है—तब भी माँ-बाप पे निर्भर होगा। तो करीब पच्चीस साल लगते हैं आदमी के बच्चे को उस जगह आने में, जहाँ जानवरों के बच्चे पैदा होते से ही होते हैं।

इस असहाय अवस्था के कारण ही परिवार का जन्म हुआ। इसलिए पशुओं ने परिवार नहीं बनाये, सिर्फ आदमी ने बनाये। पच्चीस साल तक बच्चा निर्भर रहता है—माँ पर, पिता पर, भाई पर, परिवार पर—यह निर्भर रहने की आदत बन जाती है। छोटा बच्चा बहुत डरता है; अगर माँ घर के बाहर जा रही हो तो वह बहुत भय-भीत हो जाता है। उसका भय स्वाभाविक है। कौन उसकी चिंता करेगा! भूख लगेगी तो कौन दूध देगा! प्यास लगेगी तो कौन पानी देगा! कपड़े गीले कर लेगा अपने, तो कौन बदलेगा! सर्दी लगेगी तो कौन कंबल डालेगा! माँ घड़ी भर को बाहर जाती है तो बच्चे को मृत्यु जैसा अनुभव होता है, यह तो मैं मरा! माँ अगर ऐसे ही गुस्से में कह देती है कि मैं मर जाऊँगी, अगर तुम चुप न हुए, उधम बन्द न किया,

तो माँ को पता नहीं है कि बच्चे को कितना भारी धक्का पहुँचाया है उसने; क्योंकि माँ की मृत्यु का अर्थ है उसकी भी मृत्यु । वह कैसे बचेगा !

पच्चीस साल तक इस तरह परनिर्भर रहने के कारण, सदा दूसरे के साथ जीने के कारण, अकेलेपन की सामर्थ्य खो जाती है। फिर तुम अकेले होने में समर्थ भी हो जाते हो, लेकिन पुरानी आदतें पीछा करती हैं, छाया की तरह पीछे लगी रहती हैं । सत्तर साल के भी हो जाते हो, तब भी मुक्त नहीं हो पाते कि अकेले हो सको। मरते दम तक भी आँखें दूसरों को खोजती रहती हैं ।

मरते हुए बूढ़े आदमी को देखो : खोजता रहता है, 'मेरा बेटा कहाँ है ? अभी तक आया नहीं !' अनेक बार ऐसा होता है कि बेटा दूर गाँव है, आने में देर लगती है, तो बाप जिंदा बना रहता है जब तक बेटा नहीं आ जाता; जैसे ही वह आया, समाप्त होने की सुविधा बनी; अटका रहता है, पकड़े रहता है जीवन को, जद्दोजहद करता रहता है । जन्म से ले के मृत्यु तक. . . . जन्म में तो समझ में आता है, फिर तो आदत की बात है ।

ध्यान का अर्थ है : इन संस्कारों को जो बचपन से पड़ गये हैं, यह दूसरे का सहारा खोजने की जो गलत आदत पड़ गयी है—ध्यान का अर्थ है, इस आदत से ऊपर उठ जाना, और एक नये सूत्रपात का उद्घाटन करना : 'मैं अकेला हो सकता हूँ ! और मैं अकेला हूँ ! '

तुम जितनी चेष्टा करोगे कि कहीं अकेला न रह जाऊँ, उतना ही ज्यादा तुम अकेलापन अनुभव करोगे । जिस दिन तुम राजी हो जाओगे, स्वीकार कर लोगे कि यह तो स्वभाव है; मैं भी कैसा मूढ़ हूँ, स्वभाव से लड़ने चला ! स्वभाव से लड़ के कभी कोई जीता ! हारता है बस ! जिस दिन तुम स्वीकार कर लोगे, और तुम कहोगे, 'यह तो मेरी नियति है, तो इससे परिचय तो बना लूँ ! यह कौन है मेरे भीतर जो एकाकी है, जरा इसम गहरे जाऊँ, डुबकी लगाऊँ, तलहटी तक खोजूँ ! यह कौन है जो भीतर अकेला है !'—और जैसे ही तुम भीतर की यात्रा पर चलोगे, तुम पाओगे, कि मैं भी खूब पागल था, जो मैं खोजता था भीड़ में वह मेरे हृदय में था; जो मैं खोजता था संग में, साथ में, संबंध में, वह असंगता में था; जिसको मैंने दूसरे के सामने झोली फैला के माँगा था, वह मेरे ही भीतर खजाना छिपा था !

एकाकीपन परम सुन्दर है । इसलिए जैनों ने अपने मोक्ष का नाम रखा : कैवल्य । बड़ा प्यारा शब्द चुना । कैवल्य का अर्थ है : बस अकेले; बस अकेलापन बचा, शुद्ध अकेलापन बचा; इतना अकेलापन बचा कि दूसरे तो हैं ही नहीं वहाँ, तुम भी नहीं हो; दूसरे तो गये ही, साथ-साथ तुम्हें भी ले गये । क्योंकि तुम जो अपने को समझते हो तुम तुम हो, यह दूसरों का दान है; यह तुम हो नहीं । किसी ने कहा, 'सुन्दर हो बड़े,' सम्हाल के रख लिया इस बात को, सुन्दर हो गये ! किसी ने कहा

'बड़े बुद्धिमान हो,' सम्हाल ली, गठरी बाँध ली भीतर कि मैं बुद्धिमान हूँ ! यह भी सब दूसरों का दिया हुआ है ।

थोड़ी देर को सोचो तो, अगर तुम उस सब को छोड़ दो जो दूसरों ने तुम्हें दिया है, तुम्हारी प्रतिमा ही बिखर जाएगी । इसमें मित्रों का भी दान है, शत्रुओं का भी दान है; अपनों का भी दान है, परायों का भी दान है । तुम गठरी बाँधते चले गये हो । और इसलिए तो तुम्हारी जो आत्मप्रतिमा है, बड़ी उलझी है, विरोधाभासी है, उसमें कोई संगति नहीं है, संगीत नहीं है, लयबद्धता नहीं है । क्योंकि कितने लोगों से तुमने इकट्ठा कर लिया है !

यह ऐसे ही है जैसे कि एक कार बनाई जाए, और तुम एक-एक पुर्जा जगह-जगह से इकट्ठा कर लाओ—कोई फोर्ड का होगा, कोई फियट का होगा, कोई राल्सरायस का होगा, ऐसे तुम कबाड़खानों से इकट्ठे कर लाओ सब कल-पुर्जे—और फिर उसको जोड़ के तुम कार बना लो, दिखायी पड़ेगी कि यह बन गयी, चलेगी नहीं । और भूल के उसमें चढ़ना मत !

मुल्ला नसरुद्दीन के बेटों ने इस तरह की एक कार बना ली थी, और उन्होंने कहा, 'पापा ! हम जा रहे हैं सैर को, तुम भी आ जाओ ।' रंग-रोगन देख के गाड़ी का वह भी बैठ गया । पर गाड़ी कोई रंग-रोगन से थोड़े ही चलती है ! बैनेट के नीचे जो छिपा है, उससे चलती है; वह तो दिखायी पड़ता नहीं है । रंग-रोगन से कहीं गाड़ी चली है ! बैठ गया । गाड़ी दो-चार-दस कदम चली होगी कि हड्डी-हड्डी थरथरा गयी । रास्ते के बगल में जा के गिर गयी खेत में, कलपुर्जे बिखर गये । मुल्ला अपने सिर से हाथ लगा के बैठ गया । उसके बेटे ने कहा, 'पिताजी । चोट लगी है, तकलीफ हुई है ? डॉक्टर के पास ले चलूँ ?' उसने कहा, 'डॉक्टर के पास क्या होगा ले जाने से ! वैटनरी डॉक्टर के पास ले चलो ! अगर अक्ल ही होती मुझ में तो तुम्हारी कार में बैठता ? पशुचिकित्सालय में भरती कर दो। मेरा इलाज वहीं होगा ।'

यही तुम्हारी प्रतिमा है । कुछ कहीं से, कुछ कहीं से तुमने इकट्ठा कर लिया है । और इसलिए तो तुम्हारे जीवन में संवाद नहीं है । मित्रों ने जो बातें कही थीं, वे भी भीतर पड़ी हैं; शत्रुओं ने जो कह दी थीं वे भी भीतर पड़ी हैं । किसी ने कह दिया, बहुत सुन्दर हो; किसी ने कहा कि तुम जैसा कुरूप आदमी नहीं देखा; किसी ने कहा कि तुम बड़े दाता हो, बड़े दानी हो; किसी ने कहा, कृपण, आखिरी दर्जे के कंजूस ! यह सब पड़ा है भीतर । अब तुमको खुद भी समझ में नहीं आता कि तुम हो कौन । तुम्हारी अपनी कोई पहचान सीधी-सीधी नहीं है, सब उधार है ।

परम एकांत के क्षण में दूसरे तो होते ही नहीं, दूसरों ने तुम्हें जो धारणा दी थी तुम्हारे सम्बंध में, वह भी नहीं होती । तभी तुम्हारा स्वभाव प्रगट होता है ।

एकांत में ही मंदिर है । एकांत में ही, परम एकांत में ही आत्मसाक्षात्कार है ।

तो पहली बात तो यह खयाल रखो.....।

पूछा है, 'घर-परिवार में होते हुए भी मुझे लगता है कि कोई अपना नहीं है।' बिलकुल ठीक लगता है, शुभ लगता है, सत्य लगता है। मगर चेष्टा इससे विपरीत चल रही होगी। चेष्टा यह चल रही होगी कि किसी तरह यह एकाकीपन मिट जाए; वस्तुतः कोई मेरा हो! बहुत लोग तुम्हें भरोसा भी दिला देंगे, 'हम तुम्हारे हैं'; लेकिन वह बस भरोसा है, सांत्वना है; तुम्हें संतोष बँधाया जा रहा है। जो अपने नहीं ह वे तुम्हारे क्या हो सकेंगे? और कोई किसी का हो कैसे सकता है? कितना ही बेटा कहे माँ से कि मैं तुम्हारा हूँ, कल माँ चल बसेगी, बेटा साथ नहीं जाएगा। कितना ही पति कहे कि सदा-सर्वदा का तुम्हारा हूँ, पत्नी मर जाएगी तो पति साथ नहीं मर जाएगा। कौन किसके साथ जाता है! ये सब बातें हैं—जरूरी हैं, क्योंकि आदमी बड़ा बेचैन है। उसे संतोष की शराब चाहिए; उसे अफीम चाहिए, ताकि वह सोया रहे; उसे ऐसा खयाल भर बना रहे कि सब अपने हैं। 'कितना भरा-पूरा घर है,' लोग कहते हैं। सब भरे-पूरे घर पड़े रह जाते हैं, जब विदा का क्षण आता है।

कोई अपना नहीं है, यह इतना बड़ा सत्य है कि इससे लड़ना मत। यही तो दुर्दशा है साधारण जन की : जो नहीं हो सकता उसे करने की चेष्टा करता है; जो हो सकता है, मात्र निर्णय लेने से जो हो सकता है, उसकी चेष्टा नहीं करता।

कितनी बार तुम सबको नहीं लगा है कि कितने अकेले हो, मगर फिर-फिर तुमने अपने को भुलाने की कोशिश की है! क्यों इतने डरे हो अपने से? जो भी भीतर हो उसे जानना ही होगा! सुखद-दुखद, कुछ भी हो, अपने स्वरूप से परिचय बनाना ही होगा, क्योंकि उसी परिचय के आधार पर तुम्हारे जीवन के फूल खिलेंगे।

देखो! जिनके जीवन के भी फूल खिले हैं, वे सब किसी न किसी रूप में एकांत की तलाश में चले गये थे। खिल गये फूल, तब लौट आए बाज़ार में। लेकिन जब फूल खिले नहीं थे—चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, चाहे मुहम्मद, चाहे क्राइस्ट—सब चले गये थे, दूर एकांत में। बाहर का एकांत तो भीतर के एकांत की खोज का सहारा है। बाहर का एकांत भी भीतर के एकांत को बनाने के लिए सुविधा जुटा देता है बस। असली एकांत तो भीतर है। लेकिन अगर बाहर भी एकांत हो तो भीतर के एकांत में डूबने में सुविधा मिलती है। ज़रूरी नहीं है कि कोई भाग के जाए, ठेठ बाज़ार में भी अकेला हो सकता है।

वस्तुतः तुम्हें हर बार लगता है कि अकेले हो, मगर उस अंतर्दृष्टि को तुम पकड़ते नहीं। वह अंतर्दृष्टि तुम्हारा जीवंत सत्य नहीं बन पाती, उलटे तुम उसे झुठलाते हो। तुम कहते हो, 'कौन कहता है मैं अकेला हूँ? पत्नी है, बच्चे हैं; घर-द्वार है, सब भरा-पूरा है!' भीतर तो देखो, पात्र खाली का खाली पड़ा है। ये प्रवंचनाएँ हैं। इन प्रचवंनाओं से जागो!

तो मैं तुमसे यह नहीं कहता....। मैं तुम्हें कोई तरकीब नहीं बताता कि

कैसे तुम्हारा अकेलापन मिट जाए—मैं तुमसे कहता हूँ, कैसे तुम अकेलेपन को उत्सव बना लो, कैसे तुम्हारा अकेलापन तुम्हारे जीवन की संपदा बन जाए; कैसे तुम्हारा अकेलापन आत्मसाक्षात्कार का द्वार बन जाए।

छोड़ो बचना! जीवन भर बहुत दौड़े; कहाँ पहुँचे? अब वही हो रहो जो अपने आप होता मालूम पड़ता है। राजी हो जाओ। और राजी भी बे-मन से नहीं, थके मन से नहीं; राजी भी विषाद और हार में नहीं—राजी, सत्य को समझ कर। क्या करोगे, दीवाल से अगर निकलने की कोशिश करते हो, सिर टकराता है? बहुत करके देख ली, सिर लहूलुहान हो गया है, अब दरवाजे से निकलो! तुम यह तो न कहोगे कि दरवाजे से जो निकलता है, वह कमजोर है, कायर है; हम तो दीवाल से ही निकलेंगे; हम कोई कायर नहीं हैं! मगर तुम दरवाजे से निकलने वाले आदमी को कायर नहीं कहते, बुद्धिमान कहते हो। और दीवाल से टकराने वाले को साहसी कहने की कोई ज़रूरत नहीं—वह मूढ़ है, बुद्धिहीन है। दीवाल से कभी कोई निकला? निकलने के लिए द्वार है।

अकेलेपन से लड़ के कभी कोई नहीं जीता। जीतने वाले अकेलेपन पे सवार हो गये; उन्होंने अकेलेपन का घोड़ा बना लिया; अकेलेपन को रथ बना लिया, उस पे सवार हो गये। और तब अकेलापन कैवल्य तक पहुँचा देता है; उस परम दशा तक, जिसको परमात्मा कहें, भगवान कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें—उस परम दशा तक पहुँचा देता है। अकेले ही तुम पहुँचोगे।

तो मैं जब तुमसे कहता हूँ, अकेलेपन को स्वीकार कर लो, तो ध्यान रखना, स्वीकार करने का मजा तो तभी होगा जब तुम स्वागत से स्वीकार करो। ऐसे बे-मन से कर लिया कि ठीक है, चलो, नहीं होता तो चलो यही कर लेते हैं, तो कुछ भी न होगा। तब तुम्हारे इस बे-मन के पीछे तुम्हारी पुरानी आकांक्षा अभी भी सक्रिय है। तुम कोई न कोई उपाय खोज के फिर अपने अकेलेपन को भरोगे।

गृहस्थ का अर्थ है : जो अपने अकेलेपन को भरने की कोशिश में लगा है। संन्यस्त का अर्थ है : जो इस सत्य को अंगीकार किया है कि अकेलापन है, भरा नहीं जा सकता—तो जीएँगे; तो हम इसे भोगेंगे, इसका स्वाद लेंगे; अगर है भीतर तो जरूर कुछ कारण होगा! और कारण यही है कि अकेलेपन की सीढ़ी परमात्मा से लगी है; उसी पे चढ़-चढ़ के एक-एक सोपान तुम परमात्मा तक पहुँच जाओगे।

जब तक तुम अपने अकेलेपन से बचोगे तब तक तुम संसार में उतरते जाओगे, और परमात्मा से दूर होते जाओगे। क्योंकि जितना तुम दूसरों से जुड़ोगे, उतने ही अपने से दूर हो जाओगे। और वह जोड़ वास्तविक नहीं है; वह जोड़ सिर्फ जोड़ का धोखा है, जोड़ का आभास है।

एक महिला मुझे मिलने आयी। पति से परेशान है। मगर पुरानी धारणाओं की है, तलाक भी नहीं दे सकती। पति दुष्ट है, मारता-पीटता भी है। जब आयी तो

उसने अपने हाथ, पीठ बतायी । सब निशान पड़ गये हैं । लहूलुहान कर देता है पति जब मारता है । मैंने कहा, 'तू अलग क्यों नहीं हो जाती ?' उसने कहा, 'अब कैसे होऊँ ? गठबंधन हो गया है !' 'गठबंधन !' उसने कहा, 'हाँ सात फेरे लग गये ।' तो मैंने कहा, 'यह कोई बड़ी बात है ? पति को ले आ, सात उलटे फेरे लगवा देंगे । और क्या मामला है ? सात फेरे ही लगे हैं न ! उलटे लगवा देंगे, मामला खत्म ! गाँठ कहाँ बँधी है ? आँचल से बँधी थी ? खोल देंगे ! किसी ने बांधी थी, हम खोल देंगे, तू ले आ । गाँठ, है क्या मामला इसमें इतना ?'

लेकिन झूठे गठबंधन भी बड़े वास्तविक मालूम होने लगते हैं । सात चक्कर लगा लिये, अब क्या करें ! चक्कर में पड़ गये । उलटे लगा लो !

हम सारी व्यवस्था ऐसी करते हैं कि बंधन वास्तविक मालूम पड़ने लगें । इसलिए तो शादी का इतना शोरगुल मचाया जाता है—बैंड-बाजे, घोड़ा, दूल्हा, फूलहार, मेहमान, उत्सव, मन्त्र, पूजा, हवन-यज्ञ—ये सब उपाय हैं ताकि पुरुष और स्त्री को यह पक्का हो जाए कि यह घटना कुछ ऐसी है कि इसको उलटाया नहीं जा सकता । कोई बड़ी महान घटना घट रही है ! यह मनोविज्ञान है । अगर शादी ऐसी ही कर दी जाए तो ज्यादा टिकेगी नहीं ।

मैंने सुना है, एक युवक और युवती एक चर्च में अमरीका में भागते हुए अन्दर पहुँचे । पादरी से उन्होंने कहा, 'जल्दी करो । ये जो दो आदमी खड़े हैं, ये गवाह हो जाएँगे । और यह तुम्हारी फीस लो, विवाह करवा दो ।'

पादरी ने कहा, 'देखो, तुमने कभी सुना नहीं कि जल्दबाजी का काम शैतान का'!

उन्होंने कहा, 'होगा, हमें फुर्सत नहीं, तुम जल्दी करो !'

तो पादरी ने कहा, 'ठीक है....।' उसने जल्दी उनकी शादी कर दी । उनके जाते वक्त उसको उत्सुकता हुई कि मामला क्या है ? इतनी जल्दी क्या है ? उन्होंने कहा, 'बाहर हम गलत जगह कार पार्क कर आये हैं ।'

अब ऐसी शादी कोई ज्यादा देर टिकेगी ! इतनी जल्दबाजी में की गयी, तो बंधन का आभास ही गहरा नहीं होता । इसलिए तो पश्चिम में तलाक बढ़ता जाता है । शादी का पूरा मनोविज्ञान टूट गया है । उसके आसपास की सारी व्यवस्था उखड़ गयी है । तो सच्चाई साफ हो गयी है कि हम दोनों का दिल साथ होने का, तो साथ हो गये; अलग होने का, तो अलग हो गये—बंधन कहाँ है ?

ध्यान रखना जिन-जिन बंधनों को तुमने बंधन माना है, वे मान्यता के हैं । मैं नहीं कहता कि सब बंधन तोड़ के भाग खड़े होओ । जाना कहाँ है भाग कर ? लेकिन जानते रहो की बंधन सब खेल हैं । पति रहो, पत्नी रहो, जहाँ पाया है अपने को, जहाँ खड़े हो वहीं रहो—लेकिन एक बात मन में साफ हो जाए कि सब बंधन व्यस्तता का खेल है । इससे हम अपने को भरते और भुलाते हैं । अकेला होना हमारा स्वभाव

है । साथ होना संयोग है ; अकेला होना, स्वभाव है । संसार संयोग है; कैवल्य स्वभाव है ।

'घर-परिवार में होते हुए भी मुझे लगता है, कोई अपना नहीं । मैं बिलकुल अकेली हूँ ।'

इस शुभ घड़ी का उपयोग कर लो । अकेली हो या अकेले हो, आनंद-भाव से छाती से लगा लो इस बात को । सब अशान्ति मिट जाएगी, सब बेचैनी मिट जाएगी । कौन अपना है ! अपेक्षा मिट जाएगी । कोई भी अपना नहीं है, फिर भी लोग इतना कुछ कर देते हैं तो अनुग्रह है ।

तुमने कभी खयाल किया, जिससे अपेक्षा होती है उसके प्रति अनुग्रह का भाव पैदा नहीं होता ! राह पे तुम जा रहे हो, तुम्हारा रूमाल गिर गया और एक राहगीर ने उठा के दे दिया, तुम बड़ा अनुग्रह अनुभव करते हो; तुम कहते हो, 'धन्यवाद ! शुक्रगुजार हूँ ! बड़ी आपने कृपा की !' लेकिन यही रूमाल तुम्हारी पत्नी उठा के दे दे या तुम्हारा पति उठा के दे दे, तो तुम शुक्रगुजारी करोगे ? तुम कहोगे धन्यवाद ? कोई कारण ही नहीं, क्योंकि यह तो तुम कहते हो अपनी है, अपना है; यह तो करना ही था; यह किया तो कौन-सी बड़ी बात की !

जिसको तुम अपना मान लेते हो, उससे अपेक्षाएँ हो जाती हैं । तो उसके कारण तुम दुखी तो होते हो, सुखी कभी नहीं होते । उसके कारण दुख होता है । जहाँ-जहाँ अपेक्षा टूटती है, वहाँ-वहाँ दुख होता है । लेकिन जहाँ-जहाँ अपेक्षा पूरी होती है, सुख नहीं होता ! तुम कहते हो, 'यह तो अपना है । इसमें कौन-सी बड़ी भारी बात हो गयी कि रूमाल उठा के दे दिया ?'

अकेला जो जीने लगा, वह धीरे-धीरे अनुभव करेगा सारे संसार के प्रति अनुगृहीत है । कोई यहाँ अपना नहीं है; फिर भी लोग बड़े प्यारे हैं, हाथ में हाथ दे देते हैं; कहते हैं, 'चलो, अँधेरे में साथ हैं !' कोई अपना यहाँ नहीं है, फिर भी लोग ढाढस बँधाते हैं, साहस बँधाते हैं ! कहते हैं, 'घबड़ाओ मत, हम तो हैं !'

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी तो वह खूब छाती पीट-पीट के रोने लगा । पास-पड़ोस के लोग आए, उन्होंने कहा, 'रोओ मत!' मगर वह चुप ही न हो । लोगों ने कहा कि 'मामला क्या है ? हमें तो यह पता भी न था कि तुम्हारा इतना प्रेम था इस स्त्री से, जिस तरह तुम रो रहे हो!' वह कहने लगा, 'इसलिए थोड़े ही रो रहे हैं...। अब पूछते हो तो बताए देते हैं । जब मेरी माँ मरी तो अनेक स्त्रियाँ आईं और कहने लगीं, हम तुम्हारी माँ हैं, कोई फिक्र न करो ! जब मेरे पिता मरे, अनेक बूढ़े आ गये ; कहने लगे, कोई फिक्र न करो, हम तुम्हारे पिता हैं ! अब कोई नहीं आता । रो रहे हैं इसलिए ।'

अनुभव करोगे तुम, अगर तुम्हारी अपेक्षा गिर जाए, कि जो भी थोड़ा-बहुत किसी ने कर दिया, वह भी न करता तो क्या करते ? कोई जबरदस्ती तो न थी । कोई माँग

और दावा तो नहीं हो सकता था। कोई कोर्ट-कचहरी तो नहीं की जा सकती थी।

'मैं बिलकुल अकेली हूँ'–इस भाव को गहन होने दो। यही तुम्हारा मंत्र हुआ। इसे दोहराओ, गद्गद् हो के दोहराओ कि मैं अकेली हूँ। और धीरे-धीरे इसका रस आने लगेगा, स्वाद जमेगा। इससे बड़ी स्फुरणा होगी। जिन-जिन से दुख मिलता था, उन-उन से दुख मिलना बंद हो जाएगा। और जिनसे कभी भी सुख मिलने की कोई आशा न थी, उससे भी सुख मिलने लगेगा। दृष्टि की बात है। लोग चारों तरफ बड़े प्रीतिपूर्ण मालूम होने लगेंगे, एक बार तुम्हारी अपेक्षा गिर जाए। तुम देखोगे, लोग भले हैं। और जैसे ही यह बात तुम्हारे भीतर गहरी बैठ जाए कि अकेलापन स्वभाव है, द्वार खुला! क्योंकि तुम विश्राम की अवस्था में हो जाओगे–लड़ाई बंद हो गयी। तुम नदी की धार में बहने लगे–तैरना बंद किया अब! और तुम पाओगे कि नदी की धार कितनी प्यारी है! कँधे पर बिठाये तुम्हें ले जा रही है सागरों तक!

यह अकेलेपन की लहर परमात्मा तक ले जाती है, यह अनंत सागर तक ले जाती है। लेकिन अभागे हैं लोग! जिससे जीवन में प्रकाश उतर आता है, उसी द्वार को बंद किये बैठे हैं! रोते-चिल्लाते हैं झूठे खिलौनों के लिए!

'साथ ही पाती हूँ कि बुढ़ापा आने लगा है और मैं रिक्त हूँ! रूखी-सूखी हूँ! प्रेम की एक बूंद भी मुझमें नहीं है!'

प्रेम को हम कुछ गलत ही ढंग से देखते रहे हैं। प्रेम कुछ ऐसा थोड़ी है जैसे कि बालटी में पानी भरा रखा है, कि हो तो पी लो, न हो तो क्या पियोगे! प्रेम कोई वस्तु थोड़े ही है, जैसे तिजोड़ी में धन रखा है; खोल लो, धन हाथ में आ जाता है। नहीं, प्रेम वस्तु नहीं है–प्रेम भाव है। यह कोई भरा थोड़े ही रखा है कि देने की मर्जी हुई तो दे दिया और न मर्जी हुई तो न दिया, और है ही नहीं तो देंगे कैसे! नहीं, प्रेम तो करने से आता है।

तुम अभी बैठे हो, चल नहीं रहे हो। अगर मैं तुमसे पूछूं कि तुम्हारी चलने की शक्ति का क्या हुआ, तुम कहोगे, 'सम्भावना है, शक्ति थोड़े ही है! अभी चलेंगे, चल पड़ेंगे! चलने लगेंगे तो चलने की शक्ति आ जाएगी। बैठे रहेंगे तो चलने का कोई कारण नहीं उठता।' तुम बैठे-बैठे यह तो नहीं कहते कि अब हम कैसे उठें, अब चलें कैसे, चलने की शक्ति कहाँ है, पहले इसका पक्का हो जाए!

चलना तो प्रक्रिया है। तुम चलो, उसी में पैदा होती है।

ऐसा ही प्रेम है; तुम प्रेम करो, उसी से पैदा होता है। ऐसा तो कोई है ही नहीं, जिसके प्रेम की संभावना न हो। लेकिन तुम प्रेम करते ही नहीं। हम प्रेम माँगते हैं, देते नहीं। हमको लगता है, भीतर तो हम खाली हैं, दूसरों से ले ले के भर लें अपनी मटकी। मगर दूसरे भी तुम्हारी ही दशा में हैं; वे भी तुमसे अपनी मटकी भर लेना चाहते हैं। यह होगा कैसे? मटकियाँ टकराएँगी, खटर-पटर शोरगुल मचेगा–जो

हर घर-गृहस्थी में मचा है। मटकियाँ टकरा रही हैं, बहुत बर्तन एक जगह रखो तो आवाज होगी ही।

प्रेम दान है। प्रेम कोई भिक्षा नहीं है कि किसी से माँग ली। और प्रेम कोई आज्ञा भी नहीं है कि किसी को दे दी कि करो प्रेम। और प्रेम कोई ऐसी चीज थोड़ी है कि तुम भीतर झाँक के देखोगे तो वहाँ लबालब भरा हुआ मिलेगा। दो–उस देने में ही लगता है, देने में ही पैदा होता है, करने से ही आता है।

अगर मैं तुमसे कहूँ कि 'चलो, नदी पर तैरना सीख लो, तुम कहोगे, मेरे पास तैरना तो है ही नहीं। तो मैं तुमसे कहूँगा, तुम घबड़ाओ मत! कौन तैरना है, किसके पास तैरना है! बड़े से बड़े तैराक से कहो कि निकालो दिखाओ तुम्हारा तैरना, तो वह भी कहेगा, चलो नदी, तैर के ही बताया जा सकता है। ऐसा कोई रखा हाथ में नहीं है, सन्दूक में बंद नहीं किया हुआ है कि गये और तुम्हें दर्शन करवा दिये।

प्रेम तैरने जैसा है। उतरो नदी में! और कभी भी देर नहीं हुई है। आखिरी क्षण तक, जब तक आखिरी श्वास आ रही है, तब तक भी प्रेम हो सकता है। हाथ-पैर पंगु हो गये हों, खाट पे लग गये हो, आखिरी सांस आ रही है, आँख खोल के तुम प्रेम से देख तो सकते हो किसी की तरफ। उसी में प्रेम पैदा हो जाएगा।

प्रेम की कला सीखो! यह कोई संपत्ति नहीं है, कला है। वृक्ष को देखो तो प्रेम से देखो, कैसा हरा है! कैसे फूल खिले हैं! जरा पास जाओ, वृक्ष को छुओ–और तुम पाओगे, भीतर कोई सोया था, जगने लगा! चाँद-तारों को देखो, पत्थर-पहाड़ों को देखो! सरोवर, सागरों को देखो! मगर प्रेम से! प्रेम तुम्हारी शैली हो जाए!

बहुत बड़ा कवि हुआ–मिलटन। किसी ने उसके संस्मरणों में लिखा है कि वह वस्तुओं को भी छूता था तो ऐसे जैसे उनमें व्यक्तित्व हो; जूता भी उतारता तो ऐसे प्रेम से भरपूर, जूते को भी धन्यवाद देता। देना चाहिए। कितने काँटों से नहीं बचा लिया है! जूते का बड़ा उपकार है! तुम आते हो, जूता ऐसा फेंकते हो जैसे एक झंझट मिटी। तुम्हारी दृष्टि में, तुम्हारे होने के ढंग में भूल है। अब तुम कहोगे, प्रेम है नहीं तो हम कैसे जूते को प्रेम से उतारें! मैं कहता हूँ, तुम प्रेम से उतार के देखो, तुम प्रेम को पाओगे! तुम कहते हो, प्रेम होगा तो हम प्रेम करेंगे! मैं कहता हूँ, प्रेम करोगे तो प्रेम होगा! शुरू करके देखो! किसी का भी हाथ हाथ में ले के देखो!

एक एयर होस्टेस, एक परिचारिका मुझे कह रही थी। एक बूढ़ी महिला हवाई जहाज पर चढ़ी, पहली दफा! और उस परिचारिका ने देखा कि वह बहुत घबड़ा रही है, नर्वस है, कँप रही है। पहली दफा अनुभव था। बूढ़ी महिला! तो वह परिचारिका उसके पास गयी, उसकी कुर्सी पे बैठ गयी, उसके सिर को अपने हृदय से लगा लिया। तब तक जहाज ऊपर उठ गया, सब व्यवस्थित हो गया। धक्के आने बंद हो गये। इंजन संगीतपूर्ण रूप से चलने लगे। सब थिर हो गया। तो वह परिचारिक

उठी । और जब वह जाने लगी तो बूढ़ी ने कहा, 'बेटी ! जब तुझे फिर डर लगे तो आ जाना !'

जब तुम किसी को प्रेम देते हो, तब अनायास दूसरी तरफ से भी प्रेम बहने लगता है। सुलगाओ कहीं से भी सुलगाओ चिंगारी । लपटें फिर दूसरों में फैलती चली जाती हैं ! तुमने कभी किसी मकान में आग लगी देखी ! एक मकान में आग लगती है, सारा पड़ोस घबड़ा जाता है, क्योंकि लपटों का क्या भरोसा, फैलने लगती हैं । हवा पे सवार हो के छलाँग लेती है लपट और दूसरे मकान को पकड़ लेती है ।

प्रेम भी आग है । तुम ज़रा जलाओ ! तुम ज़रा चिंगारी उठाओ ! और सब तरफ से तुम्हारी लपट को बढ़ाने के उपाय होने लगेंगे । तुम जो करते हो, संसार उसी में तुम्हारा साथी हो जाता है । अब अगर तुम्हीं थके-माँदे बैठे हो कि कैसे चलना होगा, कैसे प्रेम करना होगा—है ही नहीं ! कौन ले के आया है ? जन्म के साथ कोई प्रेम की तिजोड़ी साथ ले के आता है ? संभावना ले के आता है । संभावना सभी की है और आखिरी श्वास तक है ।

मैंने सुना है, एक आदमी राह से गुज़रता था और एक भिखमंगे ने उसके सामने हाथ फैलाए । बूढ़ा, अंधा दुर्बल ! उस आदमी ने जल्दी से खीसे में हाथ डाले, लेकिन वह अपना बटुआ तो घर ही भूल आया था । तो वह बड़ा मुश्किल में पड़ गया । वह पास बैठ गया, उसने बूढ़े का हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा, 'बाबा ! खीसे में कुछ है नहीं, बटुआ मैं घर भूल आया ।' उस बूढ़े ने कहा, 'छोड़ो भी ! बटुए और खीसे की बात क्या ? तुमने मुझे इतना दिया हाथ हाथ में ले कर, जितना कभी किसी ने मुझे नहीं दिया । जब कभी यहाँ से गुजरो, क्षण भर को अपना हाथ मेरे हाथ में दे देना, बस बहुत है !'

कौन किसी भिखमंगे का हाथ हाथ में लेता है ! कोई पैसे ही देने की थोड़ी बात है—भाव की बात है !

जहाँ तुम्हें प्रेम करने का अवसर मिले, चूकना मत; नहीं तो चूकने की आदत मजबूत हो जाती है । अगर ज्यादा चूकते रहे तो चूकना तुम्हारा ढंग हो जाता है । प्रेम का रास्ता तब असंभव है । और हम जगह-जगह चूकते हैं ।

प्रत्येक घड़ी को प्रेम की घड़ी बनाओ ! कोई प्रेम के लिए परमात्मा ही उतरेगा आकाश से तब तुम प्रेम करोगे ! तो जिस दिन परमात्मा उतरेगा उस दिन पाओगे कि प्रेम करना तो तुम जानते ही नहीं । इसका अभ्यास करो ! जो मिल जाए, घड़ी भर का साथ हो जाए रास्ते पर किसी से, फिर तो रास्ते अलग हो जाएँगे, कोई गीत आता हो, गुनगुना के सुना दो ! कुछ न आता हो, आँख तो तुम्हारे पास है, प्रेम से गीली आँख से उसे देख लो ! तुम उसके सपनों के हिस्से हो जाओगे । वह तुम्हारी याद करेगा, लौट-लौट के तुम्हारी याद करेगा । और जब-जब तुम्हारी याद करेगा

भीतर तुम्हारे प्राणों में भी अज्ञात तार कँपेंगे; क्योंकि हम सब जुड़े हैं । हम अलग-अलग नहीं हैं ।

प्रेम को फैलाओ !

प्रेम के संबंध में तुम बहुत कंजूस हो । लेकिन लोग समझते हैं, शायद यह कंजूसी बड़ी कीमत की है ।

मैंने सुना है, एक बहुत धनवान स्त्री एक होटल में पहुँची । पाँच-सात कारें सामान लदा हुआ ! सब सामान नौकर-चाकरों ने उतारा । लेकिन एक कार में उसका बेटा बैठा है, उम्र होगी कोई तेरह-चौदह साल । और तब उसने कुलियों को और बुलाया कि उतारो मेरे बेटे को । तो एक कुली ने पूछा कि 'क्या अपंग है बेटा ? यह तो बिलकुल स्वस्थ मालूम पड़ता है । चल नहीं सकता ?' उस बूढ़ी ने कहा, 'चल सकता है, लेकिन उसे चलने की ज़रूरत नहीं, हमारे पास सब सुविधा है । चल सकता है, चलने की कोई जरूरत नहीं । हम कोई गरीब नहीं हैं ।'

दो कुली उस स्वस्थ लड़के को कंधे पे उठा के ले गये ।

चलना भी गरीबों का काम है ! कोई अमीर कहीं चलते हैं !

ऐसी ही भ्रांतियाँ हैं । प्रेम—हम सोचते हैं, कभी करेंगे! लेकिन जब तक प्रेम न करोगे तब तक क्या करोगे ? कुछ तो करोगे ! उस करने का अभ्यास प्रगाढ़ हो जाएगा । प्रेम में न होने की आदत मजबूत अगर हो गयी, तो मुश्किल होगी । प्रेम कोई रूखा-सूखा नहीं होता; सिर्फ गलत आदतें . . . . ।

अभी भी देर नहीं हुई ।

. . . 'पाती हूँ, बुढ़ापा आने लगा और मैं रिक्त हूँ ।'

अभी भी देर नहीं हुई । अभी भी आँख को गीला करो । अभी भी गीत को उठने दो । हमेशा प्रेम का उपाय है । और इतने लोग प्रेम के लिए भूखे और प्यासे हैं. . . ! कोई भी अवसर मिले, एक बात ध्यान रखो कि कैसे उसे हम प्रेम देने का अवसर बनाएँ ।

बुढ़ापा आता है, सभी का आता है । उससे घबड़ाओ मत ! बुढ़ापे को समझ बनाओ । क्योंकि बच्चे अबोध हैं, उन्हें कोई अनुभव नहीं; भोले-भाले हैं, लेकिन अनुभव-रिक्त हैं । उनका भोला-भालापन तो खत्म होगा, खराब होगा । वे तो उठेंगे, जिंदगी में जाएँगे । और जिंदगी व्यभिचारी है । वे बिगड़ेंगे । बिगड़ना ही पड़ेगा । वह बिगड़ना जरूरी पाठ है ।

फिर जवान हैं । जवानों का मन तो बहुत-सी उत्तेजनाओं से भरा है । बहुत कुछ कर लेने का उनके दिमाग में फितूर है । जवानी एक फितूर है । जवानी एक विक्षिप्तता है, एक जोश, एक जुनून । तो अभी तो वे आकाश में उड़ रहे हैं । जवान, अभी उनके पैर जमीन से नहीं लगते । लगेंगे उनके पैर । क्योंकि जल्दी ही पता चलेगा, जवानी तो एक बुखार थी, आयी और गयी; एक उत्तेजना थी, एक उत्ताप था;

हम नाहक ही उसमें भूल बैठे; अपने को कुछ का कुछ समझ लिया।

मैंने सुना है कि एक लोमड़ी सुबह-सुबह निकली, सूरज के उगते प्रकाश में उसकी बड़ी छाया बनी—लम्बी छाया ! उसने छाया की तरफ देखा और कहा, आज तो नाश्ते के लिए कम से कम एक ऊँट की जरूरत पड़ेगी—इतनी बड़ी हूँ ! दिन भर खोजती रही, दोपहर हो गयी, कुछ मिला नहीं। सूरज सिर पे आ गया। उसने फिर देखा अपनी छाया की तरफ, वह सिकुड़ के बड़ी छोटी हो गयी। उसने कहा, अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो भी काम चलेगा !

जवानी तो एक नशा है; छाया बड़ी लम्बी मालूम होती है। हर आदमी सिकंदर होना चाहता है। हर जवान सिकंदर होने के सपने देखता है। वह सपनों का समय है।

बुढ़ापा बड़ा बहुमूल्य है; बच्चों जैसा अनुभवहीन नहीं है, सारा अनुभव हो गया; जवानों जैसी विक्षिप्तता नहीं है ! वह जोश-खरोश, वह पागलपन गया ! चीजें ज्यादा थिर हो गयी हैं। दृष्टि ज्यादा थिर हो गयी हैं। समझ गहरी हुई है। इसका उपयोग करो।

बुढ़ापा सुन्दर है—जवानी से ज्यादा। तभी तो परमात्मा जवानी के बाद बुढ़ापा देता है; वह ऊपर की सीढ़ी है। जवानी के अनुभव के बाद बुढ़ापा देता है; उसकी श्रेणी बहुत ऊँची है। बुढ़ापे के लिए तैयार होओ। उसका उपयोग करो।

लेकिन तकलीफ क्या खड़ी होती है, कि बूढ़े तुम हो जाते हो, लेकिन खोपड़ी में जवानी के सपने भरे रहते हैं। तो अड़चन होगी। अब अगर एक बूढ़ा व्यक्ति ऐसे प्रेम की आशा करता हो जैसा जवान को मिलता है, तो वह अड़चन में पड़ेगा। बूढ़े आदमी को और सौम्य प्रेम के मार्ग खोजने पड़ेंगे। उत्तेजना से भरे हुए नहीं। उसे वात्सल्य को जगाना पड़ेगा। उसका प्रेम वात्सल्य होगा। उसके प्रेम में करुणा होगी, शीतलता होगी; शोरगुल नहीं होगा, शांति होगी। उसका प्रेम करुणा जैसा होगा।

बुढ़ापे से घबड़ाओ मत। वह तो इस जिंदगी का आखिरी सोपान है; उसके बाद ही तो परम घड़ी आती है मृत्यु की।

घबड़ाओ मत कि बुढ़ापा आ गया, अब क्या होगा ! क्योंकि इस जीवन का नियम कुछ ऐसा है—

मत बन साँस अधीर, सहारा
कोई और मिलेगा
रो मत मृदुल समीर, दुआरा
कोई और खुलेगा
प्रभु-पूजा का दीप, देह का
यह उपमान बहुत है

गंगाजल कहलाएँ आँसू
यह सम्मान बहुत है
गा प्रभात का गीत, भीत हो
अंधियारा पिघलेगा।
मत बन साँस अधीर, सहारा
कोई और मिलेगा
रो मत मृदुल समीर, दुआरा
कोई और खुलेगा।

एक दरवाजा बंद हुआ नहीं कि दूसरा खुला नहीं ! जवानी गयी तो बुढ़ापा आया ! बचपन गया तो जवानी आयी ! एक दरवाजा बंद होता है, दूसरा खुल जाता है। यह जन्म गया, दूसरा जन्म आया ! यह जीवन गया, दूसरा जीवन आया ! अंत तो है ही नहीं—यात्रा अनंत है। घबड़ाओ मत ! मौत भी दरवाजों को बंद नहीं करती, नये दरवाजे खोलती है। और अगर तुम बुढ़ापे से राजी हो गये, तो तुम मौत से भी राजी हो जाओगे। बुढ़ापे से तुम राजी इसीलिए नहीं होते कि बुढ़ापा मौत की पगध्वनि है। बुढ़ापा कहता है, मौत आने लगी ! बुढ़ापा कहता है, सँभलो; कब्र पास आने लगी ! बुढ़ापा कहता है, अब मौत के सिवाय कुछ भी न बचा, बस अब मौत ही है, मौत ही है।

लेकिन मृत्यु एक द्वार है : इस तरफ बंद होता है जीवन, उस तरफ खुलता है। घबड़ाओ मत, जीवन की यात्रा अनंत है। इस अनंत यात्रा में बहुत बार तुम बच्चे हुए, बहुत बार जवान हुए, बहुत बार बूढ़े हुए, बहुत बार मरे—मर-मर के भी कहाँ मर पाते हो ! जीवन बचता ही चला जाता है। हजारों मौतें पार कर लेता है और बचता चला जाता है। जीवन शाश्वत है, अमृत है।

ध्यान रखो, तुम न बूढ़े होते हो, न तुम जवान होते हो, न तुम बच्चे होते हो। तुम्हारे भीतर कोई समयातीत है, कालातीत है। तुम्हारे भीतर कोई अशरीरी है। ये सारे लक्षण तो शरीर के हैं—बचपन, जवानी, बुढ़ापा ! यह तो सब मन का और तन का ही जाल है, और इसके भीतर छिपे तुम हो—निष्कलुष ! निराकार ! निस्सीम ! निर्गुण !

एकान्त को साधो ! ताकि तुम्हें अपना पता चलने लगे, तुम कौन हो ! अमृत ! और घबड़ाओ मत ! ऐसे बहुत घर पहले छोड़े हैं।

यह एक और घर
पीछे छूट गया
एक और भ्रम
जो जब तक था मीठा था
टूट गया

कोई अपना नहीं है कि
केवल सब अपने हैं;
हैं बीच-बीच में अन्तराल
जिनमें है झीने जाल
मिलाने वाले कुछ, कुछ दूरी और दिखाने वाले
पर सच में
सब सपने हैं ।
यह एक और घर
पीछे छूट गया
एक और भ्रम
जो जब तक था मीठा था
टूट गया !

पर घबड़ाओ मत ! रो मत मृदुल समीर, दुआरा कोई और खुलेगा, दुआरा कोई और खुलेगा !

'मैं पैर से थोड़ी अपाहिज हूँ और शिविर में नृत्य करना कठिन होता है ।'

नृत्य कोई शरीर की बात ही तो नहीं है—नृत्य तो आंतरिक घटना है । आत्मा तो कभी भी अपाहिज नहीं । तुमने कोई आत्मा देखी जो अपाहिज हो ? नहीं शरीर नाच सकता, फिक्र छोड़ो—आँख बंद करो, तुम तो नाचो ! तुम्हारे नाचने में शरीर क्या बाधा डालेगा ? तुम्हारे होने में शरीर क्या बाधा डालेगा ?

नृत्य तो एक भावभंगिमा है—प्रफुल्लता की, उत्सव की ! जब कोई भक्त चलता है तो उसके चलने में भी नृत्य होता है । अभक्त नाचे भी, तो भी नृत्य कहाँ, शरीर की ही उछल-कूद होती है । उछल-कूद थोड़े ही नृत्य है ।

माना, शरीर वृद्ध हुआ, अब नाच न सकोगे, छोड़ो ! लेकिन भीतर कौन रोक सकता है ?

अल्बर्ट कामू ने लिखा है कि तुम मुझे कारागृह में डाल सकते हो, मेरे हाथों में जंजीरें पहना सकते हो—लेकिन तुम मुझे बंदी न बना सकोगे । जंजीरें हाथ पर ही होंगी, मुझ पर न होंगी ।

तुम पर कौन जंजीर डाल सकता है ? यह शरीर के साथ तादात्म्य बहुत ज्यादा है, इसलिए ऐसी अड़चन आती है । तुम सोचते हो, नाचेंगे कैसे, शरीर तो अपाहिज है !

मेरी एक संन्यासिनी लंदन के अस्पताल में पड़ी है । भयंकर कार दुर्घटना हुई । कोई पैंतीस फ्रेक्चर सारे शरीर में हुए । चिकित्सकों का खयाल है कि ठीक भी हो जाएगी, तो भी अब सामान्य न हो पाएगी । सभी कुछ टूट-फूट गया है भीतर । सिर्फ सिर को छोड़ के—सिर भर साबित है—बाकी सारा शरीर खंड-खंड हो गया है ।

सारे शरीर पर पलस्तर बंधा हुआ है । उसने मुझे लिखा कि मैं क्या करूँ । उसे नटराज ध्यान बड़ा प्यारा था । जब वह यहाँ आयी थी तो दिल खोल के नाची थी । तो मैंने उसे लिखा कि इससे क्या फर्क पड़ता है, यह तो एक और सुगम अवसर मिला । चौबीस घंटे बिस्तर पर हो, आँख बंद कर लो—और नाचो ! नाचने का भाव करो । स्वप्न देखो नाचने का ।

वही चकित नहीं हुई, उसके चिकित्सक भी चकित हुए । क्योंकि जिस दिन से उसने भीतर का नृत्य शुरू किया है, उसकी बाहर की शिकायतें भूल गयी हैं । वह उस अस्पताल में सबसे ज्यादा शांत हो गयी है । और उसने खबर भेजी है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि शरीर जल्दी भर रहा है, ठीक हो रहा है ।

वह जो कल्पना का आन्तरिक नाच है, वह सहयोगी बनेगा । भीतर जो घटता है उसके परिणाम शरीर पर आते हैं । शरीर पर जो घटता है, जरूरी नहीं है कि परिणाम भीतर जाएँ । तुम नाच सकते हो बाहर से, भीतर कुछ भी न हो ! लेकिन अगर भीतर नाच हो तो बाहर परिणाम होते हैं; क्योंकि केन्द्र पर जो घटता है उसकी तरंगें परिधि तक पहुँच जाती हैं । केन्द्र मूल है ।

नाचो ! नाचने में शरीर से कोई बाधा नहीं है । गाओ ! गूँगा भी गा सकता है । दूसरे न सुन पाएँगे, यह बात जरूर सच है; लेकिन इससे गाने में क्या बाधा पड़ती है ? नाचो, लंगड़ा भी नाच सकता है । दूसरे न देख सकेंगे तुम्हारा नाच, लेकिन तुम तो देख ही सकोगे । असली बात वही है ।

तुम्हारा जीवन के प्रति दृष्टिकोण उत्सव का हो जाए । तुम इस जीवन को बोझ की तरह न ढोओ । इस जीवन में तुम ऐसे न चलो जैसे जबरदस्ती किसी ने पत्थर तुम्हारे सिर पर रख दिये हैं । बस नाच का इतना ही अर्थ है ।

'घर वाले आपको विशेष पसंद भी नहीं करते हैं ।'

कैसे करेंगे ? क्योंकि यह नाता कुछ ऐसा है, बाकी सब नातों को पोंछ डालता है । इसलिए घर वाले किसी के भी पसंद नहीं करेंगे । एक प्रतियोगी आ गया ! और कुछ ऐसा प्रतियोगी कि अब उनके बस चलाए न चलेगा । मेरे प्रेम में अगर तुम पड़े तो तुम्हारा पूरा परिवार बेचैनी अनुभव करेगा । क्योंकि हम सबका दृष्टिकोण ऐसा गलत है...।

समझो ! कामवासना का एक अर्थशास्त्र है—वह अर्थशास्त्र यह है कि प्रेमी-प्रियजन नहीं चाहते की संख्या बढ़ती जाए, क्योंकि फिर प्रेम बँटेगा तो भाग कम-कम पड़ेंगे । एक ही बेटा हो तो पूरी माँ उसे उपलब्ध है; फिर दस बेटे हों तो माँ दस हिस्सों में बँट जाती है । एक ही बेटा हो तो पूरा प्रेम का मालिक था । दस बेटे हैं—प्रेम कट जाता है । लेकिन यह प्रेम ही नहीं है । इसको मैं कामवासना कहता हूँ; यह कामवासना का अर्थशास्त्र है । क्योंकि जितने ज्यादा दावेदार होंगे उतनी ही पूंजी बँटती चली जाएगी । एक बाप के दस लड़के हैं, पन्द्रह लड़के हैं, जब मरेगा तो सम्पत्ति टुकड़ों

में बँट जाएगी, खेत के पन्द्रह टुकड़े हो जाएँगे । अगर एक ही बेटा होता, सबका मालिक हो जाता ।

यह काम का अर्थशास्त्र है कि बाँटने से चीजें कम होती हैं । इसलिए जितने भी काम के संबंध हैं वे हमेशा भयभीत होते हैं कि कहीं और नये संबंध न बन जाएँ । पत्नी देखती रहती है कि पति किसी स्त्री से दोस्ती तो नहीं बढ़ा रहा है, कोई दोस्ती तो नहीं बढ़ा रहा है ! झाँकती रहती है किनारों से, कि रास्ते पे किसी को देख के हँसा तो नहीं !

मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी के साथ बाजार से गुजर रहा था । एक बड़ी सुन्दर युवती ने हाथ हिला के मुल्ला को कहा, 'हॅलो !' घबड़ा गया मुल्ला ! वह तो देख ही नहीं रहा था उस तरफ ! पत्नी के साथ पति जब चलता है, इधर-उधर नहीं देखता । तब वह ऐसे चलता है जैसा बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा था कि बस, चार कदम . . . . जमीन चार कदम देख के चलना, इससे ज्यादा में खतरा है !

पत्नी तो ठिठक के खड़ी हो गयी । उसने कहा, 'क्या मामला है ? यह कौन है स्त्री ? इससे क्या नाता है ?' नसरुद्दीन ने कहा, 'कोई नाता नहीं है, व्यावसायिक संबंध है ।' पत्नी ने कहा, 'किसका व्यवसाय–तुम्हारा या उसका ?'

पत्नी घबड़ायी है, कहीं कोई सौत न जन्म जाए, कहीं कोई प्रतियोगी न आ जाए ! पति घबड़ाया हुआ है कि कहीं पत्नी किसी और के प्रति भी प्रेम को न बढ़ाने लगे ! अन्यथा, धारा कटेगी तो मेरे पल्ले कम पड़ेगा ।

यह कामवासना का अर्थशास्त्र है । प्रेम का इससे कोई संबंध नहीं है, क्योंकि प्रेम की तो खूबी यह है कि जितना बाँटो उतना बढ़ता है । प्रेम का अर्थशास्त्र तो यह है कि तुम जितना ज्यादा प्रेम करोगे उतना ही तुम्हारे प्रेमियों को ज्यादा मिलेगा ।

अब इसे थोड़ा समझना ।

अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को ही प्रेम करता है, और संसार में उसके कोई प्रेम-संबंध नहीं हैं, न मित्रों से, न किसी से, कोई नाता नहीं है, मैत्री का तो पत्नी के पास तुम कितनी देर बैठोगे ? चौबीस घंटे ? दुकान भी करनी है, बाजार भी करना है । पत्नी के लिए हीरे-जवाहरात भी चाहिए, वे भी लाने हैं, बड़ा मकान भी बनाना है । घड़ी आधा घड़ी तुम पत्नी के लिए निकाल पाते हो, साढे तेईस घंटे तो तुम कहीं और रहोगे । उन साढ़े तेईस घंटों में तुम न तो किसी की तरफ प्रेम से देखते, न किसी का हाथ प्रेम से हाथ में लेते, तो प्रेम की तुम्हारी आदत हो जाएगी । और आधा घंटा जब तुम पत्नी के पास रहोगे, तब भी तुम पास रहोगे नहीं । तुम्हें प्रेम करना ही भूल गया । यह तो ऐसे ही हुआ कि पत्नी कहे कि जब तुम मेरे पास रहो तभी साँस लेना; साढ़े तेईस घंटे कहीं साँस मत लेना; यह तो हद हो गयी कि मेरे बिना और तुम सांस ले रहे थे ! तो जब पति घर तक आएगा, आएगा नहीं कंधों पे लाया जाएगा, अर्थी सज जाएगी ! यही हो रहा है ।

फिर जब तुम किसी को भी प्रेम नहीं कर पाते, जब तुम्हारा प्रेम सहज स्वभाव नहीं होता तो पत्नी से भी प्रेम होता नहीं, सिर्फ दिखावा होता है–और एक दुष्टचक्र पैदा होता है । क्योंकि पत्नी अनुभव करती है कि प्रेम मुझसे नहीं तो जरूर कहीं और होगा । वह और भी जाल फैलाती है, और पुलिस सिपाही लगाती है । वह सब तरफ से तुम्हें बंद कर लेना चाहती है, कहीं तुम और न दे आओ । और जितना ये पुलिस, पहरे लगते हैं, उतनी ही तुम्हारी साँस घुटने लगती है, प्रेम मरने लगता है ।

प्रेम का अर्थशास्त्र काम के अर्थशास्त्र से बिलकुल उलटा है । प्रेम कहता है : बाँटो । तुम जितना बाँटोगे उतना ही तुम जो तुम्हारे पास है उनको ज्यादा दे सकोगे ।

मेरे पास जब तुम आते हो तो तुम्हारे लिए जो एक महाघटना है, तुम्हारे परिवार की दृष्टि में दुर्घटना होगी । होगी ही । क्योंकि यह कोई साधारण प्रेम नहीं है । यह प्रेम कुछ ऐसा है कि तुम्हारा सारा परिवार बेचैन हो जाएगा, कि यह तो व्यक्ति हाथ से गया, अपना न रहा । जितना तुम्हारे मन में मेरी धुन बजेगी उतना ही वे पाएँगे कि फासला बढ़ा जा रहा है । वे सब बाधा खड़ी करेंगे, सब तरह का उपद्रव खड़ा करेंगे । वे हज़ार तरह की बातें करेंगे, तर्क देंगे । मैं उन्हें दुश्मन जैसा मालूम होने लगूँगा । लेकिन यह स्वाभाविक स्थिति है । उससे चिंता मत लेना ।

एक ही बात खयाल रखना कि जब से मेरे प्रेम में पड़ो, तब से अपने प्रियजनों को और भी ज्यादा प्रेम करना, बस इतना ही तुम कर सकते हो । मेरे प्रेम के कारण कमी मत पड़ने देना, कहीं अन्यथा उनका भय सच हो जाएगा । मेरे प्रेम के कारण तुम्हारा प्रेम बढ़े तो कितनी देर तक वे अपने भय को पाल के रख सकेंगे, आज नहीं कल उनकी आँख खुलेगी; आज नहीं कल वे देखेंगे कि यह माँ थी, और भी ज्यादा प्यारी हो गयी, पत्नी थी और भी ज्यादा प्यारी हो गयी; इतनी तो इसने देख-भाल कभी न की थी । संबंध तुम्हारा और भी रसपूर्ण हो जाए तो वही प्रमाण होगा कि वे गलती पे थे, तुम ठीक थे । लेकिन कहीं ऐसा न हो कि तुम भी उनकी भूल को सही सिद्ध करने वाले हो जाओ, ताकि वे पीछे कहें, हमने पहले ही कहा था !

मैं किसी को किसी से तोड़ने को यहाँ नहीं हूँ । मेरा तो सारा पाठ ही प्रेम का है–और प्रेम यानी जोड़ना । तो तुम अगर पति हो, तो और भी प्रेमपूर्ण पति हो जाना । तुम्हारा संन्यास तुम्हारे पति होने में किसी तरह की कमी न करे । तुम अगर पत्नी हो तुम पति के प्रति और भी लगाव से भर जाना । अपने स्नेह को चारों तरफ बरसा देना । अपने प्रेम के फूल पति के चारों तरफ उगा देना । तो तुम पति को भी ले आओगे मेरे पास । क्योंकि तब उसे एक नया अर्थशास्त्र दिखायी पड़ेगा जो प्रेम का है, काम का नहीं ।

कामवासना वही क्षुद्र प्रेम है जो बाँटे बँट जाता है, छोटा हो जाता है । प्रेम की संपदा तो अपार है ।

उपनिषद कहते हैं, उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें, तो भी पूर्ण ही पीछे

शेष रह जाता है। यह प्रेम का ही वक्तव्य है। प्रेम घटता ही नहीं, बाँटे बाँटे बढ़ता है; जितना उलीचो, बढ़ता है! कबीर ने कहा, है, दोनों हाथ उलीचिए! कंजूसी उलीचने में मत करना।

'और आपको सुन कर आँसू बहते हैं।'

अच्छा है। कुछ लोग हैं जिनको मुझे सुन के विचार चलते हैं। उससे यह लाख गुना बेहतर है कि मुझे सुन के आँसू गिरते हैं। साफ है कि मेरी बात तुम्हारे हृदय तक पहुँची, तुमने मुझे सुना। चिंता मत करो। आँसुओं के कारण हम चिंतित हो जाते हैं, क्योंकि हमें सिखाया ही यह गया है कि आँसू तो दुख में आते हैं। तो किसी को तुम रोता देखते हो, तुम्हें यही खयाल आता है कि 'बेचारा, बड़ा दुखी! अन्यथा रोएगा क्यों?'

तुम्हें पता ही नहीं है कि आनंद में भी आँसू आते हैं। आँसुओं का कोई संबंध दुख-सुख से नहीं है; आँसुओं का संबंध तो किसी भी ऐसी भाव-दशा से है, जो इतनी ज्यादा हो जाती है कि तुम बरस पड़ते हो, तुम उसे सम्हाल नहीं पाते। जैसे मेघ भर गया जल से तो बरसेगा। फूल भर गया सुगंध से तो सुगंध फैलेगी। दीया जलेगा तो रोशनी बँटेगी।

ध्यान रखना कि आँसू तो तुम्हारे भीतर के किसी अतिरेक की खबर लाते हैं; दुख हो कि सुख, इससे कोई संबंध नहीं है। लेकिन चूँकि आदमी दुख में ही रोता है—खुशी में तो रोने की बात दूर, लोग खुशी में हँस तक नहीं पाते। खुश होना भूल ही गये हैं हम। हम प्रसन्न होने की भाषा ही भूल गये हैं।

आँसू अगर मुझे सुन के आते हैं—मंगलदायी है! प्रभु की कृपा है, प्रसाद है! उन आँसुओं को रोकना मत! उनको बहने देना। उन आँसुओं में बहुत कुछ कूड़ा-कर्कट तुम्हारा बह जाएगा। तुम पीछे ताजा अनुभव करोगे; जैसे स्नान हो गया हो। आँखों से कंजूसी मत करना। बहने दो आँसुओं को। ये आँसू भीतर उठती किसी रसधार की खबर हैं। बस इतना ही खयाल रहे कि इन आँसुओं को अपनी मस्ती बनाना, आनंद और अहोभाव से। यही तुम्हारी प्रार्थना है। अगर कोई ठीक से रोना ही सीख ले तो कुछ और नहीं चाहिए; क्योंकि रोते-रोते ही हँसना आ जाता है।

'और कुछ सूझता नहीं, क्या करूँ?'

रोओ! आँसू से बड़ी और प्रार्थना कहाँ है! हृदयपूर्वक रोओ! आँसू निखारेंगे तुम्हें, बुहारेंगे तुम्हें; जो व्यर्थ है वह फिंक जाएगा, जो सार्थक है वह स्फटिक की भाँति स्वच्छ हो कर भीतर जगमगाने लगेगा।

'और भगवान! क्या मेरे लिए आशा की कोई किरण सम्भव है?'

पूरा सूरज देने की यहाँ तैयारी है, किरणों की बात ही नहीं है। मुझको कंजूस समझा है?

दूसरा प्रश्न : भगवान! नास्तिक व साम्यवादी विचारों से प्रभावित होने के कारण मैं ईश्वर और आत्मतत्त्व को नकारता रहा। फिर आपका साहित्य पढ़ा तो तर्क-बुद्धि काम न पड़ी और यहाँ आ गया। अब आपको सुनने और ध्यान करने से अज्ञात के प्रति आस्था जगने लगी है और संन्यस्त होने का जी कर रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं नये परिवेश से सम्मोहित हो गया हूँ।

नास्तिकता ठीक-ठीक तैयारी है आस्तिकता की। जो नास्तिक न हुआ वह कभी आस्तिक भी न हुआ। जो ठीक से नास्तिक हुआ वह आस्तिक हुए बिना रह न सकेगा। जहाँ नास्तिकता पूर्ण होती है वहीं आस्तिकता शुरू होती है।

इसलिए पहली बात : ऐसा मत सोचो कि पहले तुम नास्तिक थे और अब तुम कुछ विपरीत दिशा में जा रहे हो। नहीं, तुम्हारी नास्तिकता ही तुम्हें मेरे पास ले आयी है। यह मेरा अनुभव है हजारों लोगों पर काम करने के बाद, कि जो अपने को आस्तिक समझते हैं, वे करीब-करीब थोथे लोग हैं। और उनके साथ बड़ी मुश्किल होती है। उनका विकास बड़ा कठिन होता है। क्योंकि जो वे नहीं हैं वह उन्होंने अपने को मान रखा है, एक झूठ को पकड़ रखा है। यह तो ऐसे ही है जैसे बीमार आदमी समझता हो कि मैं स्वस्थ हूँ। अब इसका इलाज कैसे करोगे? वह हाथ ही न रखने देगा। वह नाड़ी भी न पकड़ने देगा। वह कहेगा, मैं बीमार ही नहीं हूँ। बीमार अगर जान ले कि मैं बीमार हूँ तो ही इलाज हो सकता है।

करोड़ों आस्तिक हैं जो सोचते हैं कि आस्तिक हैं, पर आस्तिकता का अभी उन्हें कोई पता ही नहीं चला है। उधार आस्तिकता है—और धर्म उधार नहीं है। धर्म बड़ी नगद घटना है।

तो जिनको मैं पाता हूँ कि वे नास्तिक हैं, मेरे पास आते हैं तो मैं प्रसन्न होता हूँ। उन्होंने आधी यात्रा तो खुद ही पूरी कर ली है। थोड़े ही धक्के की जरूरत है, वे आगे निकल जाएँगे।

आस्तिक की भूल यह है कि वह अपने को आस्तिक बिना हुए आस्तिक समझता है। और नास्तिक की अगर कोई भूल हो सकती है तो वह एक कि नास्तिकता में ही अटक जाए और सोचने लगे कि बस सब जान लिया, अब कुछ जानने को नहीं है।

जिन मित्र ने पूछा है, उनका हृदय खुला है, इसलिए मेरे पास आ सके। लेकिन अब थोड़ी और हिम्मत जुटाने का सवाल है। मेरी बात में रस आना एक बात है और मेरे रस को पकड़ के छलाँग लगा लेना, रूपान्तरण करना बड़ी दूसरी बात है। मुझे सुन लेना अच्छा लगेगा। उतने से काम न होगा। मैं जो कह रहा हूँ जब तक तुम्हारा दर्शन न बन जाए, मैं जो बता रहा हूँ जब तक तुम न देख लो, जब तक तुम्हारा अनुभव भी मेरी गवाही न देने लगे—तब तक मन सन्देह उठाएगा, मन कहेगा 'बात अच्छी तो लगती है, पता नहीं ठीक है या नहीं! स्वादिष्ट तो लगती है,

लेकिन स्वास्थ्यप्रद है या नहीं ! फिर कौन जाने, कहीं सम्मोहन तो नहीं हो गया !

इतने गैरिक वस्त्रों में लोग—निश्चित ही एक परिवेश बनता है। उनकी मस्ती, उनका नाचना, उनके जीवन में आयी ताजगी, तुम्हें भी लुभायमान करने लगती है, लुभाती है। फिर ध्यान, फिर मुझे सुनना—ये सतत चोटें ! तो मन कहेगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि सम्मोहित हो गये हो !

लेकिन जरा इस मन से पूछो, जब यह मन नास्तिक हुआ था और जब यह कम्यूनिस्ट हुआ था, तब इसने तुमसे कहा था कि कहीं ऐसा तो नहीं कि सम्मोहित हो गये हो, परिवेश से ! इसने तब न कहा था। क्योंकि तब इसको कोई खतरा न था। नास्तिकता में मन मजे से जी सकता है। नास्तिकता मन के लिए ठीक-ठीक खाद है, चूँकि 'नहीं' कहना है। 'नहीं' कहना मन के लिए बड़ा सुगम है। 'हाँ' कहने में अड़चन आती है। ' 'नहीं' में संघर्ष है। संघर्ष से अहंकार मजबूत होता है। ' 'हाँ' समर्पण है। 'हाँ' कहने से अहंकार गिरता है।

तो मन अब हजार-हजार सवाल उठाएगा : कहीं सम्मोहन तो नहीं है ! मन यह कह रहा है, रुको ! जल्दी मत करो ! लेकिन ध्यान रहे, अगर जल्दी न की, तो मन कभी भी न करने देगा। वह कहेगा, कल ! कल कभी आता नहीं।

और फिर मैं तुमसे यह पूछता हूँ, इतने दिन नास्तिक रहे, आस्तिकता इतनी जल्दी सम्मोहित कर लेगी ? हाँ, साधारण आस्तिक, जिन्होंने नास्तिकता जानी ही नहीं है, हो सकता है आसानी से सम्मोहित हो जाएँ। लेकिन नास्तिक... । तुम तो लड़ रहे हो पूरी तरह मुझसे, फिर भी बाजी हारते चले जा रहे हो। तो मन कहता है, उलट दो बाजी, बंद ही करो खेल ! हार तो निश्चित हुई चली जाती है !

सम्मोहन का क्या अर्थ होता है ? दूसरे जो कर रहे हैं, उनकी देखा-देखी कुछ करने लगो तो सम्मोहन है। दूसरों की देखा-देखी करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारा ध्यान तुम्हें सुख दे रहा हो, मुझे सुन के तुम्हें प्रकाश का कोई झरोखा दिखायी पड़ रहा हो, मेरे पास बैठ के तुम्हारे हृदय का कोई वातायन फैलता हो, हवा का ताजा झोंका आता हो—तो अपने सुख को सुनो, मन को मत सुनो।

मैं तुमसे यह कहता हूँ, वस्तुतः दुखी रहने की बजाय सम्मोहित हो के सुखी रहना बेहतर है।

सम्मोहन यह है नहीं, अनुभव तुम्हें बताएगा। सजगता से, होशपूर्वक उतरना। अगर तुम्हारा आनंद बढ़ता जाए, तुम्हारा जीवन अनुभव सुस्पष्ट होने लगे, धुंधली-धुंधली छायाएँ हटने लगें और प्रकाश पास आने लगे—तो अपने अनुभव की ही सुनना। लेकिन मुझे एक मौका दो। फिर तुम्हें लौट जाना हो, अनुभव के बाद, मजे से लौट जाना। यह इसलिए कहता हूँ कि कोई कभी लौटता ही नहीं अनुभव के बाद। अनुभव के पहले सीढ़ियों पर ही सारी बातचीत है कि कहीं संदेह, सम्मोहन, कोई धोखा, पता नहीं क्या मामला है ! ये लोग नाच रहे हैं, कहीं ये सब बने-बनाये न हों, सिखे-

पढ़ाये न हों ! कहीं ये सिर्फ तुम्हारे लिए ही नाच रहे हों कि अब तुम आ रहे हो, तो अब फाँसने का इंतजाम किया हो !

नहीं, इनको तुम्हारा कोई पता भी नहीं है। ये अपने भीतर नाच रहे हैं। तुम भी नाच के देखो ! स्वाद लो !

मैं नहीं कहता, मुझ पे विश्वास करो ! नहीं, मैं कहता हूँ, मेरे साथ प्रयोग करो—सिर्फ प्रयोग ! हाइपोथेटिकल ! मुझ पे भरोसा करने की अभी जरूरत ही नहीं है। तुम्हारा अनुभव ही अगर भरोसा ले आए, तब बात दूसरी। जब अपनी ही आँख से देखोगे और जब अपने ही हृदय में अनुभव करोगे, तभी तुम्हारा मन छोड़ेगा—यह भाव, तर्क, विरोध कि कहीं सम्मोहन तो नहीं है।

मन तुम्हें दुख में रखना चाहता है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'बड़ा आनंद आ रहा है। एक बात पूछते हैं आपसे, यह सच तो है ? आनंद उन्हें आ रहा है मगर शक है ! शक यह है कि मन मान ही नहीं सकता कि तुम और आनंदित ! असंभव है ! कहीं कोई भूल हो रही है !

मन मान ही नहीं सकता, क्योंकि तुम्हारे सारे जीवन का अनुभव तो दुख का है; अचानक तुम्हें सुख मिल रहा है, कभी न मिला था, कहीं किसी ने सम्मोहित तो नहीं किया। कहीं कोई जालसाजी, कोई षड्यंत्र तो नहीं चल रहा है।

लोग इतने भयभीत हैं; और पास कुछ भी नहीं है सिवाय दुख के !

मेरे एक संन्यासी ने किसी बड़े राजनेता को मेरी एक किताब दी। तो उन्होंने किताब हाथ में न ली। वे कहने लगे, 'रुको, पहले दो-तीन बातों का जवाब दो। मैंने सुना है कि यह आदमी खतरनाक है और सम्मोहित करता है। यही नहीं, एक सज्जन ने तो यहाँ तक कहा है कि किताब भी मत पढ़ना, क्योंकि पढ़ते-पढ़ते कई लोग पागल हो गये हैं। और फिर उन्होंने कहा कि यहाँ तक मैंने सुना है कि किताब छूने में भी खतरा है।' किताब हाथ में नहीं ली और कहा कि बाबा बख्शो ! बाल-बच्चे हैं। घर-द्वार हैं। इसमें न उलझाओ !

तुम्हारा संदेह सदा सुख पे आता है, दुख पे नहीं ! जब तुम्हारे सिर में दर्द होता है, तब तुम किसी से आ के नहीं कहते कि सुनो भाई, सिर में दर्द हो रहा है, सच है या झूठ ? तब तुम बिलकुल मान लेते हो। सिरदर्द को तुम बिलकुल मान लेते हो। क्योंकि दर्द का तुम्हारा अनुभव है। यह सुख बिलकुल ही अपरिचित है। इससे कभी मुलाकात ही न हुई थी। यह ताजा हवा का झोंका बिलकुल अजनबी है।

मैंने सुना है, स्वीडन का एक राजा दिन भर सोता था। अक्सर राजे यह करते रहे अतीत में। रात भर नाच-गान चलता, पीना-पिलाना चलता और दिन भर सोना चलता। एक दिन कोई पाँच बजे रात, छह बजे रात, महफिल समाप्त हुई। नींद उसे आ नहीं रही थी, तो वह अपने बगीचे में बाहर निकल आया। उसे बड़ी हैरानी

हुई। उसने पूछा अपने पहरेदार को कि यह किस तरह की गंध हवा में है ? उसके पहरेदार ने कहा, 'महाराज ! यह गंध नहीं है, सुबह की ताजी हवा है।' जिंदगी भर तो कभी निकले नहीं; बस शराब की ही गंध को जानते थे । महफिल—उसी बंद दुनिया को जानते थे । सुबह की ताजी हवा......!

पहली दफा अब अनुभव होगा तो तुम अड़चन में पड़ोगे, यह स्वाभाविक है । लेकिन एक ही उपाय है, और वह उपाय यह है कि थोड़ा हिम्मत करो और प्रयोग करो। नास्तिक रह के देख लिया, अब आस्तिक रह के भी देख लो । गृहस्थ रह के देख लिया, संन्यस्त हो के भी देख लो । गृहस्थ हो के कुछ भी न पाया । इतना तो मौका दो कि शायद किसी और आयाम पर संपदा पड़ी हो। नास्तिक रह के कुछ न पाया । इतना ही क्या काफी नहीं है कि तुम अब आस्तिकता की तरफ प्रयोग कर लो? प्रयोग के लिए लेकिन साहस चाहिए। और प्रयोग से ही संदेह जाएँगे। मैं विश्वास करने को कहता ही नहीं। मैं तो कहता हूँ कि सत्य इतने करीब है, टटोल के स्पर्श करके देख लो । आँख खोलो, सूरज निकल आया है । रोशनी सामने पड़ी है ।

इस अंगीठी तक गली से कुछ हवा आने तो दो
जब तलक खिलते नहीं, ये कोयले देंगे धुआँ ।

तब तक संदेह चलता ही रहेगा। धुएँ से ही घिरे रहोगे। एक मौका दो सुबह की हवा को। खोलो खिड़की द्वार दरवाजे ! आने दो हवा को ! शीघ्र ही अंगारे जब भभक उठेंगे, धुआँ विलीन हो जाएगा ।

धुआँ आग से पैदा नहीं होता, धुआँ तो पैदा होता है गीले ईंधन से । तो जब तक पूरी तरह आग पकड़ न लेगी, तब तक धुआँ पैदा होता रहेगा। जब आग पूरी तरह पकड़ लेगी और लकड़ियाँ बिलकुल सूख जाएँगी उस आग में, तब धुआँ नहीं पैदा होता; तब शुद्ध आग, स्वर्ण जैसी शुद्ध, निर्धूम....।

जब तक तुम्हारे मन की लकड़ी गीली-गीली है, सूखी नहीं, तब तक शक-संदेह का धुआँ उठता ही रहेगा । और प्रयोग के अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं है ।

मुझे सुन-सुन के तुम कहीं भी न पहुँच पाओगे। मैं जो कहता हूँ, वह प्यारा लगता है। लेकिन इतने से ही कुछ भी न होगा। मैं जो कहता हूँ, वह तुम्हें सुख देता लगता है। लेकिन उससे तो तुम सिर्फ इशारा लो और आगे चलो। मैं तुम्हें जहाँ की खबर दे रहा हूँ, जब तक तुम वहीं न पहुँच जाओगे, तब तक तुम शब्दों को इकट्ठा कर लोगे, लेकिन सत्य की प्रतीति न होगी ।

गर मुझे इसका यकीं ही मिरे हमदम मिरे दोस्त
गर मुझे इसका यकीं हो कि तिरे दिल की थकन
तेरी आँखों की उदासी, तिरे सीने की जलन
मेरी दिलजोई मिरे प्यार से मिट जाएगी
गर मुझे इसका यकीं हो मिरे हमदम मिरे दोस्त

रूजो-शब शामो-शहर मैं तुझे बहलाता रहूँ
मैं कुछ गीत सुनाता रहूँ हल्के शीरीं
आबशारों के, बहारों के, चमनजारों के गीत
यूँ ही गाता रहूँ, गाता रहूँ तेरी खातिर
गीत बुनता रहूँ, बैठा रहूँ तेरी खातिर
पर मिरे गीत तेरे दुख का मुदावा ही नहीं
नग्मा जर्राह नहीं, मूनिसो गमखार सही

मेरा गीत तुम्हारे जख्म न भर सकेगा, मलहम-पट्टी भला हो जाए। मेरा गीत तुम्हारी बीमारी की औषधि नहीं है । सांत्वना भले मिल जाए, सत्य न मिलेगा उससे। मेरे गीत में तुम सो मत जाना। यह कोई लोरी नहीं है। यह तुम्हें सुलाने के लिए नहीं, तुम्हें जगाने के लिए पुकार है, आवाज है ।

मेरी बातें तुम्हें अच्छी लगती हैं—अच्छा है कि अच्छी लगती हैं; मगर इसे काफी मत मान लेना। जरूरी है; काफी नहीं है। थोड़ा और चलो! मेरी बात अच्छी लगी है—मेरे जैसे हो के भी देखो ! तब असली द्वार खुलेंगे ।

जीवन अवसर है जानने के लिए, घबड़ाओ मत । पगडंडियाँ अँधेरे बीहड़ में ले जाती हैं। लेकिन जिसको भी पहुँचना हो, पगडंडियों से ही पहुँचता है, राजपथ नहीं है। राजपथ पर भीड़ चलती है। यह तो जो मैं तुम्हें समझा रहा हूँ, अकेले चलने का मार्ग है। इसमें तुम धीरे-धीरे परम एकांत को उपलब्ध हो जाओगे। वहीं तुम्हें पता चलेगा, क्या सत्य है, क्या झूठ है। इसलिए जल्दी निर्णय मत लेना। बाहर द्वार पर बैठे-बैठे निर्णय मत ले लेना। मेरा निमंत्रण है—महल के भीतर आओ !

अपने को पाने का अवसर
यूँ ही न कहीं खो देना !
चुन लो सुर के सुमन, समय का
राग नहीं दब जाये
वर्तमान के लिए न गूँथो
गत की सूखी माला
तिमिर खोजने के लिए न है
दीपक का उजियाला
करो न धीमे चरण, मिलन का
क्षण न कहीं टल जाये
पूनम हो या अमा, सूर्य की
जननी रात रहेगी
शूल-फूल दोनों को छू कर
मलय बयार बहेगी

ढँको न अपने अयन, हृदय की
आग नहीं बुझ जाये
अपने को पाने का अवसर
यूँ ही न कहीं खो देना
चुन लो सुर के सुमन, समय का
राग नहीं दब जाये !

मैं यहाँ हूँ। जब तक हूँ तब तक डूब लो ! जब तक हूँ तब तक एक द्वार खुला है। हिम्मत कर लो ! शास्त्र तो सदा रहेंगे। मैं जो कहता हूँ वह तुम फिर आगे भी पढ़ लोगे। किताबें रहेंगी। सोच-विचार खूब कर लेना पीछे। लेकिन अभी स्थगित मत करो। इतना क्या भय है? इतनी क्या घबड़ाहट है? क्या अपने पे भरोसा बिलकुल भी नहीं है कि जब संन्यास का भाव उठे तो तुम्हें यह भी पक्का नहीं है कि यह तुम्हारा भाव है कि दूसरों का देख के उठ आया है? तुम्हें क्या अपनी इतनी भी पहचान नहीं है?

श्रद्धा जगे, तो भी तुम संदिग्ध हो?

संदेह मिट जाएगा एक क्षण में, ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। और यह भी मैं नहीं कहता कि श्रद्धा तभी होगी जब सन्देह मिट जाएगा। अगर ऐसा कहता तो असंभव थी बात। मैं कहता हूँ, सन्देह है, माना। सन्देह के बावजूद श्रद्धा का जो नया अंकुर उठ रहा है उसे मौका दो ! फिर तुम तोल लेना बाद में। अगर तुम्हें लगे कि नास्तिक की 'नहीं' ज्यादा मुक्तिदायी थी आस्तिक की 'हाँ' से, वापस लौट जाना। पीछे तुम्हें लगे कि श्रद्धा से तो अश्रद्धा ही बेहतर थी—लौट जाना ! लेकिन दोनों का अनुभव तो कर लो, ताकि तुलना कर सको, ताकि विचार कर सको !

एक का तो तुमने अनुभव किया है—सन्देह का, नास्तिकता का; अब दूसरे का अनुभव बिना किये निर्णय मत करो।

मुल्ला नसरुद्दीन गाँव का काजी हो गया था। पहला ही मुकदमा आया, तो उसने एक पक्ष का वक्तव्य सुना और कहा, 'ठीक, बिलकुल ठीक !' कोर्ट का जो क्लर्क था, वह उठा, उसने पास आ के कहा कि महानुभव ! अभी तो आपने एक का ही वक्तव्य सुना है। अभी विरोधी को भी तो कुछ मौका दें। आप तो निर्णय ही देने लगे कि बिलकुल ठीक है !

नसरुद्दीन ने कहा, 'लेकिन उसमें तो मैं जरा भ्रम में पड़ जाऊँगा। अगर दोनों की सुनी तो कन्फ्यूजन पैदा हो जाएगा।'

मगर उसने कहा, 'यह तो नियम है कोर्ट का।'

उसने कहा कि चलो, ठीक। दूसरे से भी सुन ली। दूसरे की सुनी तो बोला, 'बिलकुल ठीक, बिलकुल सत्य कह रहे हो।' वह क्लर्क बोला, 'आप यह कर क्या रहे हैं? पहले को भी ठीक कह दिया, दूसरे को भी ठीक कह दिया !'

नसरुद्दीन ने कहा, 'बिलकुल ठीक कह रहे हो।'

मौका दो ! फिर शांत निश्चित मन से निर्णय करना। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि जिसने नास्तिकता और आस्तिकता के दोनों अनुभव किये, उसने दुबारा नास्तिकता चुनी हो। यह हुआ ही नहीं। यह अपवाद भी नहीं हुआ एक। यह हो ही नहीं सकता। एक दफा परख आ जाए हीरों की, फिर कौन कंकड़-पत्थरों को ढोता है !

आखिरी प्रश्न : भगवान श्री !

वेद-कुरान को त्याग कियो
परित्याग कियो री पुरानन को
कंत के नैन में ध्यान धर्‍यो
ब्रह्मानंद सुनो सखि कानन को
गुरुअन की शरणन् में कबहूं न गई
मंदिर न चढ़ी नाही जोग लियो
पर जोग को भान भयो री सखी
जब प्यारे पिया संग भोग कियो !

कृपया बताएँ कि क्या यह भी कोई मार्ग है !

इसी की चर्चा चल रही है। यही तो परम मार्ग है। यही तो नारद के भक्ति-सूत्रों का सार है।

कुछ भी जरूरत नहीं है—न वेद की, न कुरान की, न जोग की, न तप की। किसी की कोई जरूरत नहीं है—न मंदिर की, न मस्जिद की। जरूरत है तो बस इतनी ही कि परमात्मा के प्रति समर्पण हो जाए, उस प्रेमी से नाता जुड़ जाए।

पर जोग को भान भयो री सखी
जब प्यारे पिया संग भोग कियो !

—तभी योग का अनुभव होता है जब उस परम प्यारे के साथ भोग हो जाता है। सब कुछ मौजूद है तुम्हारे भीतर, जरा-सी चिंगारी चाहिए।

एक चिनगार कहीं से ढूँढ लाओ दोस्तो
इस दिल में तेल से भीगी हुई बाती तो है !

तैयार है सब, बस जरा प्रेम की चिनगार पड़ जाए !

कुरान, वेद, पुरान—कितने लोग उन्हें पढ़ रहे हैं, क्या पाया? उनको गौर से देखोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि शास्त्रों से कुछ भी होता नहीं। होता होता तो सारा संसार कभी रूपान्तरित हो गया होता ! कितने शास्त्र हैं !

गजब है सच को सच कहते नहीं वो
कुरानो-उपनिषद खोले हुए हैं !

गौर से देखो जरा, कुरान और उपनिषद की छाया में कितना पाखंड चल रहा है। शब्दों के पीछे कितना धोखा पड़ा हुआ है !

भक्ति का शास्त्र इतना ही है कि उस परमात्मा के प्रेम में पड़ जाना ही सब कुछ है। जिसने प्रेम जाना, उसने सब जाना। और बाकी सब जानने में जो अपने को उलझाये रहा, उस सबको तो जान ही न पाएगा, प्रेम को भी न जान पाएगा।

प्रेम की कठिनाई यह है कि उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता; इसलिए प्रेम का कोई शास्त्र भी नहीं बन सकता।

नारद के सूत्र भी बड़े तुतलाते-तुतलाते हैं। कहो कैसे !

एक खंडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है !

बस इतना ही समझ लेना कि प्रेम गीत से प्रगट हुआ है, नृत्य से प्रगट हुआ है। और कुछ कहने का उपाय नहीं है; इसलिए नारद कहते हैं, 'रोते है भक्त, कंठावरोध हो जाता है; आँखों से आँसू झरते हैं; एक-दूसरे से संभाषण करते हैं; उनके कारण ही यह पृथ्वी स्वर्ग की तरह पूज्य हो गयी है।'

भक्तों का सत्संग करो। तलाश करो उनकी जो 'उसके' प्रेम में पगे हों, ताकि तुम्हें भी वह प्रेम छू ले, तुम भी उसमें पग जाओ !

वस्तुतः आना अपने पर ही है। कितना बड़ा चक्कर लगा के आते हो, यह तुम्हारी मर्जी। शास्त्रों से गये तो बहुत बड़ा चक्कर है; जबकि परमात्मा द्वार पर खड़ा था, सीधे ही तुम जा सकते थे।

हमीं थे क्या जुस्तजू का हासिल
हमीं थे क्या आप अपनी मंजिल
वहीं पे आ कर ठहर गया दिल
चले थे जिस राहगुजर से पहले !

तुम्हीं हो मंजिल; तुम्हीं हो मार्ग; तुम्हीं हो खोजने वाले; तुम्हीं ही खोज; तुम्हीं हो खोजा जाने वाला सत्य !

नारद कहते हैं, त्रिभंग के जो ऊपर उठ गया—ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान; सेवक, सेवा, सेव्य—जो त्रैत के ऊपर उठ गया.....। कौन उठता है उसके ऊपर ? जो भी प्रेम में डूब जाता है, वही ऊपर उठ जाता है। तुम प्रेम में डूबो, प्रेम में मिटो !

प्रेम का शास्त्र ही एकमात्र धर्मशास्त्र है।

आज इतना ही।

दिनांक २१ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना
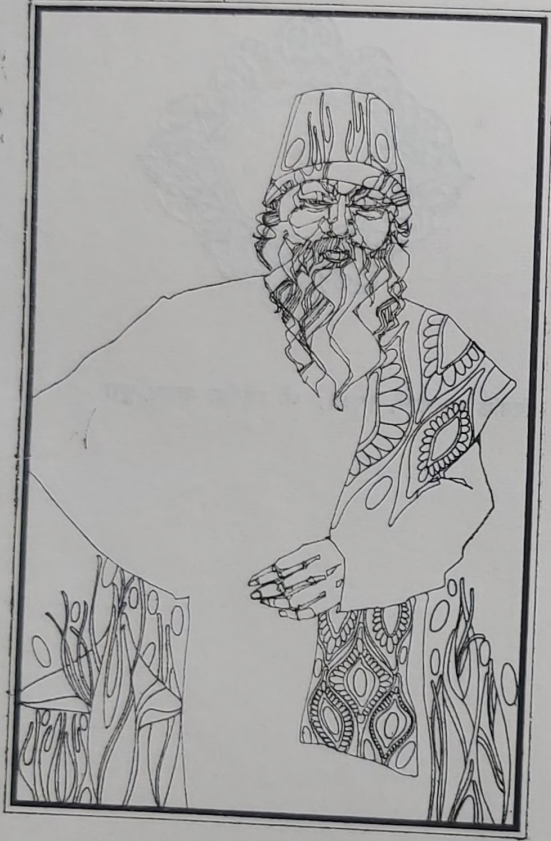
वादो नावलम्ब्य ॥ ७४ ॥

बाहुल्यावकाशादनियतत्वच्च ॥ ७५ ॥

भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तद्बोधक
कर्माण्यपि करणीयानि ॥ ७६ ॥

सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्य-
माण क्षणार्ध्दमपि व्यर्थं न नेयम् ॥ ७७ ॥

अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्र्याणि
परिपालनीयनि ॥ ७८ ॥

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव
भजनीयः ॥ ७९ ॥

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति
च भक्तान् ॥ ८० ॥

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव
गरीयसी ॥ ८१ ॥

गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्ति-
स्मरणासक्ति दास्यासक्ति साख्यासक्ति-
कान्तासक्तिवात्सल्यासक्त्यात्मनि-
वेदनासक्तितन्मयतासक्तिपरमविरहा-
सक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति
॥ ८२ ॥

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः
कुमारव्यासशुकशांडिल्यगर्गविष्णु-
कौण्डिन्य शेषोद्धवारुणिबलिहनुमाद्वि-
भीषणादयो भक्त्ययाचार्याः ॥ ८३ ॥

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति
श्रद्धते स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते
इति ॥ ८४ ॥

मुक्ति अर्थात् प्रज्ञा की थिरता

एक तीर्थयात्रा आज पूरी होगी।

भक्ति कोई शास्त्र नहीं है – यात्रा है। भक्ति कोई सिद्धान्त नहीं है – जीवन-रस है। भक्ति को समझ के कोई समझ पाया नहीं। भक्ति को डूब कर, भक्ति में डूब कर ही कोई भक्ति के राज़ को समझ पाता है।

नाच कहीं ज्यादा करीब है विचार से। गीत कहीं ज्यादा करीब है गद्य से। हृदय करीब है मस्तिष्क से।

इन बहुत दिनों भक्ति की लहरों में हमने आंदोलन लिया; बहुत तुम्हें रुलाया भी, क्योंकि भक्ति आँसुओं के बहुत करीब है। और जो रो न सके, वह भक्त न हो सकेगा। छोटे बच्चे की तरह जो असहाय हो के रो सके, वही भक्ति-मार्ग से गुजर पाता है।

भक्ति बड़ी सुगम है – लेकिन जिनकी आँखों में आँसू हों, बस उनके लिए। भक्ति बहुत कठिन है, अगर आँखों के आँसू सूख गये हों। और बहुत हैं अभागे संसार में जिनकी आँखों के आँसू सूख गये हैं; जिनके पास आँखें हैं, लेकिन आँखों में पानी नहीं रहा; जो देखते हैं, लेकिन गहरा नहीं देख पाते, क्योंकि आँखों से भी ज्यादा गहरा आँखों के आँसू देखते हैं। और जिनकी आँखों में आँसू नहीं रहे, उनकी आँखों के स्वच्छ होने की संभावना मिट गयी। आँसू तो स्नान करा जाते हैं; आँखों को बार-बार ताजा कर जाते हैं; धूल को जमने नहीं देते; विचार को टिकने नहीं देते; कूड़ा-कर्कट को बहा ले जाते हैं; आँखें फिर ताजी हो जाती हैं स्फटिक मणि की भाँति, छोटे बच्चों की भाँति; फिर संसार हरा और ताजा और नया हो जाता है। उस ताजगी से ही परमात्मा की खबर मिलती है।

भक्त का अर्थ है : जो रोना जानता है। भक्त का अर्थ है : जो असहाय होना जानता है। भक्त का अर्थ है : जो अपने ना-कुछ होने को अनुभव करता है।

अहंकार से भक्ति बिलकुल विपरीत है। इसलिए जो अहंकार की खोज पर चले हैं, वे कभी भक्ति को उपलब्ध न हो सकेंगे। परमात्मा को पाना हो तो स्वयं को खोना ही पड़ेगा।

यह खोने की यात्रा थी। यह राह बड़ी मधुभरी थी, बड़े फूल खिले थे! क्योंकि भक्ति के मार्ग पर कोई मरुस्थल नहीं है। तुम पैर भर रखो, पहला कदम ही आखिरी कदम बन जाता है। तुम पैर भर बढ़ाओ कि सौंदर्य अपने अनंत रूपों को खोलने लगता है।

परमात्मा को खोजना नहीं, अपने को खोलना है, ताकि परमात्मा तुम्हें खोज सके। इस भ्रांति में तो तुम रहना ही मत कि तुम परमात्मा को खोज लोगे। भक्ति का मूल आधार यही है कि परमात्मा तुम्हें खोज रहा है, तुम छुप क्यों रहे हो, तुम बचाये क्यों फिरते हो अपने को? तुम उसे खोज सकोगे, क्योंकि तुम्हें न उसका पता मालूम, न ठिकाना मालूम। और हाथ कितने छोटे हैं और आकाश कितना बड़ा है! तुम मुट्ठियों में आकाश को बाँध पाओगे?

मनुष्य की सामर्थ्य क्या है?

जिस दिन अपनी असामर्थ्य प्रतीत हो जाती है, उस दिन भक्त कहता है, 'अब तुझसे कहें भी क्या, तुझे खोजें भी कहाँ?'

लिखें जो कुछ और तो हमारी मजाल क्या
इतना ही लिख के भेज दिया है – 'तरस गये'।

भक्त रो सकता है, तरस सकता है। शिकायत भी तो करने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि शिकायत भी सामर्थ्य की ही छाया है।

ये दिन बड़े अहोभाव के थे।

ये सूत्र अगर तुम्हारे हृदय में थोड़ी-सी भनक छोड़ जाएँ और तुम्हारा गीत मुखर हो उठे...। वीणा तो तुम ले कर ही आये हो, लेकिन न मालूम कितने भयों से ग्रस्त हो, और परमात्मा को तुम्हारी वीणा को छूने नहीं देते।

थोड़ी हिम्मत चाहिए! थोड़ी मतवाली हिम्मत चाहिए! यह काम पागलों का है। परमात्मा को जिन्होंने पाया वे पागल थे। और पागल होने की सामर्थ्य नहीं हो तो परमात्मा की बात छोड़ देनी चाहिए। वह बुद्धिमानों का, समझदारों का, दुकानदारों का काम नहीं – पियक्कड़ों का है। और मैं खुश हूँ कि पियक्कड़ धीरे-धीरे अब मेरे पास आने लगे हैं, मतवालों को धीरे-धीरे खबर मिलने लगी है।

स्वाभाविक है – जैसे कोई कुँआ खोदता है तो पहले कंकड़-पत्थर हाथ लगते हैं, फिर कूड़ा-कर्कट निकलता है, फिर मिट्टी की परतें निकलती हैं, फिर जलधार आती है। अब जलधार आ गयी! अब तो दीवानों से ही मुझे बात करनी है, क्योंकि वे ही केवल ले सकेंगे।

ये अंतिम सूत्र हैं नारद के।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।'

ऐसा हिन्दी में अनुवाद किया है। मूल संस्कृत का अर्थ तो इतना ही होगा : 'भक्त को वाद-विवाद नहीं।' वही ठीक है। 'करना चाहिए' की बात ही भक्त के लिए

उचित नहीं है, क्योंकि 'करना चाहिए' में कर्ता आ गया, व्यवस्था आ गयी। तुम कुछ करोगे तो तुम मिट न सकोगे। अगर तुमने कुछ किया तो तुम अपने ही विपरीत कुछ करोगे। वाद-विवाद उठता था और तुमने नियम बना लिया कि वाद-विवाद नहीं करना चाहिए, तो वाद-विवाद मिट थोड़े ही जाएगा — मत करो, छिपा रह जाएगा; मत लाओ बाहर, भीतर रह जाएगा — और भीतर रहे, इससे तो बेहतर था कि बाहर आ जाए। यह तो ऐसा हुआ जैसे रोग को भीतर छिपा लिया — नासूर बनेंगे उससे। यह तो मवाद को भीतर रख लेना हो जाएगा।

इसलिए मैं ऐसा अनुवाद न करूँगा कि भक्त को वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। 'करना चाहिए' की बात ही भक्त नहीं जानता। कर्तव्य की भाषा ही भक्त की भाषा नहीं है — उसकी भाषा प्रेम की है।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं' — बस इतना काफी है। क्यों नहीं? — क्योंकि जिसने जाना हो, वह विवाद कैसे करे? विवाद तो टटोलने जैसा है — अँधेरे में कोई टटोलता है; रोशनी हो, फिर कोई टटोलता है? अंधा टटोलता है रोशनी में भी; आँखें हों तो फिर कोई टटोलता है? जिसे पता है, जिसे अनुभव हुआ है, जिसके जीवन में थोड़ी भी सत्य की किरण उतरी है, जो उस किरण के साथ थोड़ा नाचा है, रास रचाया है — वह वाद-विवाद करेगा? उसके पास न तो कुछ सिद्ध करने को है, न किसी को असिद्ध करने की कोई आकांक्षा है। वह तो अपना प्रमाण है।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं' — इसका अर्थ हुआ कि भक्त अपना प्रमाण है। वाद-विवाद तो वे करें जिसके पास अपना कोई प्रमाण नहीं है। विवाद का अर्थ यह होता है कि हमें अनुभव नहीं हुआ। भक्त से लड़ो, झगड़ो — भक्त कहेगा, आँखों में झांको मेरी; मेरे आँसुओं का स्वाद लो; मेरे साथ नाचो; ये मैंने घूंघर बाँधे पैरों में, तुम भी बाँधो; यह मैंने धूप-थाल सजाया, तुम भी अर्चना करो। जैसा मुझे हुआ, तुम्हें भी हो जाएगा; क्योंकि मुझ जैसे अपात्र को हो गया तो तुम जैसे पात्र को न होगा?

भक्त यह कहता है कि मुझको हो गया, मुझ जैसे पापी को हो गया, तो तुम जैसे पुण्यात्मा को न होगा? मैं तो कुछ भी न जानता था और परमात्मा मेरे द्वार आ गया, बस मेरी पुकार से आ गया; तुम तो बहुत जानते हो, तुम्हारी पुकार से न आयेगा?

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।'

वाद-विवाद का अर्थ है कि तुम्हारे जीवन में प्रमाण नहीं है, तुम कहीं और खोजते हो, परिपूरक प्रमाण खोजते हो। जो तुम्हारे पास नहीं है उसे तुम शब्दों से सिद्ध करना चाहते हो। जिसकी सुगंध तुम्हारे जीवन में नहीं है, तुम विवाद से समझाना चाहते हो कि है।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।' इसलिए नहीं कि यह कोई नियम है, बल्कि इस-

लिए कि यह असम्भव हो जाता है। प्रेमी क्या विवाद करे? तुम मजनू से पूछो, लैला के संबंध में, वह विवाद न करेगा; वह लैला के सौंदर्य को भी सिद्ध करने की कोशिश न करेगा। वह तुमसे कहेगा, 'मजनू की आँखें पा लो। मैंने जैसा देखा है वैसा तुम भी देखो।'

'मजनू' देखने का एक ढंग है। 'भक्त' भी देखने का एक ढंग है। अंधे से क्या विवाद करोगे अगर प्रकाश सिद्ध करना हो? अंधे को तुम विवाद से समझा सकोगे? तुम जो भी प्रकाश के संबंध में कहोगे वह गलत ही समझा जाएगा। आँख जिसके पास नहीं है, कैसे समझाओगे उसे? अंधा कहेगा, 'मैं सुन सकता हूँ, तुम अपने प्रकाश को थोड़ा बजाओ, तो मैं उसकी धुन, आवाज सुन लूं।' अंधा कहेगा, 'मैं चख सकता हूँ, तुम थोड़ा मेरी जीभ पर रख दो अपने प्रकाश को, ताकि मैं उसका स्वाद ले लूं।' अंधा कहेगा, 'मैं छू सकता हूँ, मेरे पास लाओ। कहाँ है तुम्हारा प्रकाश? तुम कहते हो, मैं प्रकाश से घिरा हूँ, चारों तरफ प्रकाश है। मैं अपने हाथ फैलाता हूँ, कहीं प्रकाश का पता नहीं चलता।'

क्या करोगे तुम? तुम थक जाओगे, हार जाओगे। अंधे को प्रकाश के संबंध में तर्क देने का कोई अर्थ नहीं है। अगर कुछ तुमसे हो सके तो अंधे की आँखों को ठीक करने की व्यवस्था करो। जैसे तुमने अपनी आँखें ठीक कर ली हैं, उसी राह से उसे ले चलो।

चैतन्य के पास एक तार्किक विवादी आया। चैतन्य खुद अपनी युवावस्था में बड़े तार्किक थे, बड़े पंडित थे। बंगाल में उनकी ख्याती फैल गयी थी। पंडित उनसे थरथराने लगे थे। पर एक दिन उन्हें दिखायी पड़ा सारे पांडित्य का थोथापन। हरा दिया बहुतों को, लेकिन अपनी जीत तो पास न आयी। न मालूम कितनों को पराजित कर दिया, लेकिन खुद के जीवन में विजय की तो कोई दुंदुभि न बजी। तर्कजाल खूब फैला लिया, हाथ में कोई संपदा न लगी। काँटों की तरह दूसरों को चुभने लगे, लेकिन जिंदगी में अपने फूल न खिले। यह बात एक दिन उन्हें समझ में आ गयी।

और ध्यान रखना, यह बात केवल परम बुद्धिमानों को ही समझ में आ पाती है। तर्क की असारता को देख लेना बड़े निष्ठापूर्ण, बड़े प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का लक्षण है।

उन्होंने सब तर्कजाल छोड़ दिया। लेकिन किसी को पता न था, कोई पंडित उनसे विवाद करने चल पड़ा था। वह आ गया। चैतन्य ने कहा, 'तुम जरा देर करके आये। अब हराने का मजा जाता रहा, क्योंकि हम जीत गये। अब तुम्हें हराएँ भी क्या — अब हम तुम्हें हराए बिना जीत गये! अब हम जीते हुए हैं। थोड़ी देर कर दी आने में। अब हम खाली अँधेरे में टटोलते नहीं हैं — रोशनी मिल गयी है; गीत पकड़ लिया है — नाचते हैं! यह लो तंबूरा; नाचो!

पंडित बोला, 'क्या पागल हूं मैं ?'

चैतन्य ने कहा, 'लोगों को मैं तर्क के निमंत्रण देता था, वे तैयार रहते थे। वह शब्दों का नाच है। वे कोरे हवा के बबूले हैं। अब तुम्हें वास्तविक नृत्य का आमंत्रण दे रहा हूं – स्वीकार करो! क्योंकि ऐसे नाच के मैंने उसकी छवि को खोज लिया है। जब नाच में मैं खो जाता हूं, तब वह प्रकट होता है। जब मैं मिट जाता हूं, तब वह आ जाता है। जब तक मैं हूं, तब तक द्वार बंद! जैसे ही मैं न हुआ कि द्वार खुल जाते हैं।'

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।' क्योंकि भक्त को स्वाद मिल गया; अब वाद-विवाद में समय कौन खोए ?

क्योंकर भूले भटके फिरते
भेद ढूंढने जग नश्वर का
अंतरदीप जला कर देखो
मानव ही प्रमाण ईश्वर का।

ब्रह्मसूत्र का एक बड़ा बहुमूल्य सूत्र है, नारद के इस सूत्र से मेल खाता है : तर्क प्रतिष्ठानात – तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। यद्यपि साधारण जीवन में तर्क की ही प्रतिष्ठा दिखायी पड़ती है। जो जितना बड़ा तार्किक, उतना ही ज्ञानी मालूम पड़ता है। लेकिन परम ज्ञानियों ने कहा कि तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

तर्क की अप्रतिष्ठा को समझो। तर्क कुछ भी सिद्ध नहीं करता, सिद्ध करता मालूम होता है। क्योंकि जो भी तर्क सिद्ध करता है, उसी को तर्क से ही असिद्ध किया जा सकता है। इसलिए तो तार्किक सदियों-सदियों तक तर्क-विवाद करते रहते हैं, फैलाते जाते हैं जाल को – निष्कर्ष कोई हाथ नहीं आता। पाँच हज़ार वर्षों के दर्शनशास्त्र का इतिहास यह है : शून्य हाथ लायी है शून्य, कुछ भी हाथ आया नहीं है। कितने बड़े विवादी हुए, कितने बड़े तर्कनिष्ठ लोग हुए! तर्क की कैसी बाल की खाल निकाली! लेकिन ऐसा कोई तर्क आज तक नहीं दिया जा सका है जिसका विपरीत तर्क न खोजा सके। और ऐसा कोई भी तर्क नहीं है जो स्वयं को ही न काट दे!

हम जीवन में रोज़-रोज़ तर्क देते हैं। कभी तुमने खयाल किया? कभी अपने ही तर्क के विपरीत खड़े हो के देखो, तुम तत्काल पाओगे कि तुम उसके विपरीत भी वैसा ही तर्क खोज लेते हो।

'तर्क प्रतिष्ठानात'।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ बैठा था। उसका बेटा है कोई अट्ठारह-उन्नीस साल का, वह आया और उसने कहा कि पापा! और उसने अच्छा मौका देखा कि मैं बैठा हूं, मेरे सामने उसमें हिम्मत बढ़ी। उसने कहा कि अब मैं कालेज जा रहा हूं, तो अब तो कार खरीदनी होगी। तो बाप ने कहा, 'कार! तीन मकान छोड़ के तेरा कालेज है। और भगवान ने दो पैर किसलिए दिये हैं?'

उस लड़के ने कहा, 'एक ऐक्सीलेटर पे रखने को, एक ब्रेक पे।'

तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। तर्क का करोगे क्या?

मुल्ला सोच रहा था कि बड़ा तर्क दिया उसने, कि भगवान ने दो पैर किसलिए दिये!

हम अपनी वासना के हित में ही तर्क खोज लेते हैं। जो तुम मानना चाहते हो, तुम मान लेते हो। हालाँकि तुम कहोगे यह कि तर्कों से सिद्ध होता है, इसलिए मैंने माना। लेकिन अपने भीतर थोड़ा विश्लेषण करो, आत्मनिरीक्षण करो : तुमने माना पहले, तर्क पीछे खोजे। इसलिए तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

चोर मान लेता है कि चोरी करने का कारण है। बेईमान मान लेता है बेईमान होने का कारण है। वह कहता है, इस बेईमान संसार में ईमानदार तो जी ही नहीं सकता। चोर मान लेता है, सभी चोर हैं। हिंसक मानता है कि अहिंसा से तो कैसे जियोगे।

तुम जो मान लेना चाहते हो, मानते तुम पहले हो, तर्क तुम पीछे से जुटाते हो। तुम ज़रा निरीक्षण करोगे तो तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि मान्यता पहले उठती है या तर्क पहले उठता है। तर्क तो सिर्फ अपने को समझाना है कि मैं विचारशील हूं। वासना निर्बुद्धिपूर्ण मालूम होती है। तर्क वासना को बुद्धिमत्ता का आभास देता है। जिसे ईश्वर को मानना है वह ईश्वर के पक्ष में तर्क खोज लेता है। जिसे ईश्वर को नहीं मानना है, वह ईश्वर के विपक्ष में तर्क खोज लेता है। और दोनों का विवाद चलता रहे, विवाद का कभी कोई अंत नहीं आता – आ ही नहीं सकता, क्योंकि भीतर गहरे में विवाद है ही नहीं, उन्होंने पहले मान ही रखा है।

तर्क तो केवल ऊपर की सजावट है। उसके बदल देने से कुछ भी न बदलेगा। इसलिए कोई भी तुमसे कितना तर्क करे, कुछ भी सिद्ध नहीं कर पाता। तुम्हें तर्क में हरा भी दे, तो भी तुम भीतर यही भाव ले के जाते हो कि ठहरो, थोड़ा सोचने का मौका दो, कोई रास्ता खोज लेंगे। तर्क से कभी कोई पराजित हुआ है? तर्क से कभी कोई हारा है? तर्क से कभी कोई जीता है? दूसरे का मुंह बंद कर सकते हो, अगर तुम्हारा तर्क थोड़ा ज्यादा प्रबल है; लेकिन तुमसे प्रबल तार्किक मिल जाएगा और तुम्हारा मुंह बंद कर देगा।

ब्रह्मसूत्र का यह वचन हज़ारों साल के अनुभव का सार है : तर्क प्रतिष्ठानात – तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

कठोपनिषद में भी एक वचन है : नेषा तर्केण मतिरापनेया – तर्क से, बुद्धि से 'उसकी' उपलब्धि नहीं है। क्योंकि बुद्धि से तो तुम वही पा सकते हो जो तुमने जाना ही हुआ है। बुद्धि नये का कोई आविष्कार नहीं करती। बुद्धि तो जुगाली है; जैसे भैंस घास चर लेती है, फिर बैठ के जुगाली करती रहती है। बुद्धि पहले तो यहाँ-वहाँ से इकट्ठा कर लेती है, फिर उसी को दोहराती रहती है, पुनरुक्ति

करती रहती है, साफ करती है; निखारती है, सजाती-संवारती है, रूप-रंग देती है; सुंदर बनाती है, व्यवस्था देती है – लेकिन बुद्धि नये को कभी भी नहीं जानती। बुद्धि मौलिक नहीं है। बुद्धि से कभी अज्ञात का कोई पता नहीं चलता – और परमात्मा परम अज्ञात है; वह परम रहस्य है! तुम्हारी बुद्धि के कारण ही तुम उसके पास नहीं पहुँच पाते हो।

'भक्त को वाद-विवाद नहीं।'

'क्योंकि बाहुल्य का अवकाश है वाद-विवाद में और वह अनियत है।'

बाहुल्य का अवकाश है ...। कितना ही फैलाते चले जाओ, वह फैलता ही चला जाता है। ऐसी कोई सीमा ही नहीं आती जहाँ तुम कह सको, तर्क पूर्ण हुआ। ऐसी कोई जगह नहीं आती जहाँ सब प्रश्न गिर जाते हों और आत्यंतिक उत्तर हाथ में आ जाता हो। तुम सिर्फ प्रश्नों को पीछे हटाये चले जाते हो। कोई कहता है, 'जगत किसने बनाया?' तुम कहते हो, 'ईश्वर ने बनाया।' वह पूछता है, 'ईश्वर को किसने बनाया?' अब क्या करोगे? कहोगे, 'और किसी महा ईश्वर ने बनाया।' वह पूछेगा, 'उसको किसने बनाया?'

बाहुल्य का अवकाश है ...।

कोई आदमी चोरी करता है, बेईमान है, दुखी है, परेशान है – तुम कहते हो, पिछले जन्मों का फल भोग रहा है। पिछले जन्मों में क्यों उसने ऐसे कर्म किये थे? कहो, 'और पिछले जन्मों में कर्म किये थे।' मगर इससे क्या हल होगा? कहीं तो जा के रुकोगे? कभी तो इसने शुरुआत की होगी? शुरुआत कैसे हुई थी? तो इतना बाहुल्य करने की जरूरत क्या थी? बात तो वहीं की वहीं खड़ी रही, प्रश्न वहीं के वहीं रहा – उत्तर कोई हाथ आया नहीं।

तुम दुखी हो, कोई समझा देता है कि पिछले जन्म के पाप-कर्म के कारण दुखी हो; तुम संतोष कर लेते हो कि चलो ठीक है। लेकिन तुम पूछो, 'पिछले जन्म में क्यों पाप-कर्म किये?' और उस आदमी के पास सिवाय इसके कोई उत्तर न होगा कि उसके पिछले जन्म में तुमने कुछ और किया था। खींचते जाओ, कहाँ पहुँचोगे? कितने ही जन्मों के बाद प्रश्न वहीं का वहीं रहेगा।

तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। बुद्धि से दिये गये उत्तर उत्तर नहीं हैं, उत्तरों का आभास है। उनसे धोखा होता है कि उत्तर मिल गया। और जिसको धोखा हो गया कि उत्तर मिल गया, वह जीवन को व्यर्थ ही गँवाने लगता है, क्योंकि उत्तर की खोज बंद हो जाती है। उत्तर तो ऐसा चाहिए जिसके मिलते ही सब हल हो जाए, सारी ग्रंथियाँ सुलझ जाएं। इसलिए परमात्मा के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं है। और परमात्मा का उत्तर बुद्धि का उत्तर नहीं है। अत्यंत शांत अवस्था में जहाँ बुद्धि की सारी तरंगें सो जाती हैं, जहाँ हृदय प्रेम से लबालब होता है, जहाँ हृदय की प्याली प्रेम को बहाती है – उन घड़ियों में, तर्क से नहीं, भाव से; विचार से

नहीं, प्रार्थना से; सोचने-समझने से नहीं, मतवालेपन से ...! जो प्रभु की मधुशाला में पी के नाचने लगते हैं, केवल उनको ...!

लेकिन कठिनाई है, दुनिया तुम्हें पागल कहेगी।

अमरीका का एक बहुत प्रसिद्ध कवि है: एलिन गिन्सबर्ग। कुछ दिन पहले मैं उसका जीवन-चरित्र पढ़ता था। वह कोई अट्ठाइस साल का था। भावपूर्ण व्यक्ति है, कवि है, महाकवि है। बुद्धि से कम, हृदय और भाव से ज्यादा जिया है। एक साँझ सूरज डूबता था और वह अपनी खिड़की के पास अपने बिस्तर पे लेटा विश्राम करता था। विलियम ब्लेक की कुछ पंक्तियां उसके मन में दोहर रही थीं। वह उन्हीं को सोचता-सोचता-सोचता सूरज का डूबना देखता रहा। साँझ हो गयी, पक्षियों के गीत चुप हो गये। अचानक उसे ऐसा आभास हुआ, उसे कुछ झलक मिली; जैसे परमात्मा ने उसे छुआ; जैसे कोई हाथ आया खिड़की से अंदर। उसे स्पर्श हुआ, घबड़ाया! लेकिन इतना सुखद था स्पर्श कि घबड़ाहट को एक तरफ रख दिया और पड़ा रहा। आँख बंद की तो भी स्पर्श मालूम होता रहा, आँख खोली तो भी स्पर्श मालूम होता रहा। इतना प्रगाढ़ हुआ स्पर्श कि उसे लगा कि परमात्मा का अनुभव हुआ है। और बात इतनी गहरी गयी कि उसने उठ के अपनी किताब पर लिखा कि अब चाहे सारी दुनिया कहे कि ईश्वर नहीं है, तो भी मैं कहूंगा कि ईश्वर है; मैंने उसे जाना है। और मैं इस घड़ी को कभी न भूलूंगा। लाख मेरी बुद्धि कहे, तो मैं कसम खाता हूँ, तो भी मैं इस अनुभव को कभी झुठलाऊंगा न। हो सकता है, मेरी बुद्धि फिर पुराने तर्कजाल उठा ले, इसलिए आज कसम खाता हूँ इस क्षण में कि मैं परम आस्तिकता को उपलब्ध हुआ, ईश्वर है।

लेकिन जैसे ही वह लिख रहा था, वैसे ही तर्क और संदेह उठने शुरू हो गये। असल में तर्क और संदेह तो पहले ही उठ आए होंगे, तभी तो यह कसम ली; तभी तो यह लिखा, नहीं तो लिखने की जरूरत क्या थी? यह भविष्य का संदेह झाँक गया, मन को कँपा गया। स्पर्श छूट गया उस परम शक्ति का, लेकिन फिर भी छाया डोलती रही। लिख के वह बाहर आया। उसके मन को हुआ, किसी को कह दूं; शायद इस क्षण कोई दूसरा भी मुझमें पहचान ले कि कुछ हुआ है। क्योंकि वह जमीन पे चलता हुआ मालूम नहीं हो रहा था – जैसे इंद्रधनुषों पर उड़ा जा रहा हो, आकाश के मार्ग पर हो, जमीन की सारी कशिश खो गयी है; जैसे गुरुत्वाकर्षण न रहा!

वह भाग के अपने पड़ोस में गया। दो लड़कियाँ अपने दरवाजे पे खड़ी बात कर रही थीं, उसने कहा, 'सुनो, ईश्वर है! मुझे उसका अनुभव हुआ है। खिड़की से उसने हाथ डाला है और मुझे छुआ है।' उन दोनों ने जल्दी से दरवाजा बंद कर लिया कि यह कौन पागल है। वे उसे पहचानती थीं, लेकिन अब तक इतना ही खयाल था कि कवि है, लेकिन आज बिलकुल गया! उन्होंने घबड़ाहट में दरवाजा

बंद कर लिया। इसने दरवाजे पे दस्तक दी तो उन्होंने खिड़की से कहा, 'हट जाओ, नहीं तो पुलिस को खबर कर देंगे।' इसने कहा, 'परमात्मा का अनुभव और पुलिस को खबर!'

अपने एक मित्र को, जो कि मनोचिकित्सक था, इसने फोन किया, कि वह तो शायद समझ सकेगा, मन के संबंध में इतना जानता है। उसने फोन किया कि मुझे परमात्मा का अनुभव हुआ है। अब थोड़ा डरा हुआ था, क्योंकि लड़कियों ने जो व्यवहार किया था ...। थोड़ा डरते से उसने कहा कि मुझे परमात्मा का अनुभव हुआ है; और तो शायद कोई समझ न सके, तुम समझोगे। उसने कहा, 'तुम सीधे भागे यहाँ चले आओ, तुम्हें इलाज की जरूरत है।'

तब संदेह और भी बढ़ गया। उसने सोचा कि कुछ गलती हो गयी। अपने कागज पे देखा, अभी घटना इतने करीब थी; कुछ ही क्षण बीते थे, अभी भी रोआँ-रोआँ उसका पुलकित था – जैसे नारद कहते हैं, 'रोमांच हो आता है भक्त को, आँखें गदगद हो जाती हैं, आँसू झरने लगते हैं।' अभी सब गीला था, अभी सब ताजा था। अभी-अभी तो हुई थी घटना। अभी देर भी न हुई थी। लेकिन संदेह पकड़ने लगे। सोचा कि बेहतर है कि मैं चला ही जाऊँ, कौन जाने कोई वहम हुआ, किसी भ्रम में पड़ा, मन का कोई प्रक्षेपण था या कि मैं पागल हो गया, आत्मसम्मोहित हो गया! कहीं विलियम ब्लेक की कविता दोहराने के कारण ही तो यह सब घटना नहीं हो गयी!

वह गया मित्र के घर। मित्र ने उसे लिटाया, इन्जैक्शन दिये। आठ महीने उसको अस्पताल में रखा गया – पागल की तरह! यह संसार, जिनको परमात्मा को अनुभव हो, उनके साथ पागल की तरह व्यवहार करता है। उसमें भी संसार का कोई कसूर नहीं। वह आठ महीने के बाद निकल सका पागलखाने से, सिर्फ यह भरोसा दिला के कि वह बात गलत थी। उसने लिखा है कि मैं तब भी जानता था कि बात एकदम गलत नहीं थी; लेकिन अब परमात्मा के लिए जिंदगी भर पागल बने रहने का तो कोई अर्थ नहीं है। जब मैंने सब तरह के प्रमाण दे दिये कि मैं ठीक अपने तर्क में, बुद्धि में वापस लौट आया हूँ, सामान्य हो गया हूँ, बीमार नहीं हूँ अब, रुग्ण नहीं हूँ – तब उन्होंने मुझे छोड़ा।

एक महान अनुभव चूक गया। यह आदमी भारत में हुआ होता, परमहंस हो जाता। उसकी कविताओं में अभी भी कभी-कभी झलक है। लेकिन समाज की अपनी स्वीकृति की सीमाएँ हैं। समाज के ढाँचे से इंच भर यहाँ-वहाँ तुम हुए कि अड़चन खड़ी होती है।

अगर तुम्हें कोई प्रतीति भी हो तो उसे छिपाना; जैसे कोई हीरा मिल जाए, तो कबीर ने कहा है 'गांठ गठियायो,' जल्दी से गांठ लगा लेना, किसी को बताना मत, नहीं तो लोग कहेंगे, 'दिमाग खराब हो गया!' उसकी किसी को कानोंकान

खबर मत होने देना। लोग हृदय के विपरीत हैं। लोग प्रार्थना के विपरीत हैं। तुम चकित होओगे कि वे भी जो प्रार्थना करते हैं, प्रार्थना के विपरीत हैं; वे भी प्रार्थना करते हैं, जहाँ तक बुद्धि की सीमा के भीतर चलता है; पूजा-पाठ करते हैं, मंदिर जाते हैं, लेकिन कभी भी हिसाब-किताब की दुनिया के आगे नहीं बढ़ते। उनका मंदिर उनकी दुकान की सीमा के भीतर है। और उनका प्रेम उनकी तर्क की बागुड़ से घिरा है। और उनकी पूजा औपचारिक है। जाना चाहिए, इसलिए जाते हैं मंदिर। पूजा करनी चाहिए, इसलिए पूजा करते हैं। क्योंकि समाज इन बातों को मान्यता देता है; रिस्पैक्टेबिलिटी, एक सम्मान मिलता है समाज से कि आदमी धार्मिक है।

लेकिन समाज धार्मिक आदमी को बरदाश्त नहीं करता – औपचारिक रूप से धार्मिक आदमी को बरदाश्त करता है; हिंदू को, मुसलमान को, जैन को बरदाश्त है, धार्मिक आदमी को बरदाश्त नहीं करता।

ये सूत्र बड़े क्रांतिकारी सूत्र हैं। हिम्मत हो, तो ही इस तरफ बढ़ना; नहीं तो भूल जाना।

'वाद-विवाद में बाहुल्य का अवकाश है और वह अनियत है।'

नारद कहते हैं, व्यर्थ का फैलाव करने से सार क्या! और फिर तर्क कहीं भी पहुँचाता नहीं, उसकी कोई नियति नहीं है, उसका कोई निष्कर्ष नहीं है, वह निष्कर्ष-हीन व्यर्थ की विडम्बना है। करते जाओ, एक तर्क से दूसरा निकलता है, दूसरे तर्क से तीसरा निकलता है; ऐसा कभी नहीं आता, ऐसा क्षण कभी नहीं आता, जहाँ निष्पत्ति आती हो – और जिससे निष्पत्ति न आती हो, उसमें जीवन को मत गँवाना, क्योंकि जीवन निष्पत्ति चाहता है। जीवन किसी महत्त्वपूर्ण नियति को पूरा करना चाहता है। जीवन खिलना चाहता है।

नहीं हृदय में राग, भला तब
वीणा क्या बोलेगी?
अगर मूल निर्गंध, फूल में
सुरभि नहीं डोलेगी।

मूल की चिंता करना, तो फूल में गंध आएगी। और हृदय में राग को जगाना, तो जीवन की वीणा तरंगित होगी। लेकिन मूल और हृदय का विचार करना।

'प्रेमाभक्ति की प्राप्ति के लिए भक्तिशास्त्र का मनन करना चाहिए और ऐसे भी कर्म करने चाहिए जिनसे भक्ति की वृद्धि हो।'

भक्तिशास्त्र का अध्ययन नहीं हो सकता।

तीन शब्द हैं हमारे पास : चिंतन, मनन, निदिध्यासन। चिंतन तो विचार है। मनन ध्यान है। निदिध्यासन समाधि है। चिंतन अगर ठीक मार्ग से चले तो मनन पर पहुँच जाता है; अगर कोल्हू के बैल की तरह चलने लगे तो फिर मनन तक

नहीं पहुँचता। तर्क में जिसका चिंतन उलझ गया, वह मनन तक नहीं पहुँच पाता। जो इतना चिंतनशील है कि तर्क की व्यर्थता को पहचान लेता है, उसका चिंतन, उसकी चिंतन-ऊर्जा मनन बनने लगती है।

मनन सोच-विचार नहीं है – मनन भावना है। जैसे तुम एक फूल को देख रहे हो, तो तुम सोचते हो : गुलाब है कि जूही है कि चम्पा है, कि लाल है कि पीला है कि सफेद है, कि सुगंधित है कि सुगंधित नहीं है, देशी है विदेशी है – अगर इस तरह की बातें तुम सोच रहे हो तो चिंतन कर रहे हो गुलाब के संबंध में; पहले जो गुलाब देखे थे, उनसे तुलना कर रहे हो, 'उनसे सुंदर है, कम सुंदर है?' तो तुम चिंतन में लगे हो। अगर तुम सिर्फ गुलाब को देख रहे हो – भावाविष्ठ, सोच नहीं रहे, न अतीत के गुलाबों से तुलना कर रहे हो न भविष्य के गुलाबों से, न कोई व्याख्या-विश्लेषण, नामकरण कर रहे हो – तुम सिर्फ देख रहे हो; तुम सिर्फ आंखों से पी रहे हो; तुम सिर्फ गुलाब को अपने हृदय में उतरने दे रहे हो; तुम गुलाब में उतर रहे हो, गुलाब तुममें उतर रहा है; तुम्हारे और गुलाब, के बीच एक आंतरिक लेन-देन शुरू हुआ है; गुलाब अपना सौंदर्य तुममें उंडेलेगा, सुगंध तुम में उंडेलेगा, और तुम्हारा जीवन-स्पर्श अपने में लेगा; तुम दोनों तरंगायित हो एक ही तरंग में, एक ही वेव-लेंथ पर – तो मनन! अब न यहाँ कोई चिंतन है, न कोई विचार उठता है; तुम निपट भोग रहे हो। विचार की एक भी परत बीच में नहीं है। तुम पूरे खुले हो। तुमने हृदय के सारे कपाट खोल दिये हैं। तुम्हारा स्वागत परिपूर्ण है। तुममें पुलक उठ आएगा। तुम्हारा रोआँ-रोआँ रोमांचित हो जाएगा। गुलाब से तुम्हें परमात्मा का हाथ फैला हुआ अनुभव होने लगगा। गुलाब तुम्हारे हृदय को छू जाएगा; उसकी गुदगुदी तुममें प्रविष्ट हो जाएगी। तुम दो न रह जाओगे। एक क्षण ऐसा आएगा मनन का जहाँ तुम यह न कह सकोगे कि कौन गुलाब है, कौन मैं हूँ; जहाँ दोनों की सीमाएँ एक-दूसरे पर छा जाएँगी; जहाँ दोनों एक हो जाएँगे, करीब आ जाएँगे – तो मनन।

नारद कहते हैं, भक्तिशास्त्र का मनन...। चिंतन नहीं हो सकता। चिंतन करोगे तो बाहुल्य हो जाएगा, विवाद हो जाएगा – मनन ..।

भक्तों के वचन सुनना, सोचना मत उन पर – गुनना। जब भक्त भगवान का नाम लें, तो तुम यह मत सोचना कि यही भगवान का नाम है या नहीं। कोई कहे 'अल्लाह', कोई कहे 'राम', कोई कहे 'कृष्ण' – तुम नाम पे मत जाना। तुम तो जब कोई अल्लाह कहे, तो उसकी आँखों में देखना : झलक आती है? जब कोई अल्लाह कहे, तो उसमें उठती तरंगों को अनुभव करना। जब कोई अल्लाह कहे तो देखना, कैसे उसने अपने को उंडेल दिया उसमें! जब कोई राम कहे तब भी वही देखना। तब तुम पाओगे कि राम कहो, अल्लाह कहो, रहीम कहो, रहमान कहो – कोई अंतर नहीं पड़ता। भक्त की पुलक एक ही है; रोमांचित हो जाता है।

इसलिए तो तुमसे बार-बार कहता हूँ : आओ जिक्रे-यार करें। उस परमात्मा का थोड़ा स्मरण ...। लेकिन अगर तुम नाम पे चले गये, तो तुम चिंतन में चले गये, मनन न हुआ। जिक्र सोच-विचार नहीं है, चिंतन नहीं है। जिक्र तो एक डुबकी है – डूब गये उसमें, मगन हो गये! जिक्र तो उसकी शराब का पी लेना है।

भक्तों के वचन सुन के तुम चिंतन मत करना कि ये क्या कह रहे हैं। अगर तुम चिंतन में पड़े तो तुम चूक गये। ज्ञानियों के वचन सुनो तो चिंतन करना, क्योंकि वहाँ चिंतन के सिवाय और कुछ भी नहीं है। भक्तों के वचन सुनो तो उनका हृदय देखना, उनका आनंद देखना। तुम, वे क्या कहते हैं, यह फिक्र ही छोड़ देना। तुम तो सीधे-सीधे उनको देखना।

देख रहे हो जो कुछ उसमें भी सबका मत विश्वास करो,
सुनी हुई बातें तो केवल गूंज हवा की होती हैं।

जो देख रहे हो तुम, वह भी सब विश्वास-योग्य नहीं है, क्योंकि बहुत कुछ तो तुम्हारी कल्पना का जाल है जो तुम देख रहे हो। फिर 'सुनी हुई बातें तो केवल गूंज हवा की होती हैं,' तो जो सुन रहे हो उस पे तो बहुत फिक्र करना ही मत। जो अनुभव में आए, बस ...।

भक्तों के पास बैठ के उनके साथ डोलना। पागलों के साथ बैठ के उनके पागलपन में सहयोगी होना, सहभोगी होना। मतवालों के साथ मतवाले हो जाना। नाचते हों भक्त तो नाचना, गाते हों तो गाना। अपना फासला मिटाना। अपने सोच-समझ को उतार के रख देना, बोझ की तरह, एक किनारे। थोड़ी देर को निर्बोझ हो जाना। तो तुम्हें पता चलेगा, भक्तिशास्त्र क्या है।

भक्तिशास्त्र शास्त्रों में नहीं लिखा है – भक्तों के हृदय में लिखा है। भक्तिशास्त्र शब्द नहीं, सिद्धान्त नहीं – एक जीवंत सत्य है। जहाँ तुम भक्त को पा लो, वहीं उसे पढ़ लेना, और कहीं पढ़ने का उपाय नहीं।

'भक्तिशास्त्र का मनन, और ऐसे कर्म भी जिनसे भक्ति की वृद्धि हो'; क्योंकि वस्तुतः तुम जो करते हो, वही तुम होने लगते हो। इस तत्त्व को थोड़ा ठीक से समझ लो।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'नाचने से क्या होगा?' मैं कहता हूँ, 'होने की बात पीछे विचार कर लेंगे – तुम नाचो तो!' वे कहते हैं, 'लेकिन पहले पक्का न हो जाए कि नाचने से क्या होगा ...।' तो मैं उनसे कहता हूँ, 'तुम पैदा हुए थे, साँस लेने के पहले तुमने पूछा था साँस लेने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? माँ का दूध पीने के पहले तुमने पूछा था दूध पीने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? बोलने के पहले तुमने पूछा था बोलने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? चलने के पहले पूछा था चलने से क्या होगा, जब तक पक्का न हो जाए? फिर किसी के प्रेम में पड़ गये थे, पूछा था प्रेम करने से क्या होगा, जब

तक पक्का न हो जाए? सारे जीवन तुम करते रहे, कर-करके जानते रहे, परमात्मा के साथ ही यह ज्यादती क्यों करते हो कि पहले पूछना चाहते हो?

करो तो ही कोई जानता है। किये बिना कौन जानता है? जानना अस्तित्वगत है। रोओगे तो जानोगे कि क्या होता है। दूसरे को रोते देख के भी न जानोगे, क्योंकि आँख से आँसू बहना, तुम क्या पहचानोगे हृदय में क्या बहा? आँख से बहते आँसुओं को देख कर प्राणों में कौन गूंज उठी, कैसे जानोगे? आँसू ही दिखायी पड़ेंगे। आँसुओं का कोई परीक्षण नहीं किया जा सकता। तुम आँसू इकट्ठे कर लो भक्त के, किसी दुखी के, और दोनों के आँसुओं को ले जाओ प्रयोगशाला में, वैज्ञानिक कोई फर्क न बता सकेंगे कि कौन-से आँसू भक्त के हैं और कौन-से दुखी के हैं; क्योंकि आँसू तो बस आँसू हैं, सब खारे हैं, सब एक-से हैं। लेकिन भक्त अहोभाव से रोता है। भक्त के रुदन में दुख नहीं है, परम आनंद है।

किसी का प्रियजन चल बसा है, वह भी रोता है, दुख से विषाक्त हैं उसके आँसू। लेकिन इस आनंद और दुख को आँसुओं में न पकड़ सकोगे, क्योंकि आनंद और दुख तो भीतर की बात है। आँसू, आँसू कुछ भी नहीं कह सकते। तुम ही रोओगे जब आनंद से तभी तुम जानोगे। ये अनुभव वैयक्तिक हैं। ये दूसरे से पूछ के भी नहीं समझे जा सकते।

प्रेम को बिना जाने कौन जान पाया प्रेम क्या है!

'भक्तिशास्त्र का मनन करना चाहिए और ऐसे कर्म भी करने चाहिए जिनसे भक्ति की वृद्धि हो।'

किन कर्मों से भक्ति की वृद्धि होती है? भक्त होने का क्या कर्म है?

जीवन को देखने का एक ढंग है। साधारणतः तुम जीवन को बड़े अविश्वास से देखते हो। जीवन को देखने का ढंग साधारणतः संदेह से भरा है। और जहाँ संदेह खड़ा हो, वहाँ तुम जो भी करोगे वह कृत्य भक्त का न हो सकेगा। भक्त का कृत्य उठता है श्रद्धा से। वही कृत्य तुम दो तरह से कर सकते हो: संदेह से भर के भी कर सकते हो, श्रद्धा से भर के भी कर सकते हो। श्रद्धा से भर के किया कि कृत्य भक्त का हो गया। संदेह से भर के किया कि साधारण कृत्य हो गया।

तुमने किसी को दो पैसे भीख में दे दिये, ये तुम ऐसे भी दे सकते हो कि टालो; अब आदमी सिर पे खड़ा है, दो पैसे दे के निपटा लेना अच्छा है। तब भी तुमने दो पैसे दिये – मगर व्यर्थ! तुम कुछ भी न देते और इस आदमी पर श्रद्धा रखते, इस आदमी में आदमी देखते कम-से-कम, न देखते परमात्मा, तो कृत्य भक्त का हो जाता।

तुम क्या करते हो, उसका गुणधर्म तुम पे निर्भर है। देखो लोगों को, तुम्हारी आँख अगर श्रद्धा से भर के देखती है, प्रेम से भर के देखती है, सहानुभूति से भर के देखती है, तो कृत्य भक्त का हो गया। ऐसे ही धीरे-धीरे यही आँख तैयार होती

जाएगी और परमात्मा को खोज लेगी। परमात्मा छिपा नहीं है – सिर्फ तुम्हारी आँख तैयार नहीं है।

'सुख-दुख, इच्छा, लाभ आदि का पूर्ण त्याग हो जाए, ऐसे काल की बाट देखते हुए आधा क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए।'

'सुख-दुख, इच्छा, लाभ आदि का पूर्ण त्याग हो जाए...।'

भक्त त्याग कर नहीं सकता – हो जाए ...! भक्त का पूरा आधार यही है कि परमात्मा करेगा, मेरे किये क्या होगा! वह प्रार्थना करता है। यही साधक और भक्त का फर्क है। साधक चेष्टा करता है त्याग की, इच्छा छोड़ दूं। लेकिन तुम जरा समझो, जब तुम इच्छा छोड़ने की चेष्टा करते हो, तब तुमने एक नयी इच्छा को जन्म दे दिया: इच्छा छोड़ने की इच्छा। अब तुम फँसे जाल में। जब तुम वस्तुओं को छोड़ने का आग्रह करते हो, तब तुम्हें त्याग को पकड़ना पड़ता है। छोड़ने के लिए पकड़ना पड़ता है – और पकड़ ही छोड़नी थी। संसार छोड़ना चाहते हो तो तुम्हें स्वर्ग की कल्पना करनी पड़ती है, क्योंकि बिना तुम कुछ पकड़े छोड़ नहीं सकते।

फिक्र है जाहिद को हूरो-कौसरो-तसनीम की
और हम जन्नत समझते हैं तिरे दीदार को।

वह जो त्यागी है उसे तो स्वर्ग की अप्सराओं की आकांक्षा है, सुख के भोग, स्वर्ग के कल्पवृक्षों की।

फिक्र है जाहिद को हूरो-कौसरो तसनीम की
और हम जन्नत समझते हैं तिरे दीदार को

और भक्त तो कहता है, 'तू दिख गया – स्वर्ग हो गया! तेरा दर्शन काफी है।' भक्त तो कहता है, 'हमारी आँख मुझे देखने में समर्थ हो गयी – बस, सब हो गया! तुझे पा लिया तो सब पा लिया।'

साधक चेष्टा करता है, भक्त प्रार्थना करता है। भक्त कहता है, 'तू कुछ ऐसा कर कि इच्छा छूट जाए; हम तो छोड़ेंगे भी तो नयी इच्छा का बीजारोपण कर लेंगे।' भक्त कहता है, 'कुछ ऐसा कर कि व्यर्थ से छुटकारा हो जाए; क्योंकि हम तो ऐसे हैं कि हम सार्थक को भी पकड़ेंगे तो व्यर्थ हो जाएगा। हम सोना भी छूते हैं, मिट्टी हो जाता है। और सुना है कि तू मिट्टी भी छू देता है तो सोना हो जाता है। तो तू ही कुछ कर।'

प्रार्थना का राज यही है कि भक्त कहता है, 'हमारे किये कुछ भी न होगा। कितने जन्मों-जन्मों से तो हम करते रहे हैं! सब किया-कराया व्यर्थ चला जाता है। अखीर में हम दोहरा-दोहरा के वही कर लेते हैं जो हम नहीं करना चाहते थे। दूसरे पे क्रोध करना रोकते हैं तो अपने पे क्रोध होने लगता है, मगर क्रोध जारी रहता है। कामवासना को त्यागते हैं तो कामवासना से चित भर जाता है, छुटकारा नहीं होता।

एक कवि मुझे अपना संस्मरण सुना रहे थे। दिल्ली जाते थे, राष्ट्रीय कविसम्मेलन में भाग लेने। जिस कम्पार्टमेंट में थे, ग्वालियर से एक महिला और उसका बच्चा सवार हुआ। कवि बच्चे के साथ खेलते रहे, फिर साँझ ढल गयी, फिर अँधेरा होने लगा, फिर रात होने लगी। महिला सोने को तैयार हुई, लेकिन कुछ डरी और झिझकी-सी थी। कवि ने पूछा, 'क्या बात है? कुछ परेशानी है?' उसने कहा, 'नहीं कुछ परेशानी नहीं है। आप कहाँ जा रहे हैं?' तो कवि ने कहा, 'मैं दिल्ली जा रहा हूँ राष्ट्रीय कविसम्मेलन में भाग लेने के लिए।' उस महिला ने कहा, 'तब तो कोई फिक्र नहीं। कवि हैं, फिर तो कोई खतरा नहीं।' वह लेट गयी, सो गयी।

वे कवि मुझसे कहने लगे, 'मुझे बड़ा धक्का पहुँचा कि उस स्त्री ने कहा, कवि हैं तब तो फिर कोई खतरा नहीं।'

तो मैंने कहा कि तुम स्त्री की बात को कुछ गलत समझे – साधु-महात्मा होता तो खतरा था। कवि हो, तो जिंदगी को भोग ही रहे हो, स्त्री कोई त्याज्य वस्तु नहीं है। और स्त्री का अनुभव हो जाए तो मुक्ति हो जाती है। धन का अनुभव हो जाए तो धन पे पकड़ खो जाती है। स्त्री ने ठीक ही कहा; बड़ी समझदार रही होगी। तुम समझे नहीं उसकी बात को। उसने तुमसे कुछ नहीं कहा, साधु-महात्माओं के खिलाफ कुछ कह दिया।

जो दबाओगे वह भीतर घाव बन जाता है। तुम खुद ही अपने भीतर खोज ले सकते हो : जो भी तुमने दबाया है वही तुम्हारी छाया बन जाती है।

पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने जो कुछ महत्वपूर्ण खोजें कीं, उनमें एक खोज है : दी शैडो–छाया। वे कहते हैं, हर आदमी की एक छाया है। सूरज की धूप में जो छाया बनती है वही नहीं। हर आदमी की एक छाया है– उसने व्यक्तित्व के जिन अंगों को अंगीकार नहीं किया, वे छाया की तरह उसका पीछा करते हैं। उसने व्यक्तित्व की जिन-जिन बातों को हटा दिया है अपने से दूर, दबा दिया है अपने से दूर, अचेतन में सरका दिया है, तलघरे में डाल दिया है – वे उसकी छायाएँ हैं, वे सदा उसका पीछा करती हैं।

अगर तुमने क्रोध को दबा दिया, तो क्रोध सदा तुम्हारे पीछे खड़ा है प्रतीक्षा की राह में, कभी भी, किसी भी क्षण प्रगट हो जाएगा मौका देख कर। अगर काम को दबा दिया तो काम तुम्हारी छाया बन जाएगा। और जिसने इस तरह से अपने व्यक्तित्व को तोड़ लिया है, खंड-खंड कर लिया है, वह उस अखंड को कभी भी न जान पाएगा। अखंड को जानने के लिए अखंड होना जरूरी है। छाया को आत्मसात करना होगा। वह जो तुमने अपने से अलग कर दिया है वह तुम्हारा है, उसे फिर से अपने में लीन करना होगा। उसको जब तक तुम अलग रखोगे तब तक तुम झूठे रहोगे। हर बच्चे को करना पड़ता है अलग, मजबूरी है। मगर सदा अलग रखने की कोई मजबूरी नहीं है; जब समझ आ जाए तो उसे आत्मलीन करन की जरूरत है।

छोटा बच्चा है, माँ-बाप की अपेक्षाएँ हैं। वह कुछ करता है; माँ-बाप चाहते है, कुछ और करे। वह वक्त-बेवक्त हँस देता है; माँ-बाप कहते हैं, चुप रहो, मेहमान घर में हैं। तो बच्चे को अपने को दबाना शुरू करना पड़ता है। हर बात हर जगह नहीं कही जा सकती, तो बच्चे को अपने भीतर खंड करने पड़ते हैं। बच्चे को एक बात समझ में आ जाती है : कुछ त्याज्य है जो स्वीकार-योग्य नहीं है, और कुछ स्वीकार-योग्य है जो न भी आता हो तो प्रदर्शन करना जरूरी है; जहाँ हँसी न भी आती हो वहाँ हँसना जरूरी है; जहाँ रोना आ रहा हो वहाँ रोना रोक लेना जरूरी है; जहाँ क्रोध आता हो वहाँ शांति रखनी जरूरी है। ऐसी बातें बच्चे को धीरे-धीरे अपने ही अंगों को काटने के लिए मजबूर कर देती हैं, बच्चा झूठा हो जाता है, अप्रमाणिक हो जाता है।

यह तुम्हारा जो कटा हुआ हिस्सा है, यह तुम्हारा यथार्थ है, इसको लीन करना जरूरी है। साधक इसको काटता चला जाता है, भक्त इसको लीन कर लेता है। भक्त कहता है, 'मेरे किये क्या होगा! मैं तो यह खड़ा हूँ – जैसा भी हूँ, पापी, बुरा-भला – तुम स्वीकार करो! तुमने ही बनाया ऐसा, तुम ही मार्ग दो। तुमने ही गिराया, तुम ही उठाओ।'

भक्त का यह भरोसा है कि जिसने जीवन दिया, क्या वह इतना-सा न कर सकेगा, कि गिरे को उठा ले; जिसने हड्डियों में प्राण फूंके, जिसने मिट्टी को जीवंत किया, क्या उससे इतना भी न हो सकेगा कि मैं जैसा हूं मुझे ऐसा ही स्वीकार कर ले। फिर मिट्टी भी उसी की है, वासना भी उसी की है, कामना, क्रोध भी उसी का है! और मुझसे यह अपेक्षा रखनी कि मैं कुछ कर पाऊँगा, असंभव है!

क्योंकि क्रोधी आदमी क्रोध पर विजय पाने के लिए भी क्रोध का ही उपयोग करेगा। हिंसक हिंसा से मुक्त होने के लिए भी हिंसा का ही उपयोग करेगा, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

अगर तुम्हें अपने ही हाथों से अपने जूते के बंद पकड़ के खुद को उठाना है तो कैसे उठ पाओगे? थोड़ा उछल-कूद भला कर लो! जिनको तुम साधु-महात्मा कहते हो, बस थोड़ी उछल-कूद है! बार-बार जमीन पे पड़ जाते हैं! अपने ही हाथों से।

भक्त कहता है, 'तेरे ही हाथों के द्वारा उठना हो सकता है!'

इसलिए सूत्र कहता है : 'सुख-दुख, इच्छा, लाभ आदि का पूर्ण त्याग हो जाए, ऐसे काल की बाट देखते हुए आधा क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए।'

आधा क्षण भी बिना प्रार्थना के न जाए। जीवन छोटा है, करने को बहुत है। और एक क्षण बाद हम होंगे या नहीं होंगे, इसका भी कुछ पता नहीं। तो आधा

क्षण भी व्यर्थ न जाए, प्रार्थना-शून्य न जाए। तुम उठो, बैठो, चलो, कुछ भी करो, लेकिन प्रार्थना अहर्निश तुम्हारे भीतर डोलती रहे।

आज व्योम के मरुमानस में
इंद्रधनुष उग आया
आत्मचेतना बिना प्राण का
रस निःशेष न होता
शेष मानते जिसे, वही छिप
अंतरतम में सोता
यह मन्मथ के कुसुमायुद्ध की
बिंबित सुंदर छाया
ज्योतितिमिर की संधिमात्र ही
नामरूप का कारण
'केवल' ही कर सकता अपना
बंधन सहज निवारण
भुने बीज के उर में अंकुर
कब किसने उकसाया?
कब विराग का बाँध मुखौटा
विकल राग छिप पाया!

छिपाने की चेष्टा मत करना; अन्यथा विराग का मुखौटा बंध जाएगा, राग भीतर रहेगा। केवल वही – केवल परमात्मा ही – मुक्ति ला सकता है। जहाँ से जीवन का जन्म है, वहीं से मुक्ति का भी। जहाँ से वासना का जन्म है, वहीं से ब्रह्मचर्य का भी। यह भक्त की आस्था है कि भक्त कहता है, परमात्मा ही कुछ करेगा; मैं प्रार्थना कर सकता हूँ।

लेकिन अगर तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण है तो पूर्ण होती ही है। तुमने कभी पुकारा ही नहीं। तुमने कभी हृदय भर के माँगा ही नहीं। कभी तुमने अपने-आप को पूरा उसके हाथ में सौंपा ही नहीं। तुमने कभी हृदयपूर्वक उससे कहा ही नहीं कि आओ, मुझे बदलो! मैं बदलने को तैयार हूँ, लेकिन जानता नहीं, कैसे बदलूँ! मैं बदलने को तैयार हूँ, लेकिन बदलाहट मेरे बस के बाहर है! तुम्हीं आओ! तुम्हीं पाहुने बनो मेरे हृदय में! तुम्हीं मुझे बदलो!

भक्त का मार्ग सुगम है – बस, यह पहला कदम बड़ा कठिन है। तुम्हारे मन में ऐसा बना ही रहता है कि हम अपने सूत्रधार बने रहें। इसलिए साधक का अहंकार मरता ही नहीं; नये-नये रूप धरता है। कल संसारी था, अब संन्यासी हो जाता है। कल तक भोगी था, अब त्यागी हो जाता है, लेकिन नये रूप धर लेता है, नये मुखौटे पहन लेता है। लेकिन मैं कुछ करके रहूँगा, यह बात मिटती ही नहीं।

भक्त कहता है, 'मैं' झूठा भ्रम है। मैं हूँ कहाँ? तू ही है। तो तू ही कर!

'अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणीय सदाचारों का भलीभाँति पालन करना चाहिए।'

बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र है इसमें: आस्तिकता। महावीर ने नहीं गिनाया, बुद्ध ने नहीं गिनाया, पतंजलि ने भी छोड़ दिया है। अहिंसा सभी ने गिनायी है; दूसरे को दुख न देना, समझ में आता है। सत्य सभी ने गिनाया है; जो है, उससे विपरीत न कहना; जो है, उससे विपरीत न करना; जो है, उसको अन्यथा न बताना। शौच: आंतरिक पवित्रता – शरीर की, बाहर की, मन की, सब तरह की – बिलकुल ठीक है। दया: दूसरे के लिए जितना सुख हमसे बन सके, उतना देने की चेष्टा।

लेकिन आस्तिकता! इसको आचरण कहा नारद ने! यह बड़ी अनूठी बात है। और मेरे देखे बिना आस्तिकता के बाकी कोई भी हो नहीं सकता; अहिंसा, सत्य, शौच, दया, बिना आस्तिकता के हो नहीं सकते।

आस्तिकता का क्या अर्थ है?

आस्तिकता का अर्थ है: परमात्मा से 'हाँ' कहना, कि हाँ, मैं राजी हूँ; परमात्मा को 'नहीं' न कहना। वह जो कराए सो करना, वह जो न कराये सो न करना। उससे ही पूछ के चलना। अपनी बागडोर उसी के हाथ में दे देना। लगाम उसी को सौंप देना। फिर वह गड्ढों में गिराये तो गड्ढे स्वर्ग हैं। फिर वह नर्क ले जाए तो नर्क भी अहोभाग्य है। सब कुछ उसके हाथ में छोड़ देने का नाम आस्तिकता है।

आस्तिकता का इतना मतलब नहीं होता कि तुम कहते हो कि हाँ, ईश्वर को हम मानते हैं। अगर कोई आदमी तुमसे न कहे कि ईश्वर को मानता है या नहीं मानता है, क्या तुम उसके आचरण को देख के पता लगा पाओगे कि यह नास्तिक है या आस्तिक है? कोई पता न लगा पाओगे। नास्तिक भी वही जीवन जीते हैं, आस्तिक भी वही जीवन जीते हैं, फर्क तो कुछ दिखायी पड़ता नहीं; सिर्फ लफ्फाजी है, शब्दों का फर्क है। अगर तुम शब्दों को हटा दो और लेबिल न लगे हों कि यह आदमी नास्तिक है कि आस्तिक, तुम कोई फर्क न कर पाओगे। तुम्हें आस्तिकों में परम सुंदर व्यक्तित्वों के लोग मिल जाएँगे, नास्तिकों में मिल जाएँगे। तुम्हें भद्दे से भद्दे आस्तिक मिल जाएँगे और, भद्दे से भद्दे नास्तिक मिल जाएँगे। सदाचारी नास्तिक मिल जाएँगे, सदाचारी आस्तिक मिल जाएँगे। इनसे कुछ भी तय नहीं होता।

आस्तिकता का अर्थ है: नदी में तैरना नहीं, बहना; परमात्मा के खिलाफ न लड़ना, उसके हाथ में अपना हाथ दे देना; कहना, 'जहाँ तू ले चले ले चल; मुझे भरोसा है; मुझे आस्था है।'

आस्था बड़ी क्रांति है, महा क्रांति है। इससे बड़ी कोई छलांग नहीं। इससे बड़ा कोई रूपांतरण नहीं। क्योंकि यह कह देना कि मैं अलग नहीं हूँ इस अस्तित्व से,

एक हूँ; इससे भिन्न मेरी न कोई नियति है, न इससे भिन्न कहीं जाने का मेरा मन है; तू जो कराये ... ।

तुम ज़रा चौबीस घंटे भी आस्तिक हो के देखो। एक बार तय करो कि चौबीस घंटे में वह जो करायेगा, करेंगे, तुम निर्भार हो जाओ – चौबीस घंटे में ही तुम पाओगे कि तुम किसी और जगत का स्वाद ले आए; फिर तुम दुबारा वही न हो सकोगे जो तुम कल तक थे। क्योंकि तुम्हारी चिंताएँ, तुम्हारी बेचैनियाँ, तुम्हारी अशांतियाँ, 'मैं कुछ करके रहूँगा', इससे पैदा होती हैं। फिर नहीं कर पाते तो विषाद घेरता है, संताप घेरता है, हार पकड़ लेती है। जैसे ही तुमने कहा, 'जो तू करेगा, मेरा कोई चुनाव नहीं अब; तू मुझे अंगीकार कर ले और मुझे चला; मैं यह भी न कहूँगा कि तूने भटकाया, क्योंकि तू भटकाये तो इसका अर्थ हुआ कि भटकने में ही मेरी मंजिल होगी; मैं यह भी न कहूँगा कि अभी तक कुछ भी नहीं हुआ, क्योंकि नहीं हुआ तो शायद इसी ढंग से होने का रास्ता गुज़रता होगा!'...

भक्त का अर्थ है: अनन्य श्रद्धा। उसकी श्रद्धा को कहीं खंडित नहीं किया जा सकता। कोई घड़ी, घटना उसकी श्रद्धा को डाँवाँडोल नहीं करती।

आस्तिकता परम गुण है। नास्तिकता यानी 'नहीं' कहने की आकांक्षा। तुम सभी के मन में 'नहीं' पहले उठता है। 'नहीं' कहना हमेशा आसान है, क्योंकि अहंकार को अकड़ देता है। 'नहीं' कहा नहीं कि भीतर लगता है कि हम भी कुछ हैं। 'हाँ' कहा कि भीतर लगता है: गये! 'हाँ' में आदमी बह जाता है; 'नहीं' में अकड़ जाता है। तो जितनी 'नहीं' तुम अपने आसपास घेरते जाओगे उतना मजबूत अहंकार होता चला जाता है।

आस्तिकता यानी 'हाँ'; समग्र भाव से 'हाँ'।

'सब समय सर्वभाव से निश्चिंत हो कर भगवान का ही भजन करना चाहिए।'

महफिल में शमा, चाँद फलक पर, चमन में फूल
तसवीरे रूए अनवरे जानां कहाँ नहीं?

राम-राम जपने की बात नहीं है। यह नहीं कह रहे हैं नारद कि तुम बैठते-उठते राम-राम जपते रहो। ऐसे तो कई मूढ़ जप रहे हैं। उससे उन्हें कोई लाभ हुआ, इसका तो पता नहीं, सिर्फ बुद्धि उनकी जड़ हो गयी दिखायी पड़ती है।

'सब समय सर्वभाव से निश्चिंत हो कर भगवान का ही भजन करना चाहिए।' इसका अर्थ यह है: जहाँ तुम देखो, सब तरफ घूंघट उघाड़ के उसी को देखो, तो ही सर्वकाल में, सब जगह, उठते-बैठते, सोते, खाते-पीते भजन हो सकता है। अगर राम-राम, राम-राम जपोगे तो भी दो राम के बीच में जगह छूट जाएगी। कितने ही जल्दी रटो 'राम-राम, राम-राम' तो भी सर्वकाल में नहीं हो पायेगा; दो राम के बीच में जगह छूट ही जाएगी। तुम चाहे एक-दूसरे के ऊपर राम को चढ़ा दो, जैसे मालगाड़ी का ऐक्सीडेंट हो गया हो, डब्बे एक-दूसरे पे चढ़ गये हों, तो भी सर्व-

काल में सर्वभाव से नहीं हो सकेगा। कभी तो थक जाओगे। और ध्यान रखना, जब तुम थक जाओगे तो तुम विपरीत करोगे।

धर्म कुछ ऐसी कला है जिसमें थकान नहीं है। अगर थक गये तो विपरीत करना पड़ता है: दिन भर जागे, थक गये, तो रात सोना पड़ता है। राम-राम राम-राम जपते रहे, फिर थक गये, परेशान हो गये, तो फिर व्यर्थ की बातों में अपने मन को उलझाना पड़ता है।

एक ही उपाय है –

महफिल में शमा, चाँद फलक पर, चमन में फूल
तसवीरे रूए अनवरे जानां कहाँ नहीं?

तुम जहाँ भी देखो, चाहे फूल हो, चाहे शमा हो, चाहे चाँद हो, पशु-पक्षी हों, मनुष्य हों, पौधे हों, पत्थर हों – तुम जहाँ नजर डालो, जल्दी से घूंघट उठा के उसको देख लेना, आगे बढ़ जाना। धीरे-धीरे तुम्हारी आँखें ही घूंघट उठाने की कला सीख जाएँगी; तुम्हें घूंघट उठाना भी नहीं पड़ेगा, आँख पड़ी कि तुम घूंघट के पार देख लोगे: सब जगह उसी की छवि विराजमान है! तो तुम दूसरों में भी उसी को देखोगे, अपने में भी उसी को देखोगे। किसी दिन दर्पण के सामने खड़े-खड़े अपनी छवि में भी तुम्हें उसी की छवि दिखायी पड़ जाएगी। तब फिर सतत हो गया। अब यह करना नहीं है।

ध्यान रखना, जो करना पड़े वह सतत नहीं हो सकता। क्योंकि करने से तो थकोगे, छुट्टी माँगोगे। अब यह करने जैसा नहीं है; अब तो यह हो रहा है; यह तो अब अपने-आप घट रहा है – तो भजन!

'वे भगवान कीर्तित होने पर शीघ्र ही प्रगट होते हैं और भक्तों को अनुभव करा देते हैं।'

इस सूत्र को समझने में भूल हो सकती है। बहुतों ने भूल की है। सीधा अर्थ तो यह हुआ कि भगवान खुशामद से प्रसन्न हो जाते हैं।

'वे भगवान कीर्तित होने पर शीघ्र ही प्रगट होते हैं और भक्तों को अनुभव करा देते हैं।' इसका तो अर्थ हुआ कि बड़े स्तुतिप्रिय हैं, खुशामद की आकांक्षा रखते हैं, कि तुम उनका भजन करो तो वे जल्दी से खुश हो जाते हैं कि देखो, यह भक्त बड़ा शोरगुल मचा रहा है! नहीं, इसका यह अर्थ नहीं है।

तुम जब कीर्ति करते हो परमात्मा की, तब तुम खुल जाते हो। 'कीर्तित होने पर वे शीघ्र प्रगट होते हैं', इसका अर्थ हुआ कि कीर्तन करने से तुम्हारा हृदय खुल जाता है, वे तो प्रगट हैं ही। लेकिन जब तुम उनका स्मरण करते हो परम भाव से, तुम बंद नहीं रह जाते, तुम खुल जाते हो – उस खुलेपन में दर्शन हो जाता है।

परमात्मा तो वही है जो सदा मौजूद है; तुम किसी भाँति पीठ किये खड़े हो। जब तुम कीर्ति करते हो परमात्मा की, तुम्हारा मुख उसकी तरफ घूमने लगता है।

सूर्यमुखी का फूल देखा है? – सूरज की तरफ घूमता रहता है। इसलिए तो हम उसको सूर्यमुखी कहते हैं; उसका मुख सूरज की तरफ रहता है। ऐसा ही भक्त है; कीर्ति करते हुए वह परमात्मा की तरफ मुंह को रखे रहता है। और सूरज तो एक दिशा में है, परमात्मा तो सभी दिशाओं में है। तुम्हें एक दफा समझ में आ जाए सूत्र, तो जहाँ तुम देखते हो उसी को देखना – बस उसकी कीर्ति शुरू हो गयी।

कीर्ति का मतलब यह नहीं कि तुम कहो कि हम बहुत पापी हैं और तुम बड़े पतितपावन हो, इस सबसे कोई मतलब नहीं है। ये कहने की बातें नहीं हैं; कह के तो खराब हो जाती हैं – ये तो भीतर अनुभव करने की बातें हैं। तुम अनुभव करना। तुम्हारे जीवन में उसका यशगान गूंजने लगे! फूल को देखो तो तुम्हारे मन में धन्यवाद उठे: अहो, परमात्मा! चाँद को देखो तो धन्यवाद उठे: अहो! तुम्हारे जीवन में अहोभाव सतत निनादित होने लगे! इतना सौंदर्य चारों तरफ है और तुमने अहोभाव प्रगट नहीं किया! तुम्हारी आँखों पर कैसे परदे न पड़े होंगे! रोज सूरज उगता है, तुम नमस्कार में न झुके। रोज चाँद आया है, तुमने भर आँख उसे न देखा! सागर लहरें ले रहा है, निरंतर उसका निनाद चल रहा है, तुमने कभी अपने प्राणों में उसके निनाद को प्रवेश न दिया! चारों तरफ हज़ार-हज़ार रूपों में परमात्मा तुम्हें छूने को आतुर है – हवाओं की तरंगों में, सूरज की किरणों में–तुम बिलकुल जड़ बैठे हो, तुम्हें पक्षाघात लग गया है?

भक्ति का अर्थ इतना है केवल: थोड़े सजग बनो; थोड़ा तोड़ो यह जड़-पन; थोड़ा उठो, नाचो! वह नाच रहा है, तुम भी नाचो! वह गा रहा है, तुम भी गाओ! जब तुम्हारा गीत उसके गीत से मिलने लगेगा, जब तुम्हारा नाच उसके पैरों के साथ पड़ने लगेगा, तत्क्षण तुम पाओगे कि तुममें भी वही नाच रहा है।

यह मत सोचना कि तुम जब अहोभाव से भरते हो तो परमात्मा अहोभाव से नहीं भरता। तुम उसी के फैलाव हो, उसी का एक हाथ हो। तुम जब आनंदित होते हो, तुम्हारा हाथ जब स्वस्थ होता है, तो तुम्हारा पूरा प्राण भी आनंदित होता है।

भक्त और भगवान कोई दो बातें नहीं हैं – दो पंख हैं एक ही पक्षी के; दो पैर हैं एक ही व्यक्तित्व के।

कुछ तेरा हुस्न भी है सादा ओ मासूम बहुत
कुछ मेरा प्यार भी शामिल तेरी तस्वीर में!

भगवान परम प्यारा है, लेकिन भक्त का – 'कुछ मेरा प्यार भी शामिल तेरी तस्वीर में! भक्त भी उंडेलता है अपने को। यह एकतरफा सौदा नहीं है। यह एक-तरफा जाने वाला रास्ता नहीं है। दोनों तरफ से लेन-देन है। यह प्रेमी और प्रेयसी का लेन-देन है, भक्त और भगवान का लेन-देन है। ऐसा नहीं है कि तुम ही प्रसन्न होते हो जब भगवान तुम्हें उपलब्ध होता है – भगवान भी प्रसन्न होता है। यह अर्थ है कीर्तित होने से। जब तुम्हारे भीतर उसका अवतरण होता है, तुम नाच उठते

हो। वह भी नाचता है परम अहोभाव से: 'फिर कोई एक उपलब्ध हुआ! फिर कोई एक भूला-भटका वापस आया! फिर एक लहर, दूर निकल गयी थी, वापस लौट आयी!'

'यह प्रेमरूपा भक्ति एक हो कर भी तीनों कायिक, वाचिक, मानसिक सत्यों में, अथवा तीनों कालों में सत्य भगवान की भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।'

तीनों – कायिक, वाचिक, मानसिक; अथवा तीनों कालों में – भूत, भविष्य, वर्तमान – भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है! क्योंकि शेष सब तो मनुष्य के कृत्य हैं – भक्ति भगवान का कृत्य है। शेष सब मनुष्य को करना पड़ता है – योग, तप, त्याग, तपश्चर्या। भक्ति का बिलकुल दूसरा ही आधार है; मनुष्य छोड़ता है कि तू कर; मनुष्य सिर्फ करने देता है उसे, रोकता नहीं। शेष सब साधना-विधियाँ विधायक हैं। भक्ति सिर्फ अवरोध को हटाती है।

भक्त यह कहता है: मैं बाधा न दूंगा; बस इतना मेरा भरोसा मुझको है कि मैं बाधा न दूंगा; तू आयेगा तो मैं द्वार बंद न रखूंगा। मगर तुझे लाऊँ कैसे? द्वार खोल के आँख बिछा के तेरी राह में बैठा रहूँगा, अहर्निश बैठा रहूँगा! साँझ-सुबह, रात-दिन, चौबीस घंटे तेरी प्रतीक्षा करूँगा; लेकिन कहाँ से तुझे पकड़ के ले आऊँ, वह मेरा बस नहीं। तेरी कृपा होगी। तेरा गुणगान करूँगा। तेरे गीत गाऊँगा। तेरे लिए नाचूंगा। द्वार बंद न रहेंगे!

बस इतना भक्त कह सकता है। अवरोध न रहेगा मेरी तरफ से। तू आए और मुझे न पाए, ऐसा न होगा – मैं मौजूद रहूँगा।

शेष सारी साधना-पद्धतियाँ करने को कहती हैं; भक्ति, छोड़ने को। इसलिए नारद कहते हैं कि भक्ति श्रेष्ठ है, क्योंकि वह भगवान का कृत्य है। जैसे तुम अपने हृदय को खोल देते हो, वह जो लिखता है तुम लिखने देते हो। उसके हस्ताक्षर बन जाते हैं भक्त के ऊपर। इसलिए भगवान की प्रतिमा को भक्त जिस भाँति प्रगट करता है, कोई दूसरा साधक नहीं कर पाता।

'यह प्रेमरूपा भक्ति एक हो कर भी गुणमाहत्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, साख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदना-सक्ति, तत्मयासक्ति और परमविरहासक्ति–इस प्रकार से ग्यारह प्रकार की होती है।'

भक्ति तो एक ही है, लेकिन भक्त ग्यारह प्रकार के होते हैं। भगवान को जिस रूप में तुम भजना चाहो... । सूफी हैं, वे भगवान को प्रेयसी मानते हैं स्त्री के रूप में मानते हैं। ठीक; भगवान को इससे कुछ ऐतराज नहीं; क्योंकि भगवान दोनों है – स्त्री में भी है, पुरुष में भी है। सूफियों ने भगवान को प्रेयसी माना। उस तरह से उन्होंने यात्रा की।

भारत में प्रेयसी किसी ने माना नहीं। कृष्णभक्त हैं, वे उसे पुरुष मानते हैं – इस सीमा तक पुरुष मानते हैं कि बंगाल में एक संप्रदाय है कृष्णभक्तों का, जो

स्त्रियों जैसे कपड़े पहनता है; रात सोता भी है तो कृष्ण की मूर्ति को हृदय से लगा के सोता है। वह पति है; भक्त पत्नी है, सखी है, गोपी है। वह भी ठीक है। जिस विधि, जिसको सरल मालूम पड़े। यह भक्त के ऊपर निर्भर है, उसकी भाव-दशा पर निर्भर है।

परमात्मा तो सब है, लेकिन तुम अभी इतने विराट नहीं कि उसके सब रूपों को इकट्ठा अपने में ले सको; तुम्हें तो कहीं एक द्वार से प्रवेश करना होगा। उसके तो अनंत द्वार हैं, लेकिन सभी द्वारों से तुम प्रवेश न कर सकोगे। जिस द्वार से तुम्हें प्रवेश करना हो, तुम उस द्वार से प्रवेश कर जाओ – पहुँचोगे तुम एक पर।

ये ग्यारह द्वार नारद ने गिनाये हैं, इनमें करीब-करीब सब संभावनाएं आ जाती हैं। अपनी-अपनी संभावना चुन लेनी चाहिए। तुम्हें जैसा रुचे, परमात्मा तुम्हारी रुचि से राज़ी है। तुमने अगर उसे माँ की तरह पुकारा, काली की तरह पुकारा, तो वह माँ की तरह प्रगट होने लगेगा। इसका केवल इतना ही अर्थ हुआ कि तुम जो रूप-रंग उसे देते हो वह उसी रूप-रंग में प्रविष्ट हो जाता है। सभी रूप उसके हैं। रामकृष्ण को वह काली के रूप में प्रगट हुआ; वे माँ को पुकारते रहे; वे माँ का ही गीत गाते रहे। भक्त ढाँचा देता है।

ऐसा समझो कि तुम एक खिड़की बनाते हो अपने मकान की, फिर तुम खिड़की पे खड़े हो के आकाश को देखते हो, आकाश का तो कोई ढाँचा नहीं है, लेकिन तुम्हारी खिड़की का ढाँचा है। तुम्हारी खिड़की अगर चौकोर है तो चौकोर आकाश दिखायी पड़ता है, तुम्हारी खिड़की अगर गोल है तो गोल आकाश दिखायी पड़ता है; यद्यपि तुम्हारी खिड़की के कारण आकाश गोल नहीं हो जाता और न ही चौखटा हो जाता। और जब तुम्हें आकाश दिखाई पड़ जाएगा, तुम मदमस्त हो जाओगे, खिड़की से कूद जाओगे, खुले आकाश में आ जाओगे। वहाँ फिर कोई रूप नहीं है, अरूप है।

सगुण प्रारंभ है, निर्गुण अंत है। सगुण द्वार है, निर्गुण पहुँच जाना है। पर किसी भी ढंग से हो, किसी भी रंग से हो – हो।

> तू न कातिल हो तो कोई और ही हो
> तेरे कूचे की शहादत ही भली।

तेरी गली में भी मर गये, तो भी चलेगा। तू अगर अपने हाथ से भी न मारे तो कोई बात नहीं।

> तू न कातिल हो तो कोई और ही हो
> तेरे कूचे की शहादत ही भली।

– बस उसकी राह में कहीं खो जाना है। उस तक कोई कब पहुँचा है; कूचे में ही लोग खो गये हैं। उस तक पहुँचना संभव भी कहाँ है? तुम तो तुम रहते पहुँच न पाओगे – तुम खो कर ही पहुँचोगे। तुम तो कहीं राह में ही खो जाओगे।

कोई मनुष्य कभी भगवान से मिला नहीं। जब तक मनुष्य रहता है, भगवान नहीं; जब मनुष्य मिट जाता है, तब भगवान ...।

ऐसा ही समझो कि कोई बीज कभी अपने अंकुर से मिला? बीज मिट जाता है तो अंकुर। ऐसे ही मनुष्य जब मिट जाता है, तो अंकुरण होता है उस परमात्मा का। तुम्हारी मृत्यु में ही उसका आगमन है।

> तेरे कूचे की शहादत ही भली।

'सनत्कुमार, व्यास, शुकदेव, शांडिल्य, गर्ग, विष्णु, कौंडिण्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमान, विभीषण आदि भक्ति-तत्त्व के आचार्यगण लोगों की निंदा-स्तुति का कुछ भी भय न कर, सब एकमत से ऐसा कहते हैं कि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।'

'लोगों की निंदा-स्तुति का कुछ भय न कर...'। प्रेम के मार्ग पर सबसे ज्यादा निंदा-स्तुति है, क्योंकि संसार चलता है गणित से। संसार चलता है हिसाब-किताब से। संसार की व्यवस्था तर्क-सरणी है। और प्रेम सब सीमाएँ तोड़ के बहने लगता है। इसलिए संसार प्रेम को स्वीकार नहीं करता – साधारण प्रेम को ही स्वीकार नहीं करता, एक पुरुष-स्त्री के प्रेम को स्वीकार नहीं करता; परमात्मा और व्यक्ति के प्रेम को तो बिलकुल स्वीकार नहीं करता, क्योंकि यह तो सब किनारे तोड़ के बाढ़ बनना है। समाज घबड़ाता है। समाज मर्यादा चाहता है, और प्रेम अमर्याद है।

इसलिए जिसे समाज की निंदा-स्तुति का बहुत भय है, वह भक्त नहीं हो पाएगा। मगर करोगे क्या? समाज की स्तुति-निंदा को इकट्ठा करके करोगे क्या? मौत के क्षण में कुछ भी काम न आएगा। यहाँ भी कोई तृप्ति न मिलेगी। कितनी ही स्तुति समाज करे, पेट न भरेगा। कितनी ही तालियाँ लोग पीटें, प्राणों के फूल न खिलेंगे। कितना ही सम्मान हो और गले में फूलमालाएँ डाली जाएँ, तुम भीतर दरिद्र के दरिद्र ही रहोगे, तुम्हारा भिखमंगापन न मिटेगा।

तो जरा देख लेना कि कहीं समाज की निंदा-स्तुति में अपनी आत्मा को तो नहीं बेच रहे हो! कहीं ऐसा तो नहीं है कि उनकी स्तुति बड़ी महँगी पड़ती हो। पड़ती है। जितना-जितना तुम समाज की स्तुति की चिंता करते हो, उतना ही तुम छोटे होते चले जाते हो। जितना ही तुम डरते हो उतना तुम्हें और डराया जाता है। धीरे-धीरे तुम पंगु हो जाते हो। धीरे-धीरे तुम उड़ने की क्षमता खो देते हो। उड़ने का स्वप्न भी खो देते हो। धीरे-धीरे तुम समाज के कूड़ा-घर पर बैठे रहने को राज़ी हो जाते हो। इसे थोड़ा सोचना।

क्या करोगे, मिल भी गयी सारी स्तुति तो? क्या होगा? किसी ने निंदा न की तो क्या होगा? कोई तुम्हारी निंदा न करे, सभी तुम्हारी स्तुति करें, तो तुम्हें जीवन का अर्थ खुल जाएगा? क्या तुम्हारे प्राणों के कमल खिल जाएँगे? क्या तुम तृप्त हो जाओगे? होता उलटा ही है। जैसे-जैसे स्तुति मिलती है, वैसे-वैसे स्तुति की

व्यर्थता पता चलती है। जितना-जितना लोग तुम्हारा सम्मान करने लगते हैं, उतना-उतना तुम कारागृह में पड़ने लगते हो, उतनी-उतनी तुम्हारी मर्यादा संकीर्ण होने लगती है; उतना-उतना तुम्हें लगता है, अब तुम खिल नहीं सकते, अब हज़ार आँखें तुम पर हैं।

भक्त तो केवल वही हो सकता है जिसने एक बात का निर्णय कर लिया कि भीतर के आनंद के सामने और कोई भी चीज़ वरणीय नहीं है। भीतर का आनंद पहले है। परमात्मा से संबंध प्रथम है, फिर शेष सारे सम्बंध हैं। अगर उससे संबंध बन के सब संबंध बनते हों तो भक्त राजी है। अगर उससे संबंध टूटते हों, तो फिर कोई संबंध अर्थ का नहीं है।

जीसस ने कहा है : उस एक को खो कर तुम सब खो दोगे; और सब को खो कर भी अगर तुमने उस एक को पा लिया तो सब पा लिया।

'जो इस नारदोक्त शिवानुशासन में विश्वास और श्रद्धा करते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं।'

विश्वास और श्रद्धा पर ये सूत्र पूरे होते हैं। इन दो शब्दों को थोड़ा-सा समझ लेना जरूरी है।

विश्वास का अर्थ है : संदेह अभी मिट नहीं गये – संदेह हैं; लेकिन तुम संदेहों के बावजूद विश्वास करते हो। संदेह एकदम से मिट भी नहीं जा सकते; कोई जादू तो नहीं है; कोई मंत्र तो नहीं है कि मंत्र फेर दिया, दवा ले ली, ताबीज बाँध लिया और संदेह मिट गये। संदेह हैं, लेकिन संदेहों को चुनो या न चुनो, यह तुम्हारे हाथ में है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, संन्यास भी लेना है, संदेह भी है। मैं कहता हूँ, दोनों तुम्हारे भीतर हैं। संन्यास लेने का भाव भी उठा है ? वे कहते हैं, 'उठा है। कुछ विश्वास भी आता है, कुछ संदेह भी है।' मैं कहता हूँ, अब तुम्हें दो में से चुनना पड़ेगा। संदेह चाहो संदेह चुन लो। तब तुम अपनी आधी आत्मा को तड़फाओगे जो संन्यास लेना चाहती थी। संन्यास लेना हो संन्यास ले लो, तब तुम अपने आधे विचारों को तड़फाओगे, मन को, जो संदेह करना चाहता था। अब तुम्हें चुनना यह है कि संदेह तो तुम बहुत दिन करके देख लिये, क्या पाया ? अब थोड़ा विश्वास करके भी देख लो। एक मौका विश्वास को भी दो। संदेह ने तो सिर्फ सताया। संदेह से कोई सुख तो न जन्मा, कोई वर्षा तो न हुई, आषाढ़ के मेघ तो न घिरे, प्राणों की पृथ्वी तो वैसी की वैसी तड़फती रही, प्यासी रही। संदेह करके बहुत दिन देख लिया, अब विश्वास करके भी देख लो। एक मौका विश्वास को भी दो।

वे कहते हैं, 'लेकिन संदेह अभी मिटे नहीं।'

मैं उनसे कहता हूँ, 'सन्देह के बावजूद चुनाव तो करना ही होगा। और ध्यान रखना, जब तुम चुनाव भी नहीं करते, तब भी चुनाव तो हो ही रहा है। तुम कहते हो, अभी सोचूंगा, अभी चुनाव नहीं करता। लेकिन इसका मतलब हुआ कि तुमने सन्देह के पक्ष में चुनाव किया। बिना चुनाव किये तो एक क्षण भी तुम रह नहीं सकते। न चुनाव करो, तो यह चुनाव हुआ। मगर चुनाव तो हो ही रहा है।

तो एक मौका नये को दो, अपरिचित को दो, अनजान को दो! उस राह को भी एक मौका दो जिस पर तुम कभी नहीं गये। और जिस राह पर बहुत बार हो आये हो, कभी कुछ न पाया...।

जिस आदमी ने अब तक सन्देह किये हैं, अगर वह ठीक-ठीक सन्देह करना जानता हो तो अब सन्देह पर सन्देह आ जाना चाहिए। सन्देह पर सन्देह का नाम ही विश्वास है। यह श्रद्धा नहीं है, यह विश्वास है। सन्देह पर जिसे सन्देह आ गया; कर-कर के देखा, कुछ न पाया, आदत पुरानी है, किये चले जाते हैं; जिस राह से बहुत बार गये वहाँ आँख बंद करके भी चले जाते हैं तो चलना हो जाता है, कुशलता आ गयी है, आदत हो गयी है – लेकिन सोचो! अब संदेह का उपयोग करो। संदेह पे संदेह करो तो विश्वास पैदा होता है।

विश्वास सन्देह के विपरीत नहीं है, सन्देह के किनारे-किनारे है। सन्देह के बावजूद जब विश्वास की राह पे तुम चलते हो तो धीरे-धीरे अनुभव आता है कि ठीक हुआ कि अहोभाग्य मैंने विश्वास चुना। एक-एक कदम बढ़ते हो कि जीवन में नई हरियाली, नई ताजगी, नई किरणें उतरने लगती हैं। सन्देह जिनको तुम किनारे रख के आए थे, धीरे-धीरे भागने लगते हैं; जैसे प्रकाश में अँधेरा भागने लगता है। सूरज निकल आया और जैसे ओस-कण तिरोहित होने लगते हैं, ऐसे तुम्हारे सन्देह तिरोहित होने लगेंगे। जब सारे सन्देह तिरोहित हो जाएँगे तो विश्वास समाप्त हो जाता है, श्रध्दा का जन्म होता है।

विश्वास औषधि की तरह है। तुम बीमार हो, विश्वास औषधि की तरह है। फिर जब बीमारी चली गई, तब तुम बोतल को भी फेंक आते हो कचरा-घर में; फिर कोई जरूरत न रही।

स्वास्थ्य यानी श्रद्धा। श्रद्धा स्वास्थ्य की भाँति है। श्रद्धा में संदेह होता ही नहीं। विश्वास में संदेह किनारे-किनारे चलता है, समानान्तर चलता है। इसलिए जब तक श्रद्धा न आ जाए, तब तक बड़ा सचेत रहने की ज़रूरत है। श्रद्धा आ गई, फिर आंख मूँद के, चादर तान के सो जाओ। फिर कोई प्रश्न न रहा। बीमारी गई। तुम प्रकाश से मंडित हुए।

'जो इस नारदोक्त शिवानुशासन में विश्वास और श्रद्धा रखते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं, वे प्रियतम को पाते हैं।'

त्वरित घूमता चक्र, दृगों को
लगता ठहरा-सा है

त्वरित घूमता चक्र, दृगों को
ठहरा-सा लगता है
किन्तु क्रिया की निष्क्रियता में
परिणति ही समता है
मृत्यु असंगति नहीं, सहज वह
जीवन की संगति है
रति का मूल स्वभाव पूर्ण हो
बन जाती फिर यति है
कर्ता बनता सिद्ध कर्म ही
जब अकर्म बनता है
मुक्ति नहीं कुछ और, मात्र वह
प्रज्ञा की थिरता है

जहाँ-जहाँ तुम्हें विपरीत दिखाई पड़ रहा है, वहाँ-वहाँ विपरीत नहीं है — एक ही छिपा है।

तुमने कभी खयाल किया है कि अगर पंखा बिजली का तेजी से घूमे, घूमता जाए, तेज होता जाए, तो एक घड़ी आती है : थिर मालूम होने लगता है। ये दीवालें थिर लगती हैं। वैज्ञानिक कहते हैं, परमाणु बड़ी तीव्र गति से घूम रहे हैं। उनकी गति इतनी तीव्र है कि हम उनकी गति को देख नहीं पाते, सब थिर हो गया है।

अगर गति महान हो, आत्यन्तिक हो — थिर हो जाती है। अगर कामना पूर्ण हो, कामना से मुक्ति हो जाती है। अगर कर्म पूर्ण हो, अकर्म बन जाता है।

मुक्ति नहीं कुछ और, मात्र वह
प्रज्ञा की थिरता है।

और मुक्ति कहीं आकाश में नहीं है, कहीं दूर भविष्य में नहीं है। तुम्हारा बोध थिर हो जाए, ठहर जाए, निष्कंप लौ जलने लगे बोध की भीतर — बस मुक्त हो गए तुम।

परमात्मा तुमसे कहीं दूर नहीं — तुम्हारे होने का एक ढंग है। जब तुम अपनी परिपूर्णता में निखरते हो, तुम्हीं जब अपने अंधकार के ऊपर उठते हो, तो परमात्मा हो।

तो भक्त का जो आत्यंतिक अनुभव है, वह भगवान हो जाने का है। सब दूरी खोज के दिनों की है। जैसे-जैसे खोज समाप्त होने के करीब आती है, भक्त और भगवान एक होने लगते हैं।

इन सूत्रों को सुना। इन सूत्रों पे मनन करना। इन सूत्रों को धीरे-धीरे अपनी जीवन की शैली में, सँभालने की कोशिश करना। जितना बन सके, उतना समय परमात्मा की स्मृति में, जितना बन सके उतना परमात्मा को देखने में, सब जगह

उघाड़-उघाड़ के, जहाँ देखने की कठिनाई भी मालूम पड़ती हो, पत्थर में, चट्टान में, वहाँ भी गौर से देखना — दिखेगा।

इसलिए तो हमने सारी मूर्तियाँ पत्थर की बनाई हैं परमात्मा की, क्योंकि पत्थर में भी वह है। वहाँ भी मूर्ति को खोजने की बात है; छिपा है, जरा छैनी चलाने की बात है। छैनी ले के जाने की जरूरत नहीं — तुम्हारी आँख ही छैनी हो सकती है। जरा गौर से देखना : जहाँ कहीं रूप-रंग भी दिखाई नहीं पड़ता, वहाँ भी प्रगट हो जाता है। और जल्दी थक मत जाना, अधैर्य मत करना। धीरज और अनंत प्रतीक्षा।

मत कर धीमा गीत, अभी तो मंजिल दूर बहुत है
पी कर स्वर का स्नेह पंथ का
हृदय सदय हो जाता
रागों के मेले में नभ का
सूनापन खो जाता
मत रख पूजा-थाल अभी तो
धूप कपूर बहुत है।

आज इतना ही

दिनांक २२ मार्च, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना
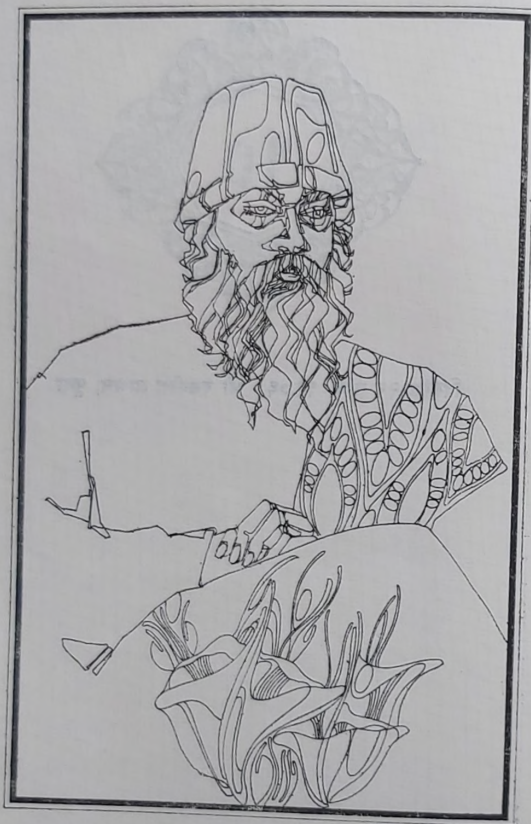
प्रश्न-सार

परम विरहासक्ति क्या है?

ध्यान की गहराई की अवस्था स्थायी कैसे हो?

क्या मुक्ति के लिए अन्ततः आराध्य की छवि का विसर्जन भी अनिवार्य है?

आपके समीप आ कर आपकी ओर देखा ही न गया। ऐसे क्यों हो जाता है?

आपको रोज़-रोज़ सुनते हैं, देखते हैं; फिर भी जी क्यों नहीं भरता? और कहीं बाहर भी चले जाते हैं तो भी जी यहीं क्यों लगा रहता है?

नारद के बहुआयामी व्यक्तित्व पर कुछ प्रकाश डालें।

भक्त ध्रुव की पुराण-कथा पर कुछ प्रकाश डालें।

भक्ति : अहोभाव, आनंद, उत्सव

पहला प्रश्न : परम विरहासक्ति पर कुछ कहने की कृपा करें।

उस प्यारे की मौजूदगी प्यारी है, तो गैर-मौजूदगी भी प्यारी होगी। जिसने उसे चाहा है, अनुपस्थिति में उसकी चाह और बढ़ेगी, घटेगी नहीं। चाह की कसौटी यही है। लेकिन चाह तो तुमने जानी नहीं, कामना जानी है। कामना की खूबी यह है: मिल जाए, जिसे तुमने माँगा है, तो माँग टूट जाती है, समाप्त हो जाती है। धन मिल जाए, धन व्यर्थ हो जाता है। प्रेमी मिल जाए, प्रेमी व्यर्थ हो जाता है। कामना पा भी ले, तो भी खाली रह जाती है। प्रार्थना न भी पाए, तो भी भरी है।

विरहासक्ति का अर्थ है कि भक्त भगवान को तो प्रेम करता ही है, उसकी गैर-मौजूदगी को भी प्रेम करने लगता है। उसकी गैर-मौजूदगी भी उसकी ही गैर-मौजूदगी है। उसका न दिखायी पड़ना भी उसका ही न दिखायी पड़ना है। पूर्ण है वह, शून्य भी उसका ही है। सब भाव उसका है, अभाव भी उसका ही है। फिर जो वह दे, उसी में भक्त राजी है।

भक्त का भाव यही है कि तू जो कराये, रुलाये, दूर रखे, हँसाए कि पास रखे, तृप्त करे कि अतृप्ति की आग जलाए, वर्षा बन के आए कि प्यास बन के उठे – तेरी मर्जी पर मेरा होना है! तो भक्त यह नहीं कहता कि मेरी मर्जी मान और प्रगट हो। वह कहता है, तेरा अप्रगट होना भी प्यारा है, हम इसे ही प्यार कर लेंगे। हम तेरी अनुपस्थिति में भी नाचेंगे और गुनगुनाएँगे!

और जब तक तुम उसकी अनुपस्थिति को प्रेम न कर पाओगे, तब तक वह उपस्थित न हो सकेगा। यही भक्त की कसौटी है। इसलिए विरहासक्ति ...।

विरह से भी आसक्ति हो जाती है। आँसुओं से भी प्रेम हो जाता है। तुमने भक्त को रोते देखा हो, वह दुख में नहीं रो रहा है। उसके आँसू खुशी के आँसू हैं। उसके आँसू फूलों जैसे हैं, चाँद-तारों जैसे हैं। उसके आँसुओं में फिर से झाँको। उसकी आँखों में कोई शिकायत नहीं है, अनुग्रह का भाव है : 'तूने रुलाया, यह भी

क्या कुछ कम है! क्योंकि बहुत आँखें हैं, बिना रोये ही रह जाती हैं। बहुत आँखें हैं जिन्हें आँसुओं का सौभाग्य ही नहीं मिलता। तूने दूर रखा, तड़फाया, इसी तड़फ से तो भक्ति का जन्म हुआ। इसी से तो तेरे पास आने की महत् आकांक्षा जगी, अभीप्सा पैदा हुई। तो दूर रखने में भी तेरा कोई राज होगा। तेरी मर्जी पूरी हो!'

जीवन को देखने के दो ढंग हैं। एक धार्मिक व्यक्ति का ढंग है; वह काँटों में भी फूल खोज लेता है। और एक अधार्मिक व्यक्ति का ढंग है; वह फूलों में भी काँटे खोज लेता है। देखने पर सब कुछ निर्भर है।

सुकूने कल्ब को हलकी सी भी उम्मीद काफी है
कि नूरे सुबह की पहली किरण बारीक होती है।

हृदय में चैन हो, हृदय में शांति हो, धैर्य हो, तो छोटी-सी उम्मीद भी बहुत है। स्वभावतः सुबह की पहली किरण बहुत बारीक होती है। उतनी बारीक किरण भी सूरज की खबर है। दिखायी भी नहीं पड़ती, भासमान होती है – पर सूरज की खबर है।

भक्त को परमात्मा की अनुपस्थिति भी परमात्मा की ही खबर है।

सुकूने कल्ब को हलकी सी भी उम्मीद काफी है
कि नूरे सुबह की पहली किरण बारीक होती है।
जो गम हद से ज्यादा हो खुशी नजदीक होती है
चमकते हैं सितारे रात जब तारीक होती है।

– और जब रात बहुत घनी अँधेरी होती है तो तारे खूब चमक के प्रगट होते हैं। परमात्मा की अनुपस्थिति की जब भाव-दशा पकड़ लेती है तो उसकी उपस्थिति इतनी प्रगाढ़ हो के मालूम होती है जितनी कभी भी नहीं मालूम हुई। विरह में भी मिलन है। अँधेरी रात में भी उसके तारे चमकते हैं। जब सब खोया हुआ लगता है तब भी वह पाया हुआ ही मालूम होता है।

लेकिन हमारे जीवन का दृष्टिकोण, हमारे देखने का ढंग अति सांसारिक है। और वहाँ तुमने जो पाठ सीखा है वह पाठ बड़ा खतरनाक है। ठीक इससे उलटी दशा धर्म की यात्रा की है।

संसार में जब तक कोई चीज मिलती नहीं है तब तक तो तुम बहुत उसके लिए तड़फते हो – पाने के लिए तड़फते हो, किसी तरह अभाव मिट जाए! धन नहीं है तो तुम धन के लिए तड़फते हो, क्योंकि निर्धनता को मिटाना है। निर्धनता से तुम राजी नहीं होते, निर्धनता से नाराज रहते हो। निर्धनता रोग की भाँति है, उसे मिटाना है। इसलिए धन चाहिए। निर्धनता से तुम लड़ते हो, ताकि धन पैदा कर सको। पर देखा तुमने, जब धन हाथ में आ जाता है तो पता लगता है : राख लगी, कोई हीरे-जवाहरत न लगे, धूल लगी। जब नहीं था धन तब निर्धनता से

लड़ते रहे। जब धन मिलता है तो धन व्यर्थ हो जाता है।

यह तुम्हारा सामान्य जीवन का अनुभव है। इससे ठीक उलटा अनुभव धार्मिक का है। धार्मिक परमात्मा की अनुपस्थिति से लड़ता नहीं; वह कहता है, यह अनुपस्थिति भी उसकी ही है, लड़ना कैसा, लड़ना किससे? यह भी वरदान उसी का, यह भी आशीष उसी की है।

अनुपस्थिति में विरोध नहीं है – अनुपस्थिति में उसे खोजना है; छिपा होगा कहीं; किरण बहुत बारीक होगी; होगा तो ही ...। ऐसा तो कोई स्थान नहीं हो सकता जहां वह न हो। अपनी आँखें कमजोर होंगी। अपने देखने में बल न होगा। अपनी आँख पे परदे होंगे। अपनी समझ धुंधली होगी। अपना बोध का दीया थिर न होगा, कँपित होती होगी भीतर की चित्त-दशा, प्रज्ञा ठहरी न होगी। लेकिन भगवान तो अपनी अनुपस्थिति में भी मौजूद होगा, क्योंकि ऐसी तो कोई जगह नहीं है जो उससे खाली हो। वह पास से भी पास, दूर से भी दूर; मिला हुआ भी है, खोया हुआ लगता है।

तो भक्त अनुपस्थिति से लड़ता नहीं, वह उसकी अनुपस्थिति को भी नृत्य बना लेता है। विरहासक्ति! वह विरह से भी आसक्त हो जाता है। वह अपने आँसुओं में भी नाचता है। उसके आँसू भी गुनगुनाते हुए हैं। उसके आँसुओं में दुख मत देख लेना, अन्यथा तुम उसके आँसुओं को न समझ पाओगे। उसके आँसुओं में इस बात की खबर है कि तू कितना ही छिपाए, अपने को छिपा न सकेगा; तू कितना ही परदे डाले, धोखा न दे सकेगा। हम तेरी अनुपस्थिति में भी तुझे खोज लेते हैं, तो तेरी उपस्थिति की तो बात ही क्या करनी!

अनुपस्थिति परमात्मा के विपरीत नहीं है, जैसा धन निर्धनता के विपरीत है। और इसलिए जब भक्त परमात्मा को उपलब्ध होता है तो वैसी हालत नहीं आती जैसे धन को उपलब्ध हो के आती है। धन व्यर्थ हो जाता है मिलते ही। धन का सारा मजा उसके न मिलने में है; जब तक नहीं मिलता तभी तक महिमापूर्ण मालूम होता है; जैसे मिला, कचरा हो जाता है!

परमात्मा के न मिलने में भी अहोभाग्य है, मिल जाने का तो फिर कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता। भक्त कहता है, तू जिस हाल रखे, हम उस हाल में राजी हैं। भक्त कहता है, हमारी गुनगुनाहट को तू छीन न सकेगा।

> होंगी इसी तरह से तै मंजिलें ओज की तमाम
> हाँ यूं ही मुस्कराये जा, हाँ यूं ही गुनगुनाये जा!

–सारे पड़ाव पार कर लिये जाएँगे, सारी मंजिलें पार कर ली जाएँगी।

> होंगी इसी तरह से तै मंजिलें ओज की तमाम
> हाँ यूं ही मुस्कराये जा, हाँ यूं ही गुनगुनाए जा!

भक्त का आनंद सतत है। उसमें विच्छेद नहीं है। अँधेरा हो तो, रोशनी हो तो; सुबह हो तो, साँझ हो तो; बहार आए तो, पतझड़ आए तो – भक्त के लिए भेद नहीं पड़ता, क्योंकि वह हर चेहरे में उसको पहचान लेता है – जीवन आए तो, मौत आए तो! भक्त का अर्थ यही है: जिसे अब भगवान धोखा न दे सकेगा।

साधक और भक्त में यहीं भेद हैं। साधक अपने संकल्प से जीता है; भक्त, समर्पण से। साधक कहता है, पा के रहेंगे। साधक की भाषा में संसार छिपा है। जैसे वह धन को पाता था, वैसे ही धर्म को भी पा कर रहेगा। जैसे वह यश, पद, प्रतिष्ठा खोजता था, ऐसे ही प्रभु को भी खोजेगा। लेकिन उसकी खोज का सूत्र पुराना है: 'मैं पा कर रहूँगा! मेरे बिना किये क्या होगा? मैं करूँगा तो होगा।'

भक्त तो सारा हिसाब बदल देता है। भक्त कहता है: समर्पण! मेरे किये कुछ न हुआ। देखा बहुत कर-कर के, हाथ कुछ भी न आया; जैसे रेत से तेल निचोड़ते रहे, समय व्यर्थ हुआ, शक्ति का अपव्यय हुआ, कहीं पहुँचे न। अब तुझ पे छोड़ देते हैं। अब हम नाचेंगे! अब हमने पाने की भी फिक्र छोड़ी! अब हम न पाएँ तुझे तो भी कोई फर्क न पड़ेगा, तू हमें मिला है!

साधक की भाषा है—

> अपने ऊपर कर भरोसा, जज्बे दिल से काम ले
> यूँ न साकी आयेगा, उठ बढ़ के मीना थाम ले।

–साधक की भाषा है: अपने ऊपर भरोसा कर, हिम्मत से काम ले, संकल्प को जगा; ऐसे बैठे-बैठे कुछ न होगा।

> यूँ न साकी आयेगा, बढ़ के मीना थाम ले।

छीना-झपटी करनी होगी। यह मधु-पात्र ऐसे अपने-आप तेरे सामने न आएगा। उठ! संकल्प कर! छीन ले! संघर्ष कर!

यह साधक की भाषा है। भक्त को इस भाषा में ही संसार मालूम होता है: 'परमात्मा से भी छीनना होगा?' यह साकी ऐसा साकी तो नहीं जिससे छीनना पड़े। भक्त कहता है, 'यह तो बात की लज्जत ही न रही। परमात्मा से छीनना पड़ा, तो मिला-न-मिला बराबर हो गया। छीन-झपट से जो मिले उसका तो सौंदर्य ही चला गया। उसका प्रसाद हो! माँगना भी न पड़े। माँग भी यही कहती है कि छीन-झपट किसी-न-किसी तल पर जारी है। कहना भी न पड़े, इशारा भी न करना पड़े। वह दे, अपने से दे, मना के दे!'

भक्त की भाषा है –

> सामने तेरे भी इक दिन दौरे महबा आएगा
> तू अभी समझा नहीं साकी का ईमां, सब्र कर।

–अभी तू उसके प्रेम को, उसके नियम को समझा नहीं; थोड़ा धीरज रख!

सामने तेरे भी इक दिन दौरे महबा आएगा – वह मधु-पात्र सामने तेरे अपने-आप आ जाएगा, तू थोड़ा धीरज रख। तू ज़रा उसके नियम की तरफ देख।

सब्र ही भक्ति की पात्रता है, अनंत धैर्य ! तुम अगर एक क्षण को भी उसके अनंत धैर्य से भर जाओ, तो उसी क्षण उपलब्धि हो जाएगी । उपलब्धि में परमात्मा बाधा नहीं है, तुम्हारा अधैर्य बाधा है । इसलिए विरह से भी आसक्ति हो जाती है । भक्त विरह के गीत गीता है । वह विरह के आसपास भी सजावट कर लेता है । वह अपने रोने को भी सम्हाल के रखता है । वह अपने रुदन को भी, अपनी आहों को भी प्रार्थना बना लेता है । वह अपने रुदन के, अपने आँसुओं के ईंटों से ही अपने मंदिर को बना लेता है । वह उससे भी राज़ी है । वह यह नहीं कहता कि देखो, मैं कितना रो रहा हूँ । वह यह कहता है कि और रुलाओ मुझे । देखो, कितना हलका हो गया हूँ रो-रो कर ! कितना रूपांतरित हुआ हूँ ! तुम जल्दी मत करना । कोई जल्दी नहीं है । तुम मुझे पूरा बदल के ही आना !

वह आने की बात ही परमात्मा पे छोड़ देता है; अपने हृदय को खोल देता है, प्रतीक्षा करता है ।

भक्ति प्रतीक्षा है, प्रयास नहीं । भक्ति समर्पण है, संकल्प नहीं । और भक्ति से बड़ी कोई कीमिया नहीं है; क्योंकि भक्ति का मूल आधार ही, सांसारिक मन का आत्मघात हो जाता है । सांसारिक मन कहता है, करने से कुछ होगा । भक्ति कहती है, करने से कुछ भी नहीं हुआ । सांसारिक मन कहता है : अहंकार ! नये-नये नाम रखता है; कभी कहता है, संकल्प की शक्ति; कभी कहता है, हिम्मत, साहस, व्यक्तित्व, आत्मा – हज़ार नाम रखता है, लेकिन सबके भीतर तुम अहंकार को छिपा हुआ पाओगे, सबके भीतर 'मैं' मौजूद है, 'मैं' की कम-ज्यादा मात्रा मौजूद है । और वही बाधा है ।

भक्त कहता है, 'मैं नहीं, तू । जब मैं ही नहीं हूँ तो क्या विरह और क्या मिलन?'– मिलन हो गया ! जहाँ 'मैं' मिटा वहीं मिलन हो गया । और जिसे विरह में परमात्मा दिखायी पड़ गया, उसके मिलन की तो बात ही न पूछो ! वह बात तो बात करने की न रही । उसके संबंध में कुछ भी न कहा जा सकेगा ।

मीरा के सारे गीत विरह के गीत हैं – इतने मधुर, इतने गरिमापूर्ण ! सब विरह के गीत हैं । चैतन्य का नृत्य विरह का नृत्य है । मिलन के बाद तो कोई नाच ही नहीं सका । नाच भी मुश्किल हो जाता है । विरह में नाच लो थोड़ा-बहुत । विरह में बोल लो थोड़ा-बहुत; मिलन पर तो बोल बंद हो जाते हैं; मिलन तो अबोल कर जाता है; मिलन में तो सब शून्य हो जाता है । बूंद जब सागर में खो गयी, खो गयी ! अब कहाँ नाचेगी, अब कहाँ कूदेगी ? अब कहाँ वीणा बजेगी ? अब कहाँ नृत्य होगा, कहाँ गीत सजेंगे ? मीरा जब खो गयी सागर में तो खो गयी ! वे जो मीरा के गीत हैं, सब विरह से उत्पन्न हुए हैं; स्वभावतः विरह से भी आसक्ति हो जाएगी । इतना प्यारा था उसका न मिलना भी ।

जिसने उस प्यारे की तरफ थोड़े कदम बढ़ाए, उसे उसके न मिलने में भी आनंद हो जाता है ।

दूसरा प्रश्न : आपके सान्निध्य में ध्यान की गहराई का कुछ अनुभव होता है, लेकिन वह अवस्था स्थायी नहीं रहती । उसे स्थायी करने की दिशा में कृपया हमारा मार्गदर्शन करें !

स्थायी करना ही क्यों चाहते हैं ? स्थायी की भाषा ही सांसारिक है । क्षण भर को रहती है, उतनी देर अहोभाव से नाचें, उतनी देर कृतज्ञता से नाचें । उस क्षण में यह नया उपद्रव क्यों भीतर ले आते हैं कि स्थायी करना है ? जो मिला है उसकी भी पात्रता नहीं है ! अहोभाग्य कि पात्र न था, क्षण भर को उसके दर्शन हुए । नाचें ! गुनगुनाएँ ! आनंदित हों ! दूसरा क्षण इसी क्षण से निकलेगा, आएगा कहाँ से ? कल आज से ही पैदा होगा । अगर आज गीत से भरा था, तो कल इन्हीं गीतों से जन्मेगा । अगर आज तुम्हारे पैर में थिरक थी और घूंघर बँधे थे, तो कल पर भी उनकी छाया पड़ेगी । स्वभावतः कल तुम्हारे घूंघर की आवाज और सुदृढ़ हो जाएगी; बाँसुरी और भी गहरी बजेगी; मस्ती और भी गहरी उतरेगी !

कल आएगा कहाँ से ? इसलिए तुम कल की चिंता छोड़ दो । स्थायी करने की चिंता में ही खो रहे हो । स्थायी करने की चिंता का अर्थ हुआ कि अभी जब मौका मिला था वह भी गँवाया; उसके लिए तुम कल का विचार करने लगे कि आज तो हो रहा है, कल क्या होगा; अभी तो लगा है थोड़ा-सा सुर, कल क्या होगा !

मेरे पास रोज ही लोग आते हैं । सभी की यही तकलीफ है, क्योंकि संसार का यह गणित है : जो न हो उसकी चिंता करो; जो मिल जाए उसकी चिंता करो कि कहीं खो न जाए ! गरीब परेशान है कि धन मिल जाए; धनी परेशान है कि कहीं खो न जाए ! दोनों परेशान हैं । परेशानी जैसे हमारी आदत है । जैसे हम कुछ भी करें, परेशानी से हम न बचेंगे, परेशानी तो हम घूम-फिर के पैदा कर ही लेंगे ।

रोज कोई-न-कोई मेरे पास आ के कहता है कि 'ध्यान में बड़ा आनंद आ रहा है, लेकिन यह टिकेगा ?' क्यों आनंद को खराब कर रहे हो ? कल जब आएगा तब कल को देख लेंगे । और आज अगर तुम आनंदित हो सकते हो, कल भी तुम ही तो रहोगे न ? और आज अगर तुम आनंदित हो सकते हो, तो कल की ईंटें आज के ऊपर ही रखी जाएँगी, कल का भवन आज के ऊपर ही खड़ा होगा । तुम कृपा करके कल को भूलो !

कल, मन का उपद्रव है । कल तुम्हारा आज को खराब कर देगा । यह क्षण अगर शांति का था तो तुम डूबो, डुबकी लो, तुम रस-विभोर हो जाओ, तुम भूल ही जाओ समय को । इसी से आने वाला क्षण उभरेगा – और भी गहरा, और भी ताजा, और

भी मदहोश ! और एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए तो भविष्य की चिंता ही छूट जाती है ।

स्थायी करने का मोह भविष्य की चिंता है । क्षण काफी है । एक क्षण से ज्यादा किसको कब कितने क्षण मिलते हैं ? एक बार एक ही क्षण तो मिलता है तुम्हें । अगर एक क्षण में तुम्हें आनंदित होने की कला आ गयी, तो सारा जीवन आनंदित हो जाएगा । जिसको एक बूंद रंगने की कला आ गयी, वह सारे सागर को रंग लेगा । एक-एक बूंद ही तो हाथ में पड़ती है, उसको रंगते जाना । दो बूंद इकट्ठी भी तो नहीं मिलतीं कि अड़चन आए कि हम तो केवल एक बूंद को ही रंगना जानते हैं, दो बूंद एक साथ आ गयीं तो हम क्या करेंगे !

एक क्षण आता है एक बार; जब चला जाता है हाथ से तब दूसरा क्षण उतरता है । बड़ी संकीर्ण धारा है समय की ! दो क्षण भी तो साथ नहीं आते ।

एक क्षण को शांत होना आ गया – हो गयी स्थायी शांति ! हो गयी शाश्वत ! अब इसे कोई भी तुमसे छीन न सकेगा । हाँ, तुम ही छीन सकते हो । अगर तुम इस क्षण में आने वाले क्षण की चिंता से भर जाओ, चिंतातुर हो जाओ, तो तुमने यहीं खराब कर ली – फिर इस खराब किये हुए क्षण से अगला क्षण पैदा होगा, वह और भी खराब होगा ।

तो पहली बात : पूछो मत, स्थायी कैसे करना ! इतना ही पूछो कि इसी क्षण में कैसे डूबें ! डुबकी में ही स्थायित्व है ।

और दूसरी बात : 'आपके सान्निध्य में ध्यान की गहराई का कुछ अनुभव होता है... ।' जो मेरे सान्निध्य में होता है, वह मेरे कारण नहीं होता, होता तो तुम्हारे ही कारण है । जो तुम्हारे भीतर नहीं हो सकता, वह किसी के भी सान्निध्य में नहीं हो सकता । हाँ, मेरे सान्निध्य में सुविधा मिल जाती होगी – स्वयं से थोड़ा छूटने की, स्वयं के बंधन थोड़े ढीले करने की । मेरे सान्निध्य में थोड़ा-सा तुम अपनी पुरानी आदतों को किनारे हटा देते होओगे, बस ! होता तो तुम्हारे ही भीतर है ।

इसलिए जो मेरे सान्निध्य में होता है, अब यह एक नया उपद्रव खड़ा मत कर लेना कि घर जा के न होगा । मन तरकीबें खोजता है । मन कहता है, 'वहाँ हो गया था, उनके कारण हो गया था ।' पाप मुझे लगेगा ऐसे । तुम अगर नरक गये तो मैं जिम्मेवार होऊँगा ।

यहाँ तुम्हें जो थोड़ी-सी झलक मिल जाती है, उनमें मेरा कुछ हाथ नहीं है; सिर्फ तुम मेरी थोड़ी सुन लेते हो, इतनी ही तुम घर पे भी सुनना, बात हो जाएगी । इतना तुम थोड़ा-सा मुझे द्वार-दरवाजा देते हो, थोड़ा अपने को किनारे कर लेते हो, थोड़ा अपने को बीच से हटा लेते हो–कुछ होता है । घर पर भी इतना ही हटा लेना । यह तुम्हारे ही किए हो रहा है ।

छोटे बच्चे का कोई हाथ पकड़ लेता है और चला देता है – चलता तो बच्चा ही

है भीतर । दूसरे के हाथ से थोड़ा सहारा मिल जाता है, हिम्मत बढ़ जाती है, अनुभव आ जाता है । मगर ये हाथ जिंदगी भर पकड़ लेने को नहीं हैं । नहीं तो इससे घसिटना ही बेहतर था, कम-से-कम खुद तो घसिटते थे, अब यह एक और उपद्रव साथ लगा; एक दूसरे का हाथ, अब यह और मजबूरी हुई, और परतंत्रता हुई ।

नहीं, ऐसे किसी पर निर्भर मत हो जाना ।

मेरा तो सारा आयोजन यहाँ यही है कि तुम परम मुक्त हो सको; उसमें मुझसे भी मुक्त होना सम्मिलित है । अगर मुझसे बँध जाओ तो तुम तो और लंगड़े हो जाओगे; तुम वैसे ही लंगड़ा रहे हो, तुम वैसे ही पंगु हो, यह तो और पक्षाघात हो जाएगा ।

यहाँ थोड़ी-सी झलक लो, उसे झलक ही मानना; फिर उसे अपने एकांत में गहराना, ताकि तुम्हें यह भी अनुभव आ सके कि वह झलक तुम्हारे भीतर से ही आई थी । किसी के हाथ का सहारा मिला था – धन्यवाद ! लेकिन इससे ज्यादा निर्भरता न हो । ऐसे ही जैसे कि कोई बच्चे को तैराक पानी में डाल देता है, हाथ-पैर तड़फड़ाता है बच्चा – हाथ-पैर तड़फड़ाना ही तैरने की शुरुआत है । अकेला शायद उतर भी न पाता पानी में, डरता, घबड़ाता; पर कोई तैरने वाला पास में खड़ा है, हिम्मत... हिम्मत साथ दे गयी । जो हुआ है वह तो भीतर हो रहा है । दो-चार बार पानी में तैराक डालेगा, बच्चे के हाथ-पैर सुघड हो जाएँगे, फिर कोई जरूरत न रह जाएगी, फिर उसे खुद ही हिम्मत आ जाएगी । फिर तो वह दूर सागर भी पार कर ले सकता है ।

मैंने सुना है, एक गाँव में एक ग्रामीण किसान बैल को जोत कर अपने हल को चला रहा था । वह कोड़ा भी फटकारता जाता बैल पर और कभी कहता, 'हीरा ! जोर से'; कभी कहता, 'मोती ! जोर से'; कभी कहता, 'चंदा ! जोर से' ; कभी कहता, 'सूरज ! जोर से' । एक आदमी खड़ा देख रहा था । उसने कहा, 'इस बैल के कितने नाम हैं ?' उस किसान ने कहा, 'नाम तो इसका एक ही है – हीरा ।'

'तो बाकी इतने नाम किसलिए लेते हो ?'

तो उसने कहा, 'इसकी हिम्मत बढ़ाने को । इसकी आँखें तो बँधी हैं, यह समझता है और भी बैल लगे हैं । यह हिम्मत से चला जाता है ।'

बस इतना ही मेरा काम है – 'हीरा ! जोर से; मोती ! जोर से ।' लगे तुम अकेले ही हो । एक बार हिम्मत आ जाए तो तुम्हारी आँख की पट्टी खोल देंगे, कहेंगे, 'तुम ही चल रहे थे ।'

तीसरी बात : जल्दी मत करना । धैर्य बड़ी से बड़ी शिक्षा है धर्म के मार्ग पर । क्योंकि जिसको हम खोजने चले हैं, वह इतना विराट है कि तुमने अगर जल्दी माँग की, तो तुम्हारी माँग के कारण ही न मिल पाएगा । मौसमी फूल हम बो देते हैं, दो-चार-छह सप्ताह में फूल आ जाते हैं । लेकिन अगर चिनार के वृक्ष लगाने हों,

देवदार के वृक्ष लगाने हों, तो वर्षों लगते हैं। आकाश को छूने वाले वृक्ष लगाने हों तो उनकी जड़ें भी पाताल तक पहुँचनी चाहिए।

परमात्मा आखिरी मंजिल है; उसके पार फिर कुछ भी नहीं। इतनी विराट मंजिल को पाने चले हो, और इतने कृपण हो धैर्य के संबंध में, इतनी जल्दबाजी करते हो!

तुमने देखा भक्तों को, घर-घर में मंदिर बना के बैठे हैं, जल्दी से घंटी बजा लेते हैं, फूल चढ़ा देते हैं! उनके हाथ-पैर देखो, इतनी जल्दी में हैं वे कि उनके ये कृत्य देख के ही भगवान उनसे न मिलेगा! बुलाने में भी तो थोड़ा सलीका हो। उसे पुकारो, थोड़ा सोचो भी कि किसे पुकारा है! थोड़ा सौजन्य तो सीखो! इतना बड़ा निमंत्रण भेज रहे हो, ज़रा सोच-समझ के पाती लिखो!

लेकिन बड़ा अधैर्य है! तुम अगर अधैर्य पर विचार करोगे तो तुम्हें अपना सारा कृत्य बचकाना मालूम पड़ेगा। कोई रोज गीता पढ़ लेता है, कोई पूजा कर लेता है, कोई फूल चढ़ा देता है, कोई मंदिर में सिर झुका आता है – लेकिन क्या कर रहे हो तुम? और फिर इससे तुम आशा बाँधने लगते हो कि अभी तक मिला नहीं; अभी तक स्थायी आनंद नहीं मिला; अभी तक परमात्मा का कोई दर्शन नहीं हुआ! नहीं, यह भक्त का ढंग नहीं।

हम भी तस्लीम की खू डालेंगे
बेनियाजी तेरी आदत ही सही।

– देर लगाना तेरी आदत हो, कोई हर्जा नहीं; हम भी सब्र की आदत डाल लेंगे, और क्या! अगर तू देर करता है, ठीक। जितनी देर तू कर सकता है, उससे ज्यादा देर धैर्य रखने की हम आदत डाल लेंगे।

हम भी तस्लीम की खू डालेंगे
बेनियाजी तेरी आदत ही सही।

जल्दी में मत पड़ना। जल्दी ही तनाव पैदा कर देती है। जल्दी के कारण ही मन में बेचैनी पैदा हो जाती है। धीरज से चलो! अनंत-अनंत काल मौजूद है। कहीं कोई जल्दी नहीं है। समय की अनंत धारा मौजूद है; न कोई छोर है न कोई ओर है; न कोई प्रारंभ है न कोई अंत है। इस शाश्वत में तुम व्यर्थ ही परेशान हुए जा रहे हो। तुम दौड़-धूप किसलिए कर रहे हो? तुम्हारी दौड़-धूप से कुछ जल्दी न हो जाएगा। जल्दी की जरूरत नहीं।

ज़रा वृक्षों को देखो, कैसे अलसाए हुए हैं! चाँद-तारों को देखो, कैसे चुपचाप गतिमान हैं! कहीं पहुँचने की कोई जल्दी तुम्हें अस्तित्व में दिखायी पड़ती है? अस्तित्व ऐसा शांत है जैसे पहुँचा ही हुआ हो; पहुँचने की जल्दी मालूम ही नहीं होती।

ऐसा ही भक्त भी है, उसने अस्तित्व की भाषा समझ ली है। वह कोई जल्दी में

नहीं है। वह कोई प्रार्थना इसलिए नहीं करता कि भगवान प्रार्थना करने से मिलेगा – प्रार्थना उसका आनंद है। वह पूजा इसलिए नहीं करता कि ठीक है, पूजा करने से मिलता है तो चलो पूजा किये लेते हैं। यह कोई साधना नहीं है पूजा, यह साध्य है। वह अहोभाव से भरा है, आनंद से भरा है; कैसे अपने आनंद को प्रगट करे, किस भाषा में परमात्मा से कहे कि तेरे अनंत आशीषों की वर्षा मेरे ऊपर है! तुतला के – पूजा की भाषा में, भजन की, कीर्तन की भाषा में कह देता है कि तेरी अनंत अनुकंपा मेरे ऊपर है! प्रार्थना से वह कुछ पाना नहीं चाहता।

और मजा यही है कि जिसने प्रार्थना से कुछ पाना न चाहा, उसे सब मिला। और जिसने प्रार्थना में भी पाने का जहर डाल दिया, उसकी प्रार्थना भी मर गयी, और कुछ मिलने की तो बात ही न रही।

प्रार्थना में जहाँ माँग आई, जहर आया। प्रार्थना में जहाँ कामना प्रविष्ट हुई, प्रार्थना तिरोहित हुई।

तो प्रार्थना प्रार्थना के आनंद के लिए है। फिर इसी क्षण में तुम खूब सुखी हो उठोगे। दूसरा क्षण इसी से आएगा, आता रहेगा, आता ही रहा है।

तीसरा प्रश्न : भक्त अंतिम अवस्था तक आराध्य को नहीं भुला पाता है, क्या मुक्ति के लिए अंततः आराध्य की छवि का विसर्जन भी अनिवार्य है?

प्रश्न भक्त का नहीं है। भक्त तो चाहता ही नहीं मुक्ति को। भक्त तो कहता है, 'ऐसा मत करना कि मुक्ति हो जाए! ये बंधन बड़े प्यारे हैं!'

भक्त कहता है, 'मुक्ति को छोड़ने को तैयार हैं; भगवान, तुझे छोड़ने को तैयार नहीं। तू मुक्ति अपनी सम्हाल। किसी और को दे देना, और बहुत भिखारी हैं! हमें तो तू ही काफी है। तू हमें हज़ार-हज़ार बंधनों में बाँध! तू प्रेम के न मालूम कितने डोले सजा! तू हमें प्रेम की यात्रा पर ले चल!'

'मुक्ति' भाषा ही भक्त की नहीं है। तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूँ, बहुत भाषाएँ गडमगड हो गयी हैं। तुम पूछते हो, 'मुक्ति के लिए भगवान बाधा है?' पर भक्त मुक्ति माँगता नहीं – और भक्त मुक्त हो जाता है, माँगता नहीं। भक्त की मुक्ति निश्चित है, लेकिन भक्त के बिना माँगे घटती है।

अब इसको भी थोड़ा समझना।

भक्ति के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं वे मुक्ति माँगते हैं। भगवान का वे उपयोग करते हैं साधन की तरह, माध्यम की तरह। योग में पतंजलि भगवान को भी एक साधन मान लेते हैं : 'ईश्वर के प्रति समर्पण, यह और विधियों में एक विधि है; इस भाँति व्यक्ति परम मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।' भगवान के ऊपर है मोक्ष! और भगवान एक विधि है और विधियों में! अनिवार्य विधि भी नहीं है, क्योंकि

बुद्ध बिना भगवान को माने भी मुक्ति की राह बता देते हैं; महावीर बिना भगवान को माने भी मुक्ति की राह बता देते हैं।

तो पहली तो बात : और विधियों में एक विधि है। दूसरी बात : विधि भी अनिवार्य नहीं है, छोड़ी जा सकती है।

भक्ति के अतिरिक्त जो मार्ग हैं – ज्ञान के, योग के, हठ के, क्रिया के – उन सब में मुक्ति परम है। भगवान को अगर किसी ने जगह भी दी है, तो एक साधन की तरह। भक्त के लिए भगवान परम है।

मुक्ति क्या है भक्त के लिए ? भक्त के अतिरिक्त जो साधक हैं, उनके लिए – ऐसी घड़ी का आ जाना जहाँ वे भगवान से भी मुक्त हो जाए, मुक्ति है; जहाँ दूसरा न रह जाए, स्वयं का होना ही आत्यंतिक हो जाए, आखिरी हो जाए, कोई दूसरा न हो। इसलिए महावीर ने उस परम अवस्था को 'कैवल्य' कहा – एकमात्र तुम्हारी चेतना बचे ! या आत्मा कहा, परमात्मा कहा। महावीर का 'परमात्मा' शब्द भगवान का पर्यायवाची नहीं है – परमात्मा का अर्थ है : आत्मा की परम स्थिति; आखिरी ऊंचाई; तुम इस ऊंचाई पर आ गये, जिससे और ऊपर कोई ऊंचाई नहीं।

भक्त के लिए मुक्ति क्या है ?

भक्त कहता है, 'ऐसी घड़ी आ जाए कि तू-ही-तू रह जाए, मैं न रहूँ।'

भक्त के अतिरिक्त लोग हैं, वे कहते हैं, 'ऐसी घड़ी आ जाए, मैं-ही-मैं रहूँ, तू न रहे।'

भक्त कहता है, 'मैं ! मैं ही तो उपद्रव हूँ, मैं मिट जाऊं; बस तू-ही-तू रह जाए !'

भक्त कहता है, 'बाँधने वाला तेरा बंधन तो रहे, बंधने वाला मैं न रह जाऊं ! तेरा बंधन तो मुझे हजार-हजार रंग-रूपों में बाँध ले, लेकिन मैं तुझ में लीन हो जाऊं।'

भक्त अपने को मिटाना चाहता है भगवान में। भक्त के अतिरिक्त जो हैं वे भगवान को मिटा लेना चाहते हैं अपने में। भक्ति की भी मुक्ति फलित होती है; पर बड़ी अनूठी है उसकी मुक्ति ! उसमें भक्त खो जाता है, भगवान बचता है। इसलिए भगवान को खो के तो भक्त मुक्ति माँग ही नहीं सकता, वह तो असंभव है।

पूछा है : 'भक्त अंतिम अवस्था तक आराध्य को नहीं भुला पाता है ...'

भुलाना चाहता नहीं। तुम उसे भुलाने के रास्ते बताओ, वह भाग खड़ा होगा कि यह क्या रास्ता बता रहे हो ! वह कहेगा, 'दूर ही रखो अपने सिद्धांत ! बामुश्किल तो किसी तरह उसका सहारा पकड़ पाये हैं और तुम भुलाने का उपाय बताते हो !' भक्त तुमसे पूछेगा, 'ऐसा कुछ बताओ कि वह ही वह रह जाए और मैं भूल जाऊं !'

भक्त भगवान से ही पूछ लेता है अंतिम क्षणों में; और किसी से पूछने की उसे जरूरत भी नहीं है। जैसे-जैसे राग बंध जाता है, जैसे-जैसे भीतर का तार उसी के तारों के साथ नाचने लगता है, जैसे-जैसे संगीत लयबद्ध होता है – वह उसी से पूछने लगता है। वह कहता है, 'अब तू ही बता दे !'

भक्त औरों को तो पागल मालूम पड़ेगा, क्योंकि उसकी भाषा प्रेम की है।

इक बात भला पूछें, तुम कैसे मनाओगे ?
जैसे कोई रूठा हो और तुमको मनाना हो।

वह भगवान से ही पूछ लेता है कि सुनो –

इक बात भला पूछें, तुम कैसे मनाओगे ?
जैसे कोई रूठा हो और तुमको मनाना हो।

वह बात करने लगता है सीधी ! भक्ति संवाद है ! वह किसी और से पूछता नहीं; वह भगवान से ही पूछता है। जिसके तार उससे ही जुड़ गये, अब किसी और से पूछने की जरूरत भी न रही।

तेरा गम, राज मेरा, खामोशी मेरी, सुखन मेरा
यही है रूह मेरी, हुस्न मेरा, पैरहन मेरा।

वह कहता है, 'तेरे मिलने की तो बात दूर, तुझे न मिलने का जो दुख है, वह भी इतना प्यारा है। यही मेरा रहस्य है, तुझे न पाने की पीड़ा, राज मेरा, खामोशी मेरी – तू मिल के तो क्या करेगा, पता नहीं; तेरी अनुपस्थिति के बोध ने भी मुझे खामोश कर दिया, मौन कर दिया। सुखन मेरा ! तेरे न मिलने से भी मेरे भीतर अनाहत-वाणी का नाद शुरू हुआ है, मिलने से क्या होगा पता नहीं ! यही है रूह मेरी ! और अब तो तेरी गैर-मौजूदगी की पीड़ा ही मेरी आत्मा है। हुस्न मेरा ! यही है सौंदर्य मेरा ! पैरहन मेरा ! यही मेरे वस्त्र हैं ! यही मेरी आत्मा है। यही मेरी देह है ! यही मेरी वाणी है, यही मेरा मौन है – तेरे न मिलने का गम ... !

परमात्मा के मिलने पर भक्त उसी से पूछ लेता है कि अब तू ही बता दे, कैसे अपने को पूरा-पूरा खो दूं। धीरे-धीरे खोता ही चला जाता है। एक-एक कदम मिटता ही चला जाता है।

यह प्रश्न हमारे मन में उठता है, क्योंकि हमने बुद्धि से सोचा है। हमने बुद्धि से शास्त्र पढ़े हैं। शास्त्रों में लिखा है, जब तक दो रहेंगे, द्वैत रहेगा, तब तक तो संसार रहेगा; अद्वैत चाहिए। माना, निश्चित ही अद्वैत चाहिए। लेकिन अद्वैत दो ढंग का हो सकता है : या तो भगवान मिटे या भक्त मिटे।

तुम जरा अपने से पूछना, तुम्हारा मन कहेगा : 'भगवान ही मिटे। मैं और मिटूं ! यह बात जँचती नहीं।' तुम भगवान को ही अपने लिए मिटा लेना चाहते हो, इसलिए मुक्ति का सवाल उठता है। पर यह तो बड़े अहंकार की भाव-दशा हुई। यह तो

अगर तुम ठीक से समझो, तो योग, तप, तपश्चर्या के नाम पर आखिरी नास्तिकता हुई। तुमने शब्द अच्छे खोजे – 'अद्वैत' ... लेकिन छिपा ले गये नास्तिकता को। बातें तुमने बड़ी धार्मिक कीं, लेकिन अखीर में अपने को बचा लिया।

जो धर्म तुम्हें न मिटाये वह धर्म ही नहीं। धर्म तो आत्मविसर्जन है; स्वयं को पिघलाना, बहा देना है। तुम्हारी अकड़ पिघल जाए; बर्फ की तरह तुम्हारी छाती पिघल जाए; तुम बह जाओ सब दिशाओं में; तुम उसके अस्तित्व के साथ एक हो जाओ!

मुक्ति की बातें ही क्या हैं? अपने से मुक्त होना है, अस्तित्व से थोड़े ही मुक्त होना है! भगवान यानी अस्तित्व। नामों पर मत जाना। भगवान कहो, सत्य कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो – जो तुम्हारी मर्जी हो। लेकिन अस्तित्व और तुम ... तुम बड़े छोटे हो। एक छोटा-सा बूंद महासागर के सामने, यह आकांक्षा कर रहा है कि किसी तरह महासागर मिट जाए! वह आकाँक्षा ही भ्रांत है।

मुक्ति यानी अपने से मुक्ति। और भगवान में मिटने के लिए भक्ति से और ज्यादा सुगम कोई उपाय नहीं है। इसलिए नारद ने कहा, भक्ति सभी साधनों में श्रेष्ठ है। क्योंकि पहले चरण से ही तुम्हारे मिटने की यात्रा शुरू हो जाती है। सुगम है, नारद ने कहा। और मार्गों पर पीछे अड़चन आती है, क्योंकि पहले तो तुम मजबूत होते चले जाते हो; फिर एक घड़ी आती है, तब मजबूत हो गये अहंकार को छोड़ना पड़ता है। भक्ति पहले ही कदम से तुम्हें बिखेरने लगती है।

इसलिए दुनिया में बहुत कम भक्त हुए हैं, योगी बहुत हुए। तुम्हारा समझना शायद उलटा हो। तुम शायद सोचते हो भक्त तो बहुत हुए हैं। भक्त न के बराबर हुए हैं, क्योंकि भक्त होना दुस्साहस है। योगी होने में दुस्साहस नहीं है। तुम अपने मालिक हो – सिर के बल खड़े रहो कि आसन लगाओ कि साँस रोको कि जो तुम्हें करना हो करो; लेकिन तुम अपने मालिक हो। संकल्प मजबूत होता चला जाता है, अहंकार तीखा होता चला जाता है, धार पैनी होती चली जाती है। इसलिए योगियों के अहंकार की धार को देखो, तलवार की तरह चमकती है!

भक्त झुकता है। भक्त अपने को बिखेरता है। भक्त बड़ा कमनीय हो जाता है, कोमल हो जाता है, नाजुक हो जाता है। योगी पथरीला हो जाता है, जिद्दी हो जाता है, अकड़ जाता है, कुछ करने का खयाल आ जाता है। योगी सिद्धि की तलाश में है, शक्ति मिल जाए। भक्त सिर्फ अपने को खोने चला है।

'अंततः क्या मुक्ति के लिए आराध्य की छवि का विसर्जन भी अनिवार्य है?'

तुम ही खो जाते हो। आराधक खो जाता है। स्वभावतः जब आराधक खो जाता है, आराध्य भी खो जाता है, क्योंकि आराध्य बचेगा कहाँ जब आराधक न बचा? जब भक्त न बचा तो भगवान कहाँ बचेगा? मगर खोने की शुरुआत होती है भक्त से : इधर भक्त खोया, उधर भगवान गया; एक ही बचा। अब उसे तुम

जो चाहे कहो – भक्त कहो, भगवान कहो, सब एक ही हैं।

लेकिन प्रश्न पूछा गया है साधक के दृष्टिकोण से, भक्त के दृष्टिकोण से नहीं– 'आराध्य को खोना है! उसकी छवि खो जाती है!' देखने वाला खो जाता है स्वभावतः दृश्य भी खो जाता है। एक ही ऊर्जा बचती है। न दृश्य होता न द्रष्टा होता; एक ही ऊर्जा बचती है। कहो उसे दर्शन की ऊर्जा ...। मगर भक्ति की भाषा में उचित होगा, कहो – प्रेम की ऊर्जा। न प्रेमी बचता है न प्यारा बचता है – प्रेम ही लहरें लेने लगता है।

लामकाने-कोकबे-तकदीरे-आदम इश्क है
पासबाने-अजमते-तामीरे-आदम इश्क है
खवाबे-आदम इश्क है, ताबीरे-आदम इश्क है
इश्क है, हाँ इश्क है मेमारे-कसरे-दो जहाँ।

– मनुष्य के भाग्य-नक्षत्र को चमकाने वाला ईश्वर प्रेम है। मानव-निर्माण की प्रतिष्ठा का रक्षक प्रेम है। मनुष्य का स्वरूप प्रेम है। स्वप्न प्रेम है। लोक-परलोक दोनों दुनियाओं का निर्माता प्रेम है।

प्रेम ही बचता है।

ऐसा समझो कि गंगा बहती है, दो किनारों के बीच। दो किनारे – एक भक्त, एक भगवान; बीच में जो बह रही है धारा प्रेम की, भक्ति की, असली गंगा तो वही है। लेकिन साधक भगवान को खोना चाहता है, भक्त अपने को खोना चाहता है; यद्यपि दोनों दिशाओं से दोनों खो जाते हैं, अंततः बीच की धारा ही रह जाती है, गंगा ही बचती है प्रेम की।

चौथा प्रश्न : कल संध्या दर्शन के समय दो विकल्प थे। मैंने चरणस्पर्श करने का निर्णय इसलिए लिया कि बहुत समय बाद क्षण भर को अपने प्रीतम को निकट से देखूँगा; लेकिन वह क्षण आया तो ऊपर आपकी ओर देखा ही न गया। और अब रोता हूँ, रोता हूँ। ऐसा क्यों हो जाता है आपके निकट?

देखने के लिए सिर उठाना जरूरी थोड़े ही है – सिर झुका के भी देखा जाता है। असली देखना तो सिर झुका के ही देखना है। नाहक रोओ मत। और जिसने सिर झुका के देख लिया, फिर सिर उठा के देखने का कोई सवाल ही नहीं। इसलिए न उठा होगा सिर।

आँखों से थोड़े ही देखना होता है, अन्यथा देखना बड़ा आसान हो जाता। आँखें तो सभी की खुली हैं, अंधा कौन है? आँखों से ही देखना होता तो सभी कुछ हो जाता। देखना कुछ आँखों से ज्यादा गहरी बात है – हृदय की है। और हृदय तभी देख पाता है जब झुकता है। फिर उठने की खबर किसको रह जाती है!

नहीं, कुछ भूल हो गयी है। तुम अपने रोने को नहीं समझ पा रहे हो। तुमने व्यर्थ का एक बौद्धिक उलझाव और समस्या खड़ी कर ली है। तुम्हारी व्याख्या में कहीं भूल हो गयी है, अन्यथा तुम खुश होते; अन्यथा तुम्हारा रोना आनंद का रोना हो जाता। फिर से देखना।

यह घटना बहुत बार घटेगी, इसलिए समझ लेना जरूरी है। बहुत बार ऐसा होता है, जब हृदय से कुछ घटता है तो भी बुद्धि पीछे से आ के व्याख्या करती है। हृदय तो व्याख्या करता नहीं, अव्याख्य है; घटता है कुछ, भोगता है; लेकिन काट-पीट के विश्लेषण नहीं करता। हृदय के पास विश्लेषण है ही नहीं। हृदय तो जोड़ना जानता है, तोड़ना नहीं। हृदय तो अनुभव कर लेता है, लेकिन फिर अनुभव के पीछे खड़े हो कर उसका बौद्धिक विश्लेषण नहीं करना जानता। तो जैसे ही अनुभव हो गया, बुद्धि तत्क्षण झपट्टा मारती है; जैसे कहीं लाश पड़ी हो तो चीलें झपट्टा मारती हैं, गिद्ध झपट्टा मारते हैं। हृदय ने जो अनुभव किया, जैसे ही अनुभव हो गया, अतीत में चला गया, अनुभव मर चुका, वैसे ही बुद्धि झपट्टा मारती है, बुद्धि की चील झपट्टा मारती है, पकड़ के मुर्दा चीज़ की चीर-फाड़ करती है – पोस्टमार्टम ! उसमें हिसाब लगाती है, क्या हुआ ! और सब गड़बड़ हो जाता है। क्योंकि बुद्धि को तो अनुभव हुआ न था; जिसको अनुभव हुआ था उसने व्याख्या न की और जिसको अनुभव नहीं हुआ वह व्याख्या करता है।

पूछा है : 'कल संध्या दर्शन के समय दो विकल्प थे। मैंने चरण-स्पर्श करने का निर्णय इसलिए लिया कि बहुत समय बाद क्षण भर को अपने प्रीतम को निकट से देखूंगा; लेकिन वह क्षण आया तो ऊपर की ओर देखा ही न गया।'

जरूरत ही न थी। भीतर देखने की जरूरत है। प्रीतम बाहर नहीं है। आँख खोलने की कम, आँख बंद करने की जरूरत है। प्रीतम बाहर नहीं है। जिस दिन तुम मुझे अपने भीतर देखोगे, उसी दिन मुझे देखा; उसके पहले तो देखने की तैयारी है; उसके पहले तो देखने की बारहखड़ी है।

फिर पीछे सोचा होगा।

'और अब रोता हूँ, रोता हूँ।' अब बुद्धि ने कहा होगा, 'यह तुमने क्या किया ?' बुद्धि पीछे से आ जाती है परेशान करने को। अगर तुम हृदय से इस बात को समझो, तो जिस क्षण झुके, उस क्षण कुछ ऐसा हुआ –

> बेखुदी कहाँ ले गयी हमको
> देर से इंतजार है अपना !

झुके जब तुम, खो गये एक क्षण को, एक क्षण को तुम न रहे – उस झुकने में विसर्जित हो गये। इसलिए लौट के देखने का खयाल न आ सका। कोई था ही नहीं जो देखता। एक क्षण को सब शांत हो गया; कोई लहर न उठी। एक अनूठा क्षण आया ! एक झरोखा खुला ! लेकिन झरोखा तभी खुलता है जब तुम नहीं होते।

फिर पीछे से तुम लौट आये। तब तक झरोखा बंद हो गया। अब तुम पछताते हो। अब तुम रोते हो। दुबारा ऐसी भूल मत करना।

बुद्धि को हृदय का विश्लेषण करने की आज्ञा मत दो। बुद्धि के विश्लेषण अटकाते हैं, भटकाते हैं; जो जैसा है उसे वैसा ही नहीं देखने देते। बुद्धि की धारणाएँ आ के बड़ा धुआँ खड़ा कर देती हैं।

> स्मरण रखो –
> जो राह अहले-खिरद के लिए है ला-महद्दूद
> जुनूने-इश्क को वह चन्दगाम होती है।

– बुद्धि के लिए जो रास्ता बहुत ही लम्बा है, प्रेम के लिए दो-चार कदम का भी नहीं।

जो राह अहले-खिरद के लिए है ला-महद्दूद – जिसका अंत ही नहीं आता; बुद्धि के लिए जो चलता ही जाता है रास्ता ... जुनूने-इश्क को वह चन्दगाम होती है – लेकिन जो प्रेम में मतवाला है, पागल है, उसके लिए कुछ कदम ही काफी हैं। अगर प्रेम का मतवालापन पूरा-पूरा हो, उसकी त्वरा पूरी हो, तो एक ही कदम काफी है। एक कदम से हज़ारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। लेकिन वह कदम हृदय से उठना चाहिए, बुद्धि और विचार से नहीं।

अब दुबारा जब झुको तो बुद्धि को मौका मत देना व्यर्थ बीच में आ के उपद्रव करने का। जब झुको तो हृदयपूर्वक उस क्षण को अनुभव करने की कोशिश करना : 'क्या हुआ !' हृदय से ही ! सोच-विचार की कोई ज़रूरत नहीं है – सिर्फ जागने की, जागरूकता की, होश की ज़रूरत है। थोड़ा जाग के उस क्षण में देखना, तुम अपने को न पाओगे। और जहाँ तुमने अपने को न पाया, वहीं द्वार खुला है; क्योंकि तुम ही दरवाजा, तुम ही दीवाल हो। तुम अगर हो तो दीवाल, तुम अगर नहीं हो तो दरवाजा।

> अब उठा ही चाहता है होश के रुख से नकाब
> भर चुकी है अक्ल का बहुरूप नादानी बहुत।

– अब बहुत हो चुका। और नासमझी ने बुद्धिमानी के बहुत रूप रख लिये और बहुत दिन धोखा दिया।

भर चुकी है अक्ल का बहुरूप नादानी बहुत – जिसको तुम बुद्धिमानी कहते हो वह सिर्फ नादानी है। नादानी ने बुद्धिमानी के बहुत रूप रखे हैं, बहुत-बहुत तरह से तुम्हें बुद्धिमान बनने का धोखा दिया है। छोड़ो अब उसे।

अब उठा ही चाहता है होश के रुख से नकाब – घड़ी पास आती है, जब अगर तुम थोड़े सम्हले; झुके और उठे न; झुके और सोचा न; बाहर देखने की चिंता न की, क्योंकि प्रीतम भीतर है; झुके तो झुके रह गये तो गये, लौटे न; बुद्धि को मौका न दिया, हृदय के ही पूरे हो रहे – तो ज्यादा दूर नहीं है। अब उठा ही चाहता है होश के रुख से नकाब – तो तुम्हारे भीतर जो होश दबा पड़ा है उसका

घूँघट उठ जाएगा। और बुद्धिमानी के नाम पर नादानी बहुत धोखा दे चुकी, अब जाग जाने का समय है!

पाँचवाँ प्रश्न : आपको रोज-रोज सुनते हैं, रोज-रोज देखते हैं; फिर भी जी क्यों नहीं भरता? और कहीं बाहर भी चले जाते हैं तो भी जी यहीं लगा रहता है। कृपा कर समझाइये!

जी की बातें समझायी नहीं जातीं। और समझना हो तो अपने जी से ही पूछना चाहिए। बात समझने-समझाने की नहीं है।

समझ तो तुम गये हो; लेकिन जो मैंने अभी-अभी कहा कि बुद्धि लौट-लौट के हृदय पे कब्जा करती है; बुद्धि हृदय को मुक्त भाव से जीने नहीं देती; बुद्धि हृदय को सहज भाव से प्रवाहित नहीं होने देती – वह लौट-लौट के आ जाती है। अब अगर तुम्हारा मन लग गया है, अगर तुम्हारे हृदय के तार मेरे हृदय के तारों से कहीं जुड़ गये हैं तो बात सीधी-साफ है, समझना-समझाना क्या! जाहिर है कि प्रेम में पड़ गये हो, पागल हो गये हो! नहीं तो कोई रोज-रोज सुनने आता है?

मकतबे-इश्क का दुनियाँ में है निराला उसूल
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ।

साधारण दुनियाँ में और पाठशालाएँ हैं, वहाँ जिसको सबक याद हो जाता है उसको छुट्टी मिल जाती है, बात खत्म! लेकिन प्रेम की पाठशाला का बड़ा उलटा ढंग है।

मकतबे-इश्क का दुनियाँ में है निराला उसूल
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ।

तुम्हें सबक याद हो गया है। अब जी कहीं लगेगा न। और यह सबक ऐसा है कुछ कि सीख गये तो सीख गये, फिर भूलने का उपाय नहीं। इसलिए तो लोग सीखने में बड़ी आनाकानी करते हैं। सीखते ही नहीं। ठीक ही करते हैं एक हिसाब से; सीख गये तो फिर भूल नहीं सकते। तो जितनी देर करनी हो, सीखने के पहले ही कर लेना। अँगुली तुमने मेरे हाथ में दी तो पहुँचा बहुत दूर नहीं है।

अंतिम दो प्रश्न : भक्ति-सूत्र के रचनाकार नारद बहुआयामी व्यक्तित्व के मालूम पड़ते हैं। झगड़ा लगाने में उन्हें विशेष रस मिलता है। वृद्धावस्था में भी कामिनी-कांचन के प्रति उनका मोह कायम रहता है। ढाई घड़ी से अधिक एक जगह टिकते नहीं। कृपापूर्वक इस रहस्य-भरे व्यक्तित्व पर थोड़ा प्रकाश डालें।

रहस्य कुछ भी नहीं है, सीधी-सीधी बातें हैं। लेकिन हम इतने उलटे हो गये हैं। रहस्य हम में है, नारद में नहीं। ऐसा कुछ है कि सारी दुनिया शीर्षासन कर

रहा है और एक आदमी सीधा खड़ा है, तो उलटा मालूम होता है।

सीधे-से सूत्र हैं। झगड़ा लगाने में उन्हें विशेष रस लगता है। झगड़ा मिटाने का एक ही उपाय है : उसे पूरा-पूरा लगा देना, अन्यथा झगड़ा मिटता ही नहीं। जो चीज पूरी हो जाती है मिट जाती है। इतनी-सी सार की बात है नारद के झगड़े में। बड़ा सूत्रात्मक है।

जिस चीज को भी तुमने दबाया उसी में उलझ जाओगे। झगड़े को पूरा हो ही लेने देना। अगर तुम्हारे भीतर बुद्धि में और हृदय में झगड़ा है तो उसे पूरा हो लेने दो; उसे पहुँच जाने दो अंतिम सीमा तक; उसे उठने दो; उसको सौ डिग्री तक बढ़ने दो। इससे बीच में अगर जल्दी की और कच्चे-कच्चे तुमने उसको रोक लिया, तो उलझे रह जाओगे, खंडित रह जाओगे। अगर तुम्हारी प्रार्थना और कामना में झगड़ा है तो झगड़े को दबाना मत, उभारना। अगर तुम्हारे क्रोध में और प्रेम में झगड़ा है तो उसको उभारना, दबाना मत। उभारने का अर्थ है: रेचन, केथारसिस। उसे पूरा का पूरा ले आना।

बाकी कथाएँ तो प्रतीक हैं। जहाँ कहीं झगड़ा हो, नारद संलग्न हो जाते हैं। झगड़े को पूरा उभार ले आना, उसको पूरा रूप दे देना – उसकी मृत्यु है। कुछ चीजें हैं जो पूरे हो कर मर जाती हैं और बिना पूरे हुए कभी नहीं मरतीं। जैसे सूखे पत्र वृक्ष से अपने-आप गिर जाते हैं, पके फल वृक्ष से अपने-आप टपक जाते हैं; कच्चे फलों को तोड़ना पड़ता है।

नारद का झगड़ा और झगड़े में रस फलों को पकाने को प्रक्रिया है। इसके पीछे बड़ी सार्थक बातें जुड़ी हैं। लेकिन नारद की इस तरह से कभी कोई व्याख्या नहीं हुई, इसलिए कठिनाई हो गयी। और नारद जैसा अनूठा व्यक्तित्व हँसी-मजाक का कारण हो गया।

'वृद्धावस्था में भी कामिनी-कांचन के प्रति उनका मोह कायम रहता है।' इसका कुल अर्थ इतना है कि वृद्धावस्था में भी उनकी युवावस्था नहीं खोती। बुढ़ापा भी उन्हें बूढ़ा नहीं कर पाता – इतना-सा मतलब है। मौत उन्हें मार न पाएगी। जिसको बुढ़ापे ने बूढ़ा कर दिया उसको मौत मार डालेगी। ये तो प्रतीक हैं। इतनी ही खबर है इस बात में कि नारद ताजे बने रहते हैं, युवा बने रहते हैं – अंतिम क्षणों तक!

लेकिन 'कामिनी-कांचन' शब्द आते से ही घबड़ाहट हो जाती है। फिर हम भूल जाते हैं प्रतीक की भाषा को। यही कबीर ने कहा है, लेकिन उनकी बात को किसी ने उलटा नहीं समझा क्योंकि भाषा उन्होंने तुम्हारी समझ में आ सके, ऐसी उपयोग की है। कबीर ने कहा है : 'ज्यों कि त्यों धरि दीन्ही चदरिया! खूब जतन से ओढ़ी चदरिया, ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया।' यह भी वही बात है; प्रतीक अलग है।

नारद बूढ़े नहीं होते; चादर जवान रहती है, ताजी रहती है, ज्यों की त्यों रहती है, एक रेखा नहीं पड़ती। लेकिन 'कामिनी-कांचन' साधुओं ने दोनों शब्दों को बड़ा खराब कर दिया है; गालियाँ हैं। किसी को यह कह दिया कि कामिनी कांचन में रस है, बस नरक का द्वार उसके लिए खोल दिया।

भक्त के लिए कामिनी और कांचन में भी परमात्मा ही है। भक्त की भाषा दमन की नहीं है, ऊर्ध्व-आरोहण की है। भक्त यह कहता है, जहाँ भी सौंदर्य है उसका है : कहीं कामिनी में प्रगट है, कहीं फूल में प्रगट है, कहीं चाँद-तारों में प्रगट है! रूप उसने कुछ भी रखे हों, रूपायित वही हुआ है। मिट्टी भी उसी की है, सोना भी उसी का है। मिट्टी की भी अपनी सुगंध है; सोने का अपना सौंदर्य है। भक्त न तो मिट्टी के पक्ष में है न सोने के विपरीत है। भक्त विभाजन नहीं करता। भक्त ने अविभाज्य रूप से परमात्मा को अंगीकार किया है; बाहर भी विभाजन नहीं करता, अपने भीतर भी विभाजन नहीं करता; भीतर भी अपने को स्वीकार करता है — जैसा उसने बनाया है, वैसा ही स्वीकार करता है। भक्त के मन में त्याज्य कुछ भी नहीं है; भोग भी नहीं है, क्योंकि भोग भी 'उसका' ही प्रसाद है।

भक्त को समझना बड़ा कठिन है। योगी-तपस्वियों को हम समझते हैं; क्योंकि वे हम से विपरीत हैं, समझना आसान है। हम धन के पीछे दौड़ रहे हैं, वे धन छोड़ के भाग रहे हैं — दोनों भाग रहे हैं; दोनों धन से जुड़े हैं : एक धन के लिए भाग रहा है, एक धन से दूर भाग रहा है। भाषा में कठिनाई नहीं है। हमारी पीठ एक-दूसरे की तरफ होगी, लेकिन बँधे हम एक ही चीज़ से हैं — धन! हम स्त्री के पीछे दीवाने हैं; वह स्त्री से बचने के पीछे दीवाना है — बाकी दोनों की नजर स्त्री पे लगी है। दोनों स्त्री से गुँथे हैं।

भक्त भाग ही नहीं रहा। नारद तो अपना एकतारा बजा रहे हैं; वे भागते-करते नहीं। उन्हें सब स्वीकार है। उन्होंने दोनों लोक को स्वीकार किया है। यही उनकी कथाओं का अर्थ है कि वे पृथ्वी से वैकुंठ दिन-रात यात्रा कर रहे हैं। उनका आवागमन अनवरुद्ध है, उन्हें कहीं रोकने वाला नहीं है। इस लोक से उस लोक जाने में कोई सीमा नहीं। मतलब इतना है। इस लोक और उस लोक के बीच में कोई सेतु नहीं बनाना पड़ रहा है उन्हें; दोनों जुड़े हैं, अखंड हैं। कहना ही मुश्किल है कि कहाँ यह लोक समाप्त होता है और वह लोक शुरू होता है। कहीं कोई चुंगी-नाका नहीं है। निर्बाध नारद यहाँ से वहाँ एक ही संगीत की लय पर, एक ही एकतारे को बजाते हुए वैकुंठ को पृथ्वी से जोड़ते रहे हैं। उनका एकतारा दो लोकों को एक कर रहा है। उनकी यात्रा अनूठी है।

नारद के व्यक्तित्व को फिर से पूरा का पूरा समझने की जरूरत है। क्योंकि नारद का व्यक्तित्व अगर ठीक से समझा जा सके तो दुनिया में एक नये धर्म का आविर्भाव हो सकता है — एक ऐसे धर्म का जो संसार और परमात्मा को शत्रु न समझे, मित्र समझे; एक ऐसे धर्म का जो जीवन-विरोधी न हो, जीवन-निषेधक न हो, जो जीवन को अहोभाव, आनंद से स्वीकार कर सके; एक ऐसे धर्म का जिसका मंदिर जीवन के विपरीत न हो, जीवन की गहनता में हो!

'ढाई घड़ी से अधिक एक जगह नहीं टिकते!'

क्या टिकता है? ढाई घड़ी बहुत बड़ा समय है। कुछ भी टिकता नहीं है। डबरे टिकते हैं, नदियाँ तो बही चली जाती हैं। नारद धारा की तरह हैं! बहाव है उनमें! प्रवाह है! प्रक्रिया है! गति है! गत्यात्मकता है! डबरे तो सड़ते हैं। एक ही जगह पड़े रहते हैं माना, मगर सिवाय कीचड़-कबाड़ के कुछ पैदा नहीं होता। स्वच्छता के लिए प्रवाह चाहिए।

लेकिन तुम सभी डरे हुए हो प्रवाह से। तुम सभी डरे हुए हो परिवर्तन से, क्योंकि परिवर्तन के पीछे मौत छिपी मालूम होती है। अगर परिवर्तन होगा तो मौत आएगी। तुम सब यह चाहोगे कि अगर कोई चमत्कार कर सके और तुम जैसे हो जहाँ हो, वहीं डबरे की तरह ठहर जाओ, मूर्तियों की भाँति, पत्थर! एक चमत्कार ईश्वर करे और सब अपनी-अपनी जगह ठहर जाएँ, तो तुम बड़े खुश होओगे; हालाँकि मर जाओगे, मगर तुम बड़े प्रसन्न होओगे कि चलो, अब मौत नहीं आएगी। मगर मौत आ ही गयी!

ज़रा जीवन को देखो चारों तरफ : कितनी गति है! कहीं कुछ ठहरा हुआ है? सिवाय तुम्हारे भय की, मन की आकाँक्षाओं के, ठहरने का कहीं कोई स्थान है? सब बदल रहा है। सब रूपान्तरित हो रहा है। लहरें आती हैं जाती हैं सागर की! सृष्टि और प्रलय! दिन और रात! सब बदल रहा है!

ढाई घड़ी! तुम ज्यादा न डर जाओ, इसलिए ढाई घड़ी कहा होगा कथाओं में। ढाई पल भी कहाँ कोई चीज़ ठहरी है! त्वरित जीवन रूपान्तरित हो रहा है। जीवन का अर्थ ही रूपान्तरण है। जो ठहर जाए वह मौत। जो बढ़ता चले वही जीवन।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा : ठहरना मत। समझे नहीं वे। वे समझे कि बुद्ध यह कह रहे हैं कि एक गाँव में ज्यादा देर मत ठहरना। बुद्ध ने कहा : 'चरेवेति! चरेवेति! चलते जाना! चलते जाना! उन्होंने समझा कि ठीक है, परिव्राजक बना रहे हैं बुद्ध। तो एक गाँव में तीन दिन से ज्यादा नहीं ठहरते, दूसरे गाँव में चले जाते हैं। बुद्ध ने कुछ और ही कहा था। बुद्ध ने कहा था : ठहरना जीवन के विपरीत है। ठहरने की आकाँक्षा ही आत्महत्या है। बढ़ते ही जाना! यहाँ कुछ ऐसा नहीं है कि मंजिल है कोई, जहाँ पहुँच के ठहरे सो ठहरे, तो तुम जड़ हो जाओगे। यहाँ यात्रा ही मंजिल है। चलते जाना!

यही अर्थ है नारद का।

और अंतिम सवाल : पुराण में कथा है कि बालक ध्रुव नारद के भक्त थे; नारद नारायण के भक्त थे । बालक ध्रुव की भक्ति से मात्र छह महीने में ही नारायण प्रसन्न हो गये और उपलब्ध हो गये । और इसकी स्मृति में आकाश में एक तारा उगा – ध्रुव तारा । इससे अन्य ऋषि-मुनि ध्रुव के प्रति ईर्ष्या से और नारायण के प्रति शिकायत से भर गये, क्योंकि वे सब कठोर तपश्चर्या करके भी कुछ न पा सके थे । जब वे ऋषि-मुनि इकट्ठे हो कर विचार करते थे, तब एक मछुआ आया और उसने उन सबको नदी की सैर का निमंत्रण दिया । वे सब गये और उन्होंने जगह-जगह सफेद चिह्न देखे । ऋषि-मुनियों के पूछने पर मछुए ने कहा, इन सभी स्थलों पर ध्रुव ने पिछले जन्मों में तपश्चर्या की थी ।

कृपा करके इस पुराण की कथा का हमें सार कहिए !

कथाएँ इतिहास नहीं हैं । कथाएँ पुराण हैं । इतिहास और पुराण का भेद समझ लेना चाहिए ।

इतिहास तो वह है जो कभी घटा, हुआ । पुराण वह है जो सदा होता है । इतिहास समय में घटता है, पुराण शाश्वत है । तो पुराण को सिद्ध करने की कोशिश मत करना कि वह हुआ कि नहीं, वह तो भूल ही हो गयी फिर । फिर तो तुम कविता को समझे ही नहीं, काव्य को पहचाने ही नहीं । फिर तो तुम गलत रास्ते पे चल पड़े । ऐसा चल रहा है पूरे मुल्क में, हजारों साल से चल रहा है, अभी भी चलता है ।

अभी कुछ दिन पहले लुधियाना में पुरी के शंकराचार्य ने चुनौती दी कि कोई भी अगर सिद्ध कर दे कि रामायण झूठ है तो मैं शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूँ । कुछ हैं जो सिद्ध करना चाहते हैं कि रामायण झूठ है । कुछ हैं जो सिद्ध करना चाहते हैं कि रामायण सच है । और दोनों एक ही नाव में सवार हैं ।

न रामायण झूठ है न रामायण सच है – रामायण पुराण है । रामायण का समय से कोई संबंध नहीं, इतिहास से कोई संबंध नहीं । ऐसा कभी हुआ है, ऐसा सवाल ही नहीं है । ऐसा नहीं हुआ है, यह तो सवाल उठता ही नहीं है । ऐसा होता रहा है । ऐसा आज भी हो रहा है, अभी भी घट रहा है ।

पुराण का अर्थ है : जीवन का सार-निचोड़ थोड़ी-सी कहानियों में रख दिया है । कहानियों पर जिद्द मत करना, सार-निचोड़ को पकड़ना ।

'बालक ध्रुव नारद के भक्त थे; नारद नारायण के भक्त थे ।' इसका अर्थ हुआ कि भगवान तक सीधे पहुँचना कठिन होगा, सद्गुरु चाहिए । इसका अर्थ हुआ कि भगवान से सीधा-सीधा मिलना कठिन होगा, मध्यस्थ चाहिए । इसका अर्थ हुआ कि कोई बीच में चाहिए जो तुम जैसा भी हो और भगवान जैसा भी हो, तो सेतु बन सकेगा । कोई ऐसा चाहिए जिसका एक हाथ तुम्हें पकड़े हो और एक हाथ जिसका

परमात्मा पकड़े हो । एक हाथ तुम्हारे जैसा और एक हाथ परमात्मा जैसा ! जो परमात्मा और मनुष्य के बीच में कहीं हो । संक्रमण हो । द्वार हो ।

परमात्मा बहुत बड़ा है । आदमी बहुत छोटा है । दोनों में तालमेल कैसे बैठे ? कोई चाहिए जो परमात्मा जैसा बड़ा हो, आदमी जैसा छोटा भी हो ।

गुरु इस दुनिया में सबसे बड़ा विरोधाभास है, सबसे बड़ा पैराडॉक्स । अगर तुम गुरु को एक तरफ से देखो, अपनी तरफ से, तो तुम्हारे जैसा है । अगर तुम दूसरी तरफ से देखो तो परमात्मा जैसा है । इसलिए तो कोई भी अपने गुरु के लिए तर्क नहीं कर सकता, न प्रमाण जुटा सकता है । क्योंकि तुम्हारे तर्क और प्रमाण कुछ भी सिद्ध न कर सकेंगे उसके लिए, जिसको दूसरी तरफ से देखने की क्षमता न हो । वह कहेगा, हमारे जैसा ही तुम्हारा गुरु है; जैसी हमें भूख लगती है उसे लगती है; धूप आए तो हमें पसीना आता है, उसे आता है ।

इन बातों से बचने के लिए फिर कपोल-कल्पनाएँ शुरू होती हैं । जैन कहते हैं, महावीर को पसीना नहीं आता । पागल हैं । बिलकुल पागलपन की बात है । जैन कहते हैं, महावीर को चोट करो तो खून नहीं निकलता, दूध निकलता है ।

ये क्यों कहानियाँ गढ़ी गयी हैं ? ये भक्त कह रहे हैं कि हमारा भगवान आदमियों जैसा नहीं है । मगर तुम्हें यह सिद्ध करना पड़ रहा है कि पसीना नहीं आता, उससे साफ है कि पसीना आता होगा । तो काहे के लिए चिंता करते ? दूसरे सिद्ध करते हैं कि पसीना आता है; खून ही निकलता है, दूध कहीं निकला है !

भक्तों ने अपने गुरुओं को अलौकिक सिद्ध करने की बड़ी चेष्टाएँ की हैं । उनकी चेष्टा को समझो सहानुभूति से तो सार्थक मालूम होती है । उनकी चेष्टा यह है, वे यह कह रहे हैं कि तुम हमारे गुरु को साधारण मनुष्य मत समझो । ठीक ही कह रहे हैं, लेकिन जिस भाषा में कह रहे हैं वह बिलकुल गलत है । और उनकी भाषा के कारण दूसरों के सामने महावीर का, या उनके गुरु का परमात्म-रूप तो प्रगट नहीं होता, उनका ऐतिहासिक रूप तक संदिग्ध हो जाता है ।

गुरु बड़ी भारी विरोधाभासी अवस्था है; अगर बुद्धि से देखा तो आदमी जैसा, अगर हृदय से देखा तो परमात्मा जैसा । इसलिए श्रद्धा की आँख हो तो गुरु परमात्मा से जोड़ने का कारण हो जाता है ।

'पुराण की कथा है, बालक ध्रुव नारद के भक्त थे, और नारद नारायण के ।' सेतु बन गया । राह खुल गयी । ध्रुव की भक्ति से मात्र छह महीने में नारायण प्रसन्न हो गये । छह महीने भी लगे, यह आश्चर्य की बात है । जरूर सरकारी काम-काज, दफ्तर... ! छह महीने ! ध्रुव जैसा सरल हृदय प्रार्थना करे और छह महीने लगें ! पुराण ने मजाक की है ! सरकारी काम-काज, रेड टेप ! फाइलें सरकने में वक्त लग जाता है । तुम चकित होते हो कि छह महीने, इतने जल्दी हो गया; मैं चकित हो रहा हूँ कि छह महीने लगे, इतनी देर लगी ! बाल-हृदय से प्रार्थना उठे,

तत्क्षण पूरी हो जाती है। इतने निर्दोष हृदय से उठी प्रार्थना में कमी क्या हो सकती है कि छह महीने लगें? हाँ, पुराण लिखने वालों को शायद छह महीने बाद पता चला होगा। लेकिन प्रार्थना हो, निर्दोष हो, तो क्षण का भी फासला नहीं है, प्रार्थना तत्क्षण पूरी हो जाती है। यही तो प्रार्थना का चमत्कार है। उसमें देर लग जाए, यह संभव नहीं; क्योंकि प्रार्थना समय के बाहर है, समयातीत है।

आकाश में ध्रुव तारा तो अभी भी है; ध्रुव की कथा बनी, उसके पहले भी था। लेकिन ध्रुव की घटना इतनी महत्त्वपूर्ण है और उसकी स्थिर भक्ति इतनी स्थिर थी, उसकी प्रज्ञा ऐसी थिर थी कि सारे अस्तित्व में ध्रुव से ज्यादा, ध्रुव तारे से ज्यादा थिरता का और कोई प्रतीक नहीं मिला। वह अकेला तारा है जो ठहरा हुआ है, अपनी जगह पर, कोई उसे हिलाता नहीं, अकंप! इसलिए ध्रुव तारे से ध्रुव का नाम जुड़ गया।

'इससे अन्य ऋषि-मुनि ध्रुव के प्रति ईर्ष्या और नारायण के प्रति शिकायत से भर गये।'—ऋषि-मुनि न रहे होंगे। क्योंकि जहाँ तक ईर्ष्या है वहाँ तक कैसा ऋषि, कैसा मुनि! मगर इसी तरह के ऋषि-मुनियों से हम परिचित हैं: ईर्ष्या है, दौड़ है, महत्त्वाकांक्षा है, जलन है, शिकायत है! और उनकी शिकायत तर्कयुक्त भी मालूम होती है; वर्षों से तपश्चर्या कर रहे थे, उनको तो न मिला और छोटे बालक को मिल गया, जिसका कुछ अर्जन नहीं!

इसे ध्यान रखो: सांसारिक मन कहता है, भगवान को भी अर्जित करना होगा; जैसे वह भी कोई संपदा है, बैंक-बैलेंस है। भगवान मिला ही हुआ है, सिर्फ स्मरण करना है, अर्जन नहीं। सरल हृदय उसका स्मरण करता है, प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। गणित वाला हृदय, गणित वाली बुद्धि अर्जन करती है: कमाओ! उपवास करो, व्रत करो, त्याग करो, यह करो, वह करो—कमाओ! दावेदार बनो! स्वभावतः जब तुम कमाते हो तो भीतर से यह भी उठता है, बड़ी देर लग रही है, इतना कमा लिया: अभी तक नहीं, अभी तक नहीं! और अगर ऐसे कमाने वाले लोगों के बीच में किसी को अचानक मिल जाए जिसने कुछ भी न किया; छोटा बच्चा, जिसके पास समय ही न था करने को कुछ—तो स्वभावतः ईर्ष्या जगेगी कि यह तो फिर अन्याय हो गया। यह तो इनका बस चले तो ये ऋषि-मुनि परमात्मा को अदालत में ले जाएँ कि 'यह अन्याय हो रहा है। कहावत तो सुनी थी कि देर है अँधेर नहीं; लेकिन अब तो अँधेर भी हो रहा है। देर तो हो ही गयी है कि जिंदगी भर तपश्चर्या की, व्रत-उपवास किये, सब फेहरिश्त तैयार रखे हैं...।' फाइलें ऋषि-मुनियों की तैयार हैं, उन्होंने क्या-क्या किया है, उसमें खूब बढ़ा-चढ़ा के लिखा हुआ है। और इस दो दिन के बालक को, जिसने कुछ भी न किया था; जो अभी ठीक से तुतलाता भी नहीं, यह क्या तो प्रार्थना करेगा, कहाँ से संस्कृत का शुद्ध उच्चार

लाएगा, वेद-मंत्र कहाँ जानता है—इसको मिल गया! बुद्धि का चिंतित होना स्वाभाविक है, क्योंकि बुद्धि गणित है।

यहीं समझ लेना चाहिए, प्रार्थना को न तो भाषा की जरूरत है, न शास्त्रों की जरूरत है, सिर्फ प्रेम की जरूरत है। छोटे बालक जैसा प्रेम पर्याप्त है; उससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं है। तुम अगर फिर से अपने छोटे बालक जैसे प्रेम को पुनः पा लो तो सब शास्त्र दो कौड़ी के हैं। तो कोई व्रत-उपवास जरूरी नहीं है। उतनी सरल हृदय से तुम्हारी प्रार्थना उठ आए, पूरी हो जाएगी।

लेकिन ऋषि-मुनि एक तरफ ईर्ष्या से भरे हैं, एक तरफ शिकायत से भी भरे हैं! अन्याय हो गया था!

ध्यान रखना, धर्म के मार्ग पर अर्जन की भाषा छोड़ो; अन्यथा तुम संसार को ही खींचे लिए जा रहे हो। छोड़ो ये बातें। परमात्मा, तुम क्या करते हो, इससे नहीं मिलता; तुम क्या हो, इससे मिलता है। तुम्हारा होना शुद्ध हो; तुम्हारा होना निष्कलुष हो; तुम्हारा होना कुँआरा हो, छोटे बच्चे जैसा हो!

जीसस ने कहा है: जो छोटे बच्चों की तरह होंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश करेंगे।

'ऋषि-मुनि इकट्ठे हो गये, विचार करने लगे। एक मछुए ने उनको अपनी नाव में बिठा लिया। वहाँ जगह-जगह सफेद चिह्न दिखायी पड़े। पूछने पर मछुए ने कहा, ये वे स्थान हैं जहाँ ध्रुव ने पिछले जन्मों में तपश्चर्या की थी।' इससे ऋषि-मुनि राजी हो गये होंगे। यह बात फिर उनकी समझ में आ गयी होगी, फिर गणित में बैठ गयी। यह तो बहुत कठिन होता अगर मछुआ कहता कि बस ध्रुव ने माँगा और भगवान मिल गये; कोई तपश्चर्या पीछे नहीं है, कोई यात्रा पीछे नहीं है। कहानी सरल हो गयी। ऋषि-मुनियों की शिकायत कम हो गयी होगी।

मेरे देखे कर्म का सिद्धांत तुम्हारे सांसारिक गणित का फैलाव है। तुम कहते हो, फलां आदमी आनंद भोग रहा है, पिछले जन्मों में पुण्य किये होंगे; क्योंकि यह तो तुम बरदाश्त कर ही नहीं सकते कि इसी जन्म में और आनंद भोग रहा हो! दूसरा आदमी मजे कर रहा है, सफलता पा रहा है; तुम कहते हो, 'ठहरो! वक्त आएगा जब भोगोगे! अगले जन्म में देखना, सड़ोगे, नरक में पड़ोगे! यह चार दिन की चाँदनी है, फिर अँधेरी रात!' ऐसे तुम अपने मन को समझा लेते हो।

कर्म का सिद्धांत साधारणतः तुम्हारे मानसिक गणित का ही फैलाव है। उससे तुम हल कर लेते हो, मामला साफ हो जाता है, झंझट खत्म हो गयी! फिर तुम्हें अड़चन नहीं होती। अगर मैं कहूँ कि बस, बिना कुछ किये परमात्मा मिल गया, तुम कहोगे, 'यह बात जरा संदिग्ध है; हम इतना कर रहे हैं और न मिला!' अगर मैं कहूँ, जन्मों-जन्मों में मेहनत की, तब तुम कहोगे, 'ठीक है, दया आती है, मिलना ही चाहिए।' गणित में बात बैठ गयी।

मछुए की बात सुन के ऋषि-मुनि शांत हो गये होंगे। मछुआ बड़ा होशियार रहा होगा। मछलियाँ पकड़ते-पकड़ते आदमियों को पकड़ना जान गया होगा। ध्रुव से उनकी नाराज़गी चली गयी होगी, परमात्मा से शिकायत भी चली गयी – बात सब गणित में आ गयी!

और मैं तुमसे कहता हूँ, प्रेम गणित में नहीं आता। और मैं तुमसे कहता हूँ, प्रार्थना गणित में नहीं आती। और मैं तुमसे पुनः पुनः कहता हूँ : तुम क्या करते हो, इससे परमात्मा के मिलने का कोई भी संबंध नहीं – तुम क्या हो, तुम्हारा होना ही एकमात्र पाने का उपाय है।

आज इतना ही।

पहले कव्हर–पृष्ठ का शेषांश

वे देखते हैं—कुछ उंडेलते हैं! और हम भर सकें उसे अपनी आंखों में, अपने हृदय में—हम असमर्थ हैं, असहाय हैं। उनकी प्रत्येक भाव-भंगिमा एक प्रसाद है। उसे भर लें, सम्हाल लें, संजो लें, पी लें—ऐसा पात्र कहां से लाएं!

उनका संस्पर्श होता है—मनुष्य में परमात्मा जाग उठता है। उनकी हर मुद्रा एक निमंत्रण है—पता नहीं कहां का, लेकिन रोमांचकारी है; भयावह है, फिर भी जाने जैसा लगता है; कांपते-कांपते भी, हिचकते-झिझकते भी, स्वीकारने जैसा लगता है। और इसके पहले कि निर्णय हो पाए, हम खींच लिये जाते हैं!

उनकी अनुकंपा अपार है!

पहले कव्हर–पृष्ठ का शेषांश

वे देखते हैं—कुछ उंडेलते हैं ! और हम भर सकें उसे अपनी आंखों में, अपने हृदय में—हम असमर्थ हैं, असहाय हैं। उनकी प्रत्येक भाव-भंगिमा एक प्रसाद है। उसे भर लें, सम्हाल लें, संजो लें, पी लें—ऐसा पात्र कहां से लाएं !

उनका संस्पर्श होता है—मनुष्य में परमात्मा जाग उठता है। उनकी हर मुद्रा एक निमंत्रण है—पता नहीं कहां का, लेकिन रोमांचकारी है; भयावह है, फिर भी जाने जैसा लगता है; कांपते-कांपते भी, हिचकते-झिझकते भी, स्वीकारने जैसा लगता है। और इसके पहले कि निर्णय हो पाए, हम खींच लिये जाते हैं !

उनकी अनुकंपा अपार है !